



श्रीमते रामानुजाय नमः



तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -  
**स्वामी राजेन्द्र सूरिजी**  
महाराज की  
संक्षिप्त जीवनी  
(प्रथम खण्ड)

रचयिता  
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य  
सरौती स्थानाधीश  
|

संवत् 2017 वि

प्रकाशक : -

श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती  
पो0 रामपुर चौरम (गया)

श्रद्धालु पाठकों से :-

प्रस्तुत पुस्तिका स्वामी जी महाराज के संक्षिप्त जीवन चरित्र का प्रथम खंड है। इसके बाद क्रमशः निम्नांकित खण्ड प्रकाशित होंगे :-

द्वितीय खण्ड	‘स्त्री और मन्त्र’
तृतीय खण्ड	‘राम रहस्य’
चतुर्थ खण्ड	‘स्वर्गारोहण’ ‘महाप्रयाण’

विनीत : -

प्रकाशक

यह प्रथम भाग विभिन्न अध्यायों में बँटी है जिसके शीर्षक हैं :

- 1। भूमिका ।
- 2। स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का परिचय ।
- 3। ताल स्वरों का भेद सूत्ररूप में पद्यों में ।
- 4। श्री स्वामी जी का विराग ।
- 5। तरेत स्थान का सौभाग्य ।
- 6। विपक्षियों से संघर्ष ।
- 7। श्री स्वामी जी महाराज का योगाभ्यास ।
- 8। श्री स्वामी जी महाराज की तीर्थयात्रा ।
- 9। यज्ञ प्रकरण ।
- 10। यज्ञों का नाम और अर्थ ।
- 11। मूर्ति पूजा अनादि कालिक ।
- 12। पुण्य और पाप का लक्षण ।
- 13। सत्संग क्यों ? ।
- 14। श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य प्रशिष्य ।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् । ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे । । गी 4।7-8

इस लीला विभूति में जब जब धर्म का नाश होने लगता एवं पाप की वृद्धि होने लगती तब तब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान नारायण सत्पुरुषों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार द्वारा सृष्टि- लीला को सुव्यवस्थित रखने के लिए युग युग में अवतार लेते हैं । भगवान के अवतार का यही प्रधान हेतु है । अवतार- स्थल श्री अयोध्या जिसको “साकेत” और मथुरा जिसको “गोलोक” कहते हैं विख्यात ही है । इसी प्रकार दक्षिण भारत के भी कुछ दिव्य स्थल भगवान के दिव्य पार्षदों का अवतार स्थल प्रसिद्ध हैः

ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।

कावेरी महापुण्या प्रतीची च महानदी ।

ये पिवन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।

प्रायो भक्ता भगवती वासुदेवेऽमलाशयाः । । भा 11।5।39-40

दक्षिण भारत की ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परम पवित्र कावेरी, महानदी और प्रतीची नामक नदियों के समीप प्रायः भगवान के दिव्य पार्षद ही अवतार लेते हैं । इन नदियों का जल पीने से अन्तःकरण शुद्ध होजाने के कारण मनुष्य भगवद्भक्त हो जाता है । भगवान के दिव्यपार्षदों के अवतार में भी वही हेतु है जो भगवान के अवतार हेतु हैं ।

“त्वं मे, अहं मे, कुतस्तत्” । श्रीरंगनाथ तिरुमंजन कट्टियम -श्लोक 25 । पराशर भट्टर

ईश्वर जीव से कहते हैं कि तुम मेरा हो किन्तु जीव अनादि-कर्म-वासना-लिप्त होने से अहंकार ममकार वस संसार चक्र में घूमते हुए रहने पर भी ईश्वर से यही कहता है कि -

“अहं ब्रह्मास्मि”, “ईश्वरोऽहं अहं भोगी” मैं आपका नहीं हूँ बल्कि मैं भी ब्रह्म ही हूँ । इस प्रकार का जीव का उत्तर सुनकर भगवान मूक हो विशेष चिन्ता करने लगते कि ये सभी पापात्मा हैं इसीलिए मेरी शिक्षा नहीं मानते, तो इन सबों का उद्धार कैसे होगा ? इत्यादि । इस अवस्था में भगवान के दिव्य पार्षद श्रीशेष जी इनकी चिन्तित मुद्रा देखकर भगवान से पूछते हैं कि भगवान! आप चिन्तित क्यों है ? और उपर्युक्त कारण जानकर श्री शेष जी भगवान से प्रार्थना पूर्वक कहते हैं कि यदि दास को आज्ञा हो तो मैं पापियों को सुधारकर आपके चरण कमलों में लगाऊँ, किन्तु हमपर इतनी विशेष कृपा हो कि मैं जिन सबों को आपकी शरण में भेजूँ उनसबों के शुभाशुभ कर्मों के ऊपर ध्यान न देकर अपनी शरण में अवश्य रखें । यह सुन भगवान अति प्रसन्न हो कहते हैं कि ‘विभूति द्वय नायक’ आप दोनों विभूतियों (लीला विभूति और त्रिपाद विभूति अर्था त्वैकुण्ठ)के नायक बनाये गये । आप जो करेंगे हमें मान्य होगा । अतः स्वकथनानुकूल वही श्रीशेष जी जीवों के कल्याणार्थ दक्षिण भारत के मद्रास प्रान्तीय भूतपुरी ग्राम में अवतरित हो स्वामी श्री रामानुजाचार्य नाम से विख्यात हुए । इन्हीं के सम्बन्ध में यह है कि -

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा ।

तृतीयो वलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः । ।

अर्थात् श्रीशेष जी प्रथम अनन्तरूप से हैं । द्वितीय लक्ष्मण रूप से श्रीराम जी के साथ । तृतीय वलराम रूप से श्रीकृष्ण जी के साथ और चतुर्थ कलि में श्री रामानुज रूप से जनकल्याणार्थ अवतीर्ण होते हैं । और इनके सम्बन्धियों के सम्बन्ध में यह विख्यात है कि

“रामानुज प्रपन्नाय रक्षां दीक्षां करोम्यहम् ।”

“मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।”

“करौ वक्षसि निक्षिप्य निद्रां कुर्वन्तु निर्भयाम्।”

भगवान कहते हैं कि रामानुज प्रपन्नों के लिए मैंने रक्षा बन्धन पूर्वक प्रतिज्ञा की है कि संसार से मुक्त कर दूँगा। शोक करने की आवश्यकता नहीं है; निश्चिन्त होकर सुख की नीन्द सोओ। कहा भी है - “आचार्यवान्पुरुषो वेद।” आचार्यवान् पुरुष ही (श्रीरामानुज प्रपन्न) भगवान को जान सकता है। आचार्य पद श्रीरामानुजाचार्य में ही रूढ़ है।

“देवतायाः गुरोश्चापि मन्त्रस्यापि प्रकीर्तनात्।

ऐहिकाण्डुषिकी सिद्धिं द्विजस्यास्ते न संशयः।।

“यस्माद्देवो जगन्नाथः कृत्वा मर्त्य मयीं तनुम्।

मग्नमुद्धरते लोकान्करुणया शस्त्र पाणिना।।

देवता अर्थात् श्रीमन्नारायण, गुरु और मन्त्र कीर्तन द्वारा ब्राह्मण सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

श्रीमन्नारायण ही मानव रूप से अवतीर्ण हो आचार्य बनकर अपनी करुणा से संसारियों का उद्धार करते हैं।

मन्त्रनाथं गुरुं मन्त्रं समत्वेनाभि पूजयेत्।”

“चक्षुर्गम्यं गुरुं त्यक्त्वा धनस्थमपि वांछति।।

सुलभन्तु गुरुं त्यक्त्वा दुर्लभं य उपासते।

वद्धं त्यक्त्वा धनं भूढो गुप्तमन्वेपते क्षितौ।।

जो प्रत्यक्ष ज्ञानी गुरु को छोड़कर शास्त्रागम्य विषय के अनुसन्धान में रत रहता है वह करस्थ जल को छोड़कर मेघस्थ जल के लिये प्रयास करने जैसी मूर्खता करता है। सुलभ गुरु को छोड़कर दुर्लभ गुरु के लिए इच्छा करना वैसा ही है जैसा कि गठरी का धन छोड़कर पृथिवी में गड़ा धन खोजता है।

श्रीशेष जी रामानुजावतार के पश्चात्पाचवीं वार स्वामी श्री वरवर मुनि के रूप में अवतीर्ण हुए और जब इससे भी कार्य पूरा नहीं हुआ तो फिर भी वही श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज (परमहंस स्वामी) के रूप में अवतीर्ण हुए। इस अवतार से औरों के साथ साथ विशेषतः मगध वासियों का ही कल्याण हुआ। भगवान तथा उनके दिव्य पार्षदों के अवतार स्थलों के तुल्य ही स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का भी अवतार स्थल अति पवित्र एवं मुक्तिदायक है।

## स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का परिचय

“जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते।”

भारतवर्ष का नैमिषारण्य क्षेत्र ऋषियों का यज्ञ स्थल है।

“यं धर्म कर्मट महर्षि जनस्य भव्यम्, व्याजृम्भणाय विवुधारि निरास दीक्षम्।

चक्रं हरेर्भगवतो दिशतिस्म देशम्, तेनैव नैमिष यशः पदमश्रुवानाम्।।”

यों तो सम्पूर्ण भारतवर्ष कर्मक्षेत्र है ही इसमें भी कर्मकाण्ड के लिए नैमिषारण्य क्षेत्र प्रधान है जो अस्त्रराज श्रीसुदर्शन जी के द्वारा निर्दिष्ट हुआ है। वहां आज भी चक्रतीर्थ वर्तमान है। इसी क्षेत्र में अठ्ठासी हजार बालखिल्यादिकों का जन्म हुआ था। यहीं पर इन सबों की तपस्या सूत-शौनक-ज्ञान-यज्ञ-प्रसंग, मनु-शतरूपा की पुत्रार्थ तपस्या, तीर्थ यात्रा प्रसंग में श्री बलदेव जी का जाना इत्यादि उस क्षेत्र की पवित्रता का विशेष प्रमाण है।

गव्यूति पंचक युगं दिशि पाव भान्याम् मित्रावलीति किल संवस्थोऽस्ति तस्मात्।

तत्रस्म संवसति विप्र कुलं च भार द्वाजान्वयं जगति मित्र पदास्पदञ्च।।

नैमिषारण्य के चक्रतीर्थ से वायुकोण में बारह कोस की दूरी पर एक मित्र की मितौली नामक ग्राम है। उसी ग्राम के निवासी श्री अयोध्या मिश्र नामक एक कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे जिनके पुत्र रूप में श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी अवतीर्ण हुए जैसे कश्यप के पुत्र रूप में भगवान विष्णु का वामनावतार हुआ था। स्पष्ट है कि कलि में शेष जी के प्रथम अवतार



रामानुज स्वामी, द्वितीय श्री वरवर मुनि, तृतीय श्री रंगदेशिका चार्य और चतुर्थ श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि के रूप में संवि० (रामानुज सं० 835) में प्रभव नामक संवत्सर के फाल्गुन कृष्ण द्वादशी मघा नक्षत्र में अवतीर्ण हुए।

फाल्गुनस्यासिते पक्षे मघायां द्वादशी तिथौ। श्री मद्रंगार्य सदभक्तं राजेन्द्रार्यमहं भजे।।

तुलसी में छोटी अवस्था से ही जैसे पवित्र गंधादि उसके सभी गुण विद्यमान रहते हैं इसी प्रकार इनमें वाल्यावस्था से ही जड़भरत, ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, वामदेवादिकों की तरह लोक-विलक्षण प्रकृति आचरणादि विद्यमान थे। वाल्यकाल से ही अध्ययनरत रहने के कारण कुछ ही समय में संस्कृत व्याकरण न्याय वेदान्तादि शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। संगीत प्रेमी होने के कारण इसमें भी निपुण हो गये थे। स्मृतियों में भगवान की तुष्टि के लिए गान प्रशंसा की गयी है -

स्तोत्र पाठैश्च सन्तोष्य शक्तश्चेद्गान विधया। स्वर योगेन देवेशं तोषयेद्भक्ति वृद्धये।।

पंचकाल क्रम परा गान विद्या विशारदाः। शुद्धाचाराः महात्मानः पूज्या भागवतास्वयम्।।

सुस्निग्ध कंठ तालज्ञास्वराचारादि वेदिनः। मागधाभिनयाः पूज्या अनिन्ध्या भगवानिह।।

भक्त्या पुलकित स्वांग आनन्दाश्रु परिप्लुतः। गद्गदस्वरयोगश्च यथाहि स्यात्तथा चरेत्।।

अति वेला यदि भवेत्भक्ति संकीर्तनादिभिः। तदानो परमेत्तस्माद्यत्र या क्रियते मुदा।।

गान विद्या समर्थस्सनगानेन पुरुषोत्तमम्। तोषयेत्तु यथा कालं मनस्थ सन्निधौ हरेः।।

गान विद्या में समर्थ भगवद्भक्त भक्ति वृद्धि के लिए निरन्तर गान करते आये हैं इससे भगवान की प्रसन्नता होती है। श्री स्वामी जी महाराज गान प्रेमी होने के साथ साथ गान के विशेष मर्मज्ञ भी थे। गान सीखने वालों को आप संस्कृत तथा हिन्दी गान के मर्म निम्न रूप से बताया करते थे -

यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकी भूता वसन्ति हि। तथा स्वराणां सन्दोहो ग्रामेत्युच्यते बुधैः।।

प्रत्येक ग्रामों में सातो स्वरों के साथ पाँच पाँच कोमल स्वर भी लगते हैं। इस प्रकार सवमिलकर (15 कोमल और 21 कड़े स्वर) अर्थात् कुल 36 स्वर हुए। उपर्युक्त सभी स्वरों को भेदन कर सभी स्थानों से केवल एक अकार ही निकलता है।

इसी से अकार को शब्द ब्रह्म कहते हैं। सातो स्वरों में प्रत्येक में सात सात मूर्च्छना होने से 49 मूर्च्छनाएँ होती हैं - सप्त सप्तैक मूर्च्छना। सातो स्वरों के सात नाम हैं - 1। षड्ज, 2। ऋषभ, 3। गान्धार, 4। मध्यम, 5। पञ्चम, 6। धैवत, एवं 7। निषाद। पुराकाल में ऋषियों ने वन्य जन्तुओं की वोलियों से ही सात स्वरों का अनुसन्धान किया था। यथा -

षड्ज वेदे शिखण्डीस्या ऋषभस्तु अजा मुखे। गावः रंभन्ति गान्धारं क्रीञ्च चैवाति मध्यमम्।।

कोकिलः पंचमोज्ञेयो निषादन्तु वदेद्गजः। अश्वस्तु धैवते ज्ञेयः स्वर सप्त विधीयते।।

मोर षड्ज का, वकरा ऋषभ का, गौ गान्धार का, क्रीञ्च मध्यम का, कोयल पञ्चम का, घोड़ा धैवत का, और हाथी निषाद स्वर का ठीक ठीक उच्चारण करता है।

जैसे सभी प्रकार के गानों में सात ही स्वर प्रधान हैं उसी तरह सवों में सात ही ताल प्रमुख हैं। सभी मिलकर अनेक ताल (वाद्य में) हो जाते हैं।

ध्रुव मट्यौ रूपकश्च झंपा त्रिवटमेव च। अड़तालैक तालैश्च सप्त तालाः विधीयते।।

सभी ताल मात्राधीन हैं - “चापो वदत्येकं मात्रं द्विमात्रं वायसो वदेत्। त्रिमात्रं शिखिनश्चैव नकुलश्चार्ध मात्रकम्।।”

नीलकण्ठ की बोली एक मात्रा की, कौवे की बोली दो मात्रा की, मोर की बोली तीन मात्रा की और नकुल की बोली आधी मात्रा की है। मात्रा से उच्चारण काल समझना चाहिए। इसी को ह्रस्व दीर्घ और प्लुत कहा करते हैं। किसी एक ग्राम तथा स्वर में गाना और वाद्य के मेल को लय (अर्थात्लीन हो जाना) या रास्ता कहते हैं। श्रवण करने वालों को यही प्रिय होता है। लय का दो प्रधान भेद है। एक देशी जो सभी देशों का पृथक पृथक होता है। इसलिये गान में इसका कोई नियम नहीं है। दूसरा मार्गी है, इसका नियम वन्धन का प्रमाण सर्वत्र मिलता है। सर्व व्यापक संस्कृत बोली या शब्द के समान यह सर्वत्र एक ही है। इसे ही शास्त्रीय संगीत भी कहते हैं। इसी मार्गी विधान से लव और कुश श्री रामायण गाया

करते थे। गान में व्यञ्जन अर्द्धमात्रा भी प्लुत हो जाता है। यह व्याकरण सम्मत सिद्धान्त है।

ताल स्वरों का भेद सूत्ररूप में पद्यों में -

कहवाँ सिखे हो लाल जी वंशी वजावना। कर ललित ललित स्वर से सुन्दर सुहावना।।  
स्वर मोर के पड़ज में ले चार मूर्च्छना। औ ऋषभ स्वर अजा के ले तीन मूर्च्छना।।1  
गान्धार को गौओं से दो, दो करके मूर्च्छना। चक्रवा समान मध्यम में चार मूर्च्छना।।2  
कोकिल से भीठ पंचम और चार मूर्च्छना। घोड़े के स्वर में धैवत के तीन मूर्च्छना।।3  
सप्तम निषाद गज के स्वर दो ही मूर्च्छना। अनुदात्त औ उदात्त स्वरित ग्राम जानना।।4  
स्वर सात के बदल कर सब राग जानना। तैसे ही सात ताल से सब ताल मानना।।5  
मात्रा अधीन ताल स्वर सब को भी गिनना। पर बोलता नीलकण्ठ ही एक मात्र सुनना।।6

देशी गान में राग रागनियों के नियम नहीं है। मार्गी गान में रागों का विधान है। एक प्रहर रात शेष से भैरव राग गाने को कहा है, सूर्योदय से मालकोश, एक प्रहर दिन शेष से हिंडोल, मध्याह्न में दीपक और सन्ध्या में श्रीराग का विधान पाया जाता है। एक और छठों मेघ राग है जिसको मेघ या वर्षा के समय गाने को कहा है। इन सभी रागों के छः छः रागनियाँ हैं। प्राचीन वाजा मृदंग (पखावज), तन्त्री, तानपूरा आदि हैं। हारमोनियम आदि आधुनिक वाद्य - यन्त्र हैं। गान विद्या भगवान को अतीव प्रिय है। नारदादि भक्त गण वीणा वजाकर गाया करते थे। इनकी वीणा का नाम शास्त्रों में कच्छपी पाया जाता है - “कच्छपी नारदस्य स्यात्।” श्री शुकदेव जी से परीक्षित कथा सुनते थे। उस समय होने वाले कीर्तन के सम्बन्ध में यह लिखा है -

प्रह्लादस्तालधारी तरल गतितया चोद्धवः कांसधारी। वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशल तया राग कर्ताऽर्जुनोऽभूत्।

इन्द्रोऽवादीनमृदंगं जय जय सुकराः कीर्तने ते कुमराः। यत्राग्रे भाव वक्ता सरस रचनया व्यास पुत्रो वभूव।।

इस कीर्तन को प्रत्यक्ष होकर भगवान सुनते थे। इस कीर्तन मण्डली में किन किन रागों में किन किन स्वरों को किस स्थल में कैसे प्रयोग करना चाहिए इसके ज्ञाता अर्जुन आगे गाने वाले थे। इन्द्र मृदंग, प्रह्लाद शीघ्र गति से करताल, उद्धव मञ्जीरा, सुरर्षि नारद जी वीणा वजाने वाले तथा सनकादि कुमार जय जय कार करने वाले और सरस रचना द्वारा भाव वताने वाले श्री शुकदेव जी थे। रस में मतभेद है। कोई नव और कोई दस मानते हैं।

रौद्रादभुतशृङ्गारो हास्य वीरो दयास्तथा। भयानकश्च वीभत्साः शान्तः प्रेम भक्तिकः।।

1-रौद्र (कठोर), 2-विभत्स (घृणित), 3-शृङ्गार (सुन्दर), 4-हास्य (प्रहसन), 6-दया (करुणा), 7-भयानक

(भयोत्पादक), 8-अद्भुत (आश्चर्यकारक), 9-शान्त (स्थिर), 10-प्रेमभक्ति (प्रेमाभक्ति)। इन्हीं दस रसों में सभी गान

गाये जाते हैं। लोगों को छन्दों का बोल सिखाया जाता था।

हरि गीतिका - इसका बोल - धीन धीन धीनन। कथित धित धा कथित तितता- इसे साधारण ठेका जानना चाहिए।

सात मात्रा की आवृत्ति में (त्योरा में)

न च त सु ढं ग ये ये ये, ये ये ये ये। उदाहरण- मैं हरि पतित पावन मुन्यो

भुजंग प्रयात - इसका बोल - नाधिं धिना नाधिं धिना नाधिं धिना ताधिंता ताधिंता ताधिंता ता तिरकट तक।

16 मात्रा तीन ताल (दादरा में)। उदाहरण - “भजे भाष्यकारं भजे लक्ष्मणार्यम्०।” “प्रभो पापियों को वचाते न आते।”

स्वागताछन्द - बोल - धिधिन धिनक धिन (ठुमरी लयदारी में), उदाहरण - “कोमलांगुलिभिराश्रित मार्गम्०।” “सिय के समाज सुहाग सुन्दरी, आये रघुवर जनक के नगरी।”

नगस्वरूपिणी (परज में) - “प्रपन्न लोक कैरवं प्रसन्न चारु चन्द्रिका, शठारि हस्त मुद्रिका हठात्तुनोतु मे तमः।”

“हमें समान दीन पै सुदृष्टि से निहार के दयालु ही सदा कृपा करेगी मातु जानकी।”

अनुष्टुप - वोल - तार्धीता तार्धीता तार्धीता तिरकिट तक । उदाहरण - “हे जित्वे रस सारज्ञे” 16 मात्रा ।

मालिनी - तीन ताल - उदाहरण- “अपगत मदमानैः ।”

शशि वदना - तीन ताल - उदाहरण- “भजयति राजं भजयति राजम् ।”

उपन्द्र वज्रा - झंप सिन्दूरा - उदाहरण - “अहो वकीय स्तन काल कूटं ।”

गोपी गीत (दादरा) - उदाहरण - जयति तेऽधिकम् ।

तोटक (दादरा) - उदाहरण - अच्युतं केशवं रामनारायणम्.....

झंप - “मंगलं भगवान विष्णुः .....

इस प्रकार संस्कृतज्ञों को संस्कृत छन्द का और हिन्दी जानने वालों को हिन्दी के छन्द का मर्म बताया जाता था ।

पचरुखिया वाले भागवताचार्यदिक इस विषय के विशेषज्ञ होकर गान किया करते थे । स्वयं श्री स्वामी जी महाराज भागवत परक संस्कृत श्लोक, तुलसीदास और सूरदास के पदों को गाया करते थे । तुलसी दास के पद्यों में विनय पत्रिका और गीतावली के तथा सूरदास के वाल्यभाव वाला मुग्धावस्था के पद्यों को गाते थे । अन्यदेव सम्बन्धी पद्य तो दूसरों को भी गाने से मना करते थे ।

श्रीस्वामी जी महाराज को घर छुटने पर ही शास्त्राध्ययन छूटा था । यद्यपि संसार आत्मा को बांधने वाला है किन्तु दिव्यात्मा को कैसे बांध सकता है ? क्योंकि ऐसे महापुरुष कर्म वाशना वश संसार में नहीं आते बल्कि सामर्थ्यवान होने के कारण सृष्टि संरक्षण हेतु ही । इसीलिए संसार उन्हें स्पर्श नहीं करता । जैसे -

“अहि अघ अवगुण मणि नहीं गहई । हरै दोष दुःख दारिद दहई ।”

विषधर सर्प में मणि उपजता है किन्तु वह मणि विष नहीं ग्रहण करता बल्कि विष को दूर करता है । श्री स्वामी जी महाराज को वचन से ही लौकिक वस्तुओं से अरुचि थी । परिवार वालों ने सांसारिक बन्धनों से बान्धा चाहा था जैसे विवाहादि सम्बन्ध कराना किन्तु श्री रामजी तथा हनुमान जी को जैसे ब्रह्मास्त्र का बन्धन नहीं कुछ विगाड़ सका वैसे ही विवाहादि बन्धन इन्हें नहीं बांध सका । दूर ही विलीन हो गया । यह सब कृत्य सोलह वर्ष तक ही समाप्त हो गये थे ।

### श्री स्वामी जी महाराज का विराग

भगवान अपने अवतार में जैसे कुछ न कुछ कारण मान लेते हैं- रामावतार में श्री दशरथ जी का पुत्रेष्टि यज्ञ, कृष्णावतार में मनु-शतरूपा की तपस्या, जंगल जाने में कैकेयी-वरदान इत्यादि । इसी प्रकार मगध वासियों के कल्याणार्थ ही श्री स्वामी जी महाराज को गृह-त्याग करना पड़ा ।

नैमिषारण्य को प्रधान तीर्थ होने के कारण तीर्थाटन में गये साधु समाज श्री स्वामी जी महाराज के घर (मितौली ग्राम) पर वरावर ठहरा करते थे । आप श्रीमन्त तथा साधु सेवी थे, अतः सबों का यथोचित सत्कार किया करते थे । यात्राक्रम में ही एक बार एक साधु मण्डली द्वार पर आ गयी । नियमतः स्वागतार्थ भोजनादि सामग्री लायी गयी जिनमें दाल उड़द की थी किन्तु किसी सन्त ने अरहर की दाल मांगी । श्री स्वामी जी महाराज दाल मांगने घर गये किन्तु माँ से उत्तर मिला कि अरहर की दाल नहीं है अतः साधुओं को वह दाल नहीं मिल सकी । पुनः सन्त गण उस क्षेत्र का गुड़ जो अत्यन्त स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है, मांगे । उत्तर मिला- अमुक स्थान में अमुक पात्र में है, ले लो । गुड़ अन्वेषण क्रम में ही अरहर की दाल संयोग से मिल गयी । गुड़ तो साधुओं को दिया गया किन्तु दाल के वहाना का प्रपंच हृदय में खटका । वह रात्रि तो साधु सेवा में व्यतीत हुई किन्तु प्रातः होते ही, 'यह सोचते हुए कि जिस स्थल में साधुओं के साथ प्रपंच किया जाए वहां



नहीं रहना चाहिए।' अतः आप घर पर से निकल पड़े और गोमती गंगा में जल लेकर संकल्प किए आज से यह शरीर स्वसम्बन्धियों के लिए नहीं है। यही घटना श्री स्वामी जी की विरक्ति और मगध वासियों के लिए कल्याण का कारण हुई। पता चलने पर परिवार के लोग इनको घर लाने के लिए दौड़ धूप बहुत किए किन्तु - “माता पितरौ रुदति प्रव्रजति पुत्रः।” इस कथनी को चरितार्थ करना था, अतः घर नहीं लौट सके और पूर्व संकल्पानुसार शुक्ल सन्यासी वृत्ति स्वीकार कर लिए।

“अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स सन्यासी च योगी च न निरग्निः न चाक्रियः।।” गी 6।1

कर्मफल की अपेक्षा विना कर्म करने वाला व्यक्ति सन्यासी है, न कि निरग्नि या अक्रिय। सन्यासियों के कुटीचर वहूदक हंस और परमहंस इन भेदों में परमहंस सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। इसी वृत्ति में श्रीस्वामी जी महाराज रहने लगे, न कि केवल दण्ड कमण्डलुधारी। आसन के लिए मृगचर्म, पात्र के लिए पंचपात्रों (धातुपात्र, मृण्मयपात्र, काष्ठपात्र, वेणुपात्र, और फलपात्र) में से फलपात्र लौका का तुम्बा और दो कटिवस्त्र के अलावे और पास में कुछ नहीं रखना, द्रव्य नहीं छूना और न संग्रह करना, किसी से कभी कुछ नहीं मांगना, तेल नहीं लगाना या नहीं छूना, काष्ठपादुका के अलावे किसी प्रकार की सवारी पर नहीं चढ़ना इत्यादि।

यद्यपि सन्यासियों को बैलगाड़ी पर चढ़कर चलने का विधान है फिर भी इनमें तो ऐसा उत्कट विराग था कि निर्जीव रेल और मोटर गाड़ी पर भी कभी नहीं चढ़ते थे। सतत पदयात्रा ही किया करते थे। किसी के पात्र से अपना काम नहीं करना, खाट से नहीं छुआना, विना दिए स्वयं मांग कर भोजन नहीं करना इत्यादि उदासीन वृत्तियों को अपनाये हुए घूमते घूमते आप वृन्दावन आए। उस समय वहां वर्तमान श्री रंग मन्दिर के पीठाधीश श्री स्वामी रंगदेशिकाचार्य जी थे। उत्तर भारत में वैष्णवता के प्रचार में गोवर्धन पीठ को ही प्रमुख स्थान है। अष्टदिग्गजों की स्थापना के पूर्व श्री स्वामी शठकोप जी ने गोवर्धन पर्वत पर ही अपनी कुटी बनाकर वैष्णवता के प्रचार का श्रीगणेश कर दिया था। पश्चात् जब स्वामी श्री वरवर मुनि जी द्वारा अष्टदिग्गजों की स्थापना हुई, तब सर्वप्रथम श्री स्वामी कण्ठाडै अण्णन जी ने इस गोवर्धन पर्वत को गोवर्धन पीठ का रूप दिया। इसीलिए इस पीठ को अण्णन पीठ भी कहते हैं। इसी परम्परा में जब स्वामी श्री शेषाचार्य जी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य जी पीठाधीश थे, उसी समय दक्षिण भारत से श्री स्वामी रंगदेशिका चार्य जी वहां पधारे और उनसे (श्रीनिवासाचार्य जी से) समाश्रित हो गोवर्धन पीठ का भार अपने ऊपर लिए। आपके उपदेश से प्रभावित होकर मथुरा निवासी सेठ श्री लक्ष्मीचन्द्र जी अनुज श्री गोविन्द दास जी आप से समाश्रित हुए। एक बार सेठ जी श्रीरंगदेशिकाचार्य जी के साथ दक्षिण यात्रा में गये और उधर की दिव्यदेशों की अलौकिकता देखकर वृन्दावन में भी एक दिव्यदेश की स्थापना की इच्छा आपके हृदय में जगी। फलस्वरूप वृन्दावन में भी श्री रंगमन्दिर की स्थापना 1906 वि संवत् में हुई। यहीं से भक्तिगंगा की अमन्दधारा फूट कर उत्तर भारत को सिञ्चित करने लगी। श्रीस्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज स्वामी श्री रंगदेशिकाचार्य जी से समाश्रित हो मथुरा में यमुना के पश्चिम तट पर भतरौढ़ नामक स्थान में (जहाँ ब्राह्मण पत्नियों ने कृष्ण को भोजन कराया था) कुछ दिनों तक मन्त्रानुष्ठान में रत रहे।

नृसिंह भगवान का मन्त्रानुष्ठान करते हुए कुछ काल तक निवास किए। जब श्री रंगदेशिकाचार्य वैकुण्ठ पधार गये तो आप उदास होकर वहां से पूर्व दिशा की ओर यात्रा किए। सभी वृत्तियां पूर्ववत् ही थीं। श्रीवैष्णव से पर्दा आदि का भेद नहीं था। इस यात्रा में आप अयोध्या काशी एवं भोजपुर होते हुए मगध पधारे। एक दिन आप पटना मण्डल के महमतपुर ग्राम में पधारे, वहां एक विशाल महुआ का वृक्ष था उसी की छाया में विश्राम किए। पीछे ग्रामवासियों को जानकारी हुई तो ग्राम से बाहर ही घिनावन शर्मा के मकान में निवास के लिए आप से लोग आग्रह किये तो आप भक्त पारवश्यता गुण के कारण उस गृह में पधारे। आप को ग्राम से बाहर ही रहने का सदा नियम था। आम पकने का समय

था अतः भक्तगण सुपक्व मधुर आम्रफल भोग लगाने के लिए ले आये। भगवान को भोग लगाया गया और श्री स्वामी जी महाराज ने प्रसन्नता पूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् शेष प्रसाद भक्तगण भी पाये। इन सबों में अतीव प्रेम-भक्ति देखकर श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिन वहीं ठहरने के लिए लोगों ने आग्रह किया तो उस रात्रि में भी आप वहीं ठहरे जब कि कहीं भी एक काल से अधिक ठहरने का नियम आपका नहीं था। रात्रि में आराधन का सामान आया। चावल दाल शाकादि सभी वस्तुएँ एक ही साथ मिट्टी के पात्र में सिद्ध की गयीं। पत्तल पर परोस कर ठंडा होने पर भगवान को भोग लगा, आप पाये और शेष प्रसाद भक्त गण भी पाये। भक्तों की ऐसी दशा देखकर, “विनु पहिचाने प्राण ते प्यारे। मानस वाल 321।3”, इन लोगों के ऊपर श्रीचरणों की विशेष कृपा हुई। दूसरे दिन भी ठहरने के लिए लोगों द्वारा आग्रह किये जाने पर उत्तर मिला कि जगदीश से लौटकर पुनः तुम सबों से मिलूंगा। शिष्य बनाने के लिए भी लोगों का आग्रह हुआ तो विना संस्कार किये ही “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” यह मंत्र सतत जपने की आज्ञा मिली। उपर्युक्त भक्तों में महमतपुर के चित्तवहाल शर्मा, काली शर्मा, घिनावन शर्मा, अचरज शर्मा, मनवोध शर्मा आदि प्रधान थे।

### तरेत का सौभाग्य

श्री स्वामी जी महाराज जगदीश यात्रा से लौटकर पुनः यहीं चले आये। स्थानीय लोग कृपाभागी बने। अब इनका वास स्थान “विविक्त देश सेवित्व भरतिर्जन संसदि” के अनुकूल पटना मण्डलान्तर्गत एकान्त तरेत ग्राम के पश्चिम भाग में एक पीपल वृक्ष के नीचे बना। कुछ पीछे चलकर वर्तमान नहर से पूर्व गढ़ पर निवास स्थान बना जिसका रूप बदल जाने पर भी आज गढ़ सा ही प्रतीत होता है। यह स्थान घनघोर जंगल था। इसमें अनेकों प्रकार की जड़ी बूटियाँ, विदारी, वराहीकन्द, श्वेत श्याम मुसली आदि पाये जाते थे। वघनखा, भिलावा आदि कांटेदार लतागुल्मों से आच्छादित सभी वृक्ष थे, इस कारण यह दुष्प्रवेश जंगल था। इसी जंगल में श्री स्वामी जी महाराज रहने लगे और उसी में होने वाले कन्द मूलों द्वारा भगवान की आराधना भी करते थे। इसके लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं समझते थे तथा बाह्य मनुष्यों से संपर्क भी नहीं चाहते थे। किन्तु अवतार का हेतु तो और ही था। सूर्योदय की आभा कैसे छिपती। सन्देश सर्वत्र फैला और कल्याणार्थियों का समूह किसी न किसी प्रकार श्री चरणों तक पहुँचने लगा। सेवा सत्कार के लिए लोग निवेदन करने लगे। महमतपुर वाले कुछ लोग एक ठाकुरवारी बनाकर उसे छः बीघा जमीन के साथ श्री स्वामी जी महाराज को समर्पण कर दिए “हेतु रहित युग युग उपकारी। तुम्ह तुम्हारे सेवक असुरारी।। मानस -उत्तर- 46।3”

तरेत, पाली, चेसी, हदसपुरा, महमतपुर यही चार पांच वस्ती के भक्त गण सर्वप्रथम श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आए। इन सबों पर भगवान की कृपा का ही यह लक्षण था। इस समय तक वैष्णवों को केवल वासुदेव मन्त्र ही दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज वद्रीनारायण भगवान के दर्शनार्थ यात्रा किए। इस यात्रा में तरेत के श्री भागवताचार्य और हदसपुरा के श्री वासुदेवाचार्य साथ थे। इस यात्रा से लौट आने के पश्चात् भक्तगण श्री स्वामी जी महाराज के निवासार्थ तरेत से पश्चिम एक फूस की झोपड़ी बनवाए और इसके पश्चात् मिट्टी का एक किता मकान बनाकर उसमें भगवान को पधराये गये। मिट्टी जहाँ से खोदी गयी थी वह गड्ढा तालाव में परिणत हो गया। किसी भक्त ने उसका कच्चा घाट पक्का बनवा दिया जो आज भी वर्तमान है। उस समय तरेत ग्राम बाबू श्री रामखेलावन शर्मा जी (चेसी ग्रामनिवासी)की ठीकेदारी में था। आप श्री सम्पन्न सज्जन थे अतः सभी प्रकार की भगवान के लिए जमीन आदि के प्रवन्ध में सहायता किया करते थे। तरेत ग्राम से पश्चिम दक्षिण दिशा में श्री स्वामी जी द्वारा एक वाग लगाया गया था जिसका नाम कलम वाग है जो अभी भी विद्यमान है। पहले भगवान फूस की झोपड़ी में ही थे। पश्चात् जब दूसरा मकान

वना और उसी में भगवान को पधराने का विचार हुआ तो इस यज्ञ के याज्ञिक ब्राह्मण वृन्दावन से आये थे। इस समय तक श्री स्वामी जी महाराज की कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। इसी समय महमतपुर में भी पुनः श्री लक्ष्मी नारायण के विग्रह की प्रतिष्ठा की गयी। वृन्दावन के श्रीरंगाचार्य जी की धर्मपत्नी श्री अम्बा जी ने स्वयं सुदर्शन चक्र बनवा कर श्री स्वामी जी महाराज के लिए भेजा था और साथ साथ यह आदेश भी भेजा कि आप इच्छुक भक्तों को पंच संस्कार पूर्वक वैष्णव बनाया करें। यह आज्ञा पाकर श्रीस्वामी जी पूर्व के केवल वासुदेव मंत्र वाले भक्तों को भी पंच संस्कार विधि पूर्वक अष्टाक्षर मंत्र द्वारा वैष्णव बनाने लगे। तरेत और महमतपुर के दोनों स्थानों में पूजा करने के लिए दो पुजारी नियुक्त कर दिये। ये दोनों अनाथ थे, अतः वाल्यकाल से ही श्रीस्वामी जी के आश्रय में पले थे। एक का नाम रघुनन्दन जो महमतपुर के पुजारी थे, दूसरे का नाम यदुनन्दन था, जो तरेत के पुजारी थे। उक्त दोनों स्थान दोनों व्यक्तियों को स्वतन्त्र रूप से दे दिया था क्योंकि आप तो उल्लूक वैराग्य के उपासक थे। स्थान- बन्धन तो भक्तों का लगाया हुआ था। कुछ काल के अनन्तर दोनों पुजारी स्वतन्त्र होने के कारण भ्रष्ट हो गये। एक ने विवाह कर लिया और दूसरे ने धन के लोभ में सोन नद से पश्चिम बागा नामक स्थान का शिष्य बनकर महन्थ बना। इस तरह दोनों स्थान खाली हो गये। पुनः महमतपुर का एक गरीब ब्राह्मण महमतपुर का पुजारी बनाया गया और इसी तरह दूसरा तरेत का, किन्तु दोनों विशेष धूर्त होने के कारण कुछ द्रव्य संग्रह कर अन्यत्र जाकर विवाह कर भ्रष्ट हो गये। तब से स्थानों में स्वतन्त्र अधिकारी नहीं रखा जाने लगा बल्कि केवल पुजारी मात्र रखे जाते थे। आगे चलकर यहां की सारी सम्पत्ति पंचों के अधीन कर दी गयी थी, वे ही लोग इसकी रक्षा एक महान्त की सहायता द्वारा किया करते थे। महान्त के निर्वाचन में पंचों का ही मत लिया जाता था। इसका विवेचन आगे किया जायेगा। जीवन-मरण रूपी संसार ताप से संतप्त आत्मा भगवान से प्रार्थना पूर्वक कहती है कि “मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।” हे भगवन्संसार-दुःख से छूटने की इच्छा से मैं आपकी शरण आया हूँ। जैसे जयन्त तीनों लोक घूम कर शक्ति हीन असहाय हो पुनः जब सीता जी की शरण में आया और कहा कि आप मुझे बचावें तो उन्होंने कहा - “वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय।” हे भगवन्! यद्यपि यह वध्य है फिर भी अपनी कृपा द्वारा इसकी रक्षा करें। ठीक इसी प्रकार भ्रांत जनों के उद्धारार्थ आचार्य स्थल तरेत की भूमि भगवान के शरण में लाने की सहायिका बनी। इसी से इसका नाम “तरेत” अन्वयर्थक संज्ञा है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए - “तरति इतः” यहाँ से लोग तर जाते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इसमें दो पद हैं 'तरति' और 'इतः'। 'तरति' - तरणार्थक तृ धातु से तिप् जोड़ने से बना है। इसमें तिप्प्रत्यय और 'इतः' पद में विसर्ग दोनों आर्ष लोप और सन्धि करने पर 'तरेत' शब्द सिद्ध हुआ है - “तरति शोकमालवित्।” अब तरेत वैष्णव संतों का आश्रम बन गया।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरोर्यथा । पापं तापश्च दैन्यञ्च हरते सन्त समागमः ।।

गंगा पाप, चन्द्र ताप और कल्प तरु दीनता का नाश करता है, किन्तु सन्त समागम अकेले पाप ताप और दीनता तीनों का नाश करता है।

“सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो द्विजाः । सकृद्भागवतार्चायाः कला नाहति षोडशीम् ।।” भगवान की हजारों वर्ष की पूजा वैष्णवों की एक बार की पूजा के षोडशांश भी नहीं है।

“यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात् । तथा न तुष्यति श्रीशः विधिवत्सर्वार्चनादपि ।।” भागवत के अर्चन पूजन से भगवान को जितनी सन्तुष्टि होती है उतनी सन्तुष्टि अपनी पूजा से भी नहीं होती।

“षष्टि वर्षसहस्राणि विष्णोराराधने फलम् । सकृद्वैष्णव पूजायां लभते नात्र संशयः ।।” साठ हजार वर्ष तक लगातार भगवान की पूजा से जो फल प्राप्त होता है वह एक बार के वैष्णव पूजन से ही प्राप्त हो जाता है।

“महाभागवता यत्र वसन्ति विमला शुभाः । तत्स्थलं मंगलं प्रोक्तं यथा विष्णु पदं शुभम् ।।” जहाँ जिस स्थल में वैष्णव रहते हैं वह

स्थल विष्णुपद के तुल्य पवित्र और मंगल प्रद है।

“उत्तरे नव गव्यूति दक्षिणे योजनत्रयम्। वापी कूप तडागानां सर्व जाह्नवी जलम्।।” गंगा से उत्तर अठारह कोस और दक्षिण वारह कोस तक गंगा क्षेत्र है। इस बीच जितने कूप तडागादि हैं, सबों का जल गंगा जल के तुल्य है।

“शंख चक्रांकितो विप्राः यत्र यत्र वसन्ति हि। योजनानि यथा त्रीणि ममक्षेत्र वसुन्धरे।” वराह भगवान ने पृथ्वी से कहा है - चक्रांकित वैष्णव जहां जहां रहते हैं वहां वहां वारह कोस तक का क्षेत्र रंग वेंकटाद्रि के तुल्य मेरा क्षेत्र है।

तुलसी काननो यत्र यत्र पद्म वनानि च। वैष्णवाः यत्र निवसन्ति तत्र सन्निहितो हरिः।” तुलसी, कमल और श्री वैष्णव जहां रहते हैं वहां भगवान वास करते हैं।

ये कंठ लग्न तुलसी नलिनाक्ष माला, ये बाहु मूल परिचिष्टिगत शंख चक्राः।

ये वा ललाट फलके लसदूर्ध्व पुण्ड्राः, ते वैष्णवाः भुवनमाशु पवित्रयन्ति।।

गले में तुलसी कमलाक्ष की माला बाहुमूल में शंख चक्र और ललाट में उर्ध्वपुण्ड्र धारण किए हुए श्री वैष्णव तीनों लोकों को पवित्र करते हैं।

तत्रैव गंगा च यमुना च वेणी, गोदावरी सिन्धु सरस्वती च। सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदार कथा प्रसंगः।।

जहां भगवत्कथा वार्ता होती है वहां सभी तीर्थ आकर निवास करते हैं।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मदभक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।। भगवान नारद से कहते हैं कि मैं वैकुण्ठ और योगियों के हृदय में नहीं रहता हूँ वल्कि मेरे भक्त जहां गाते हैं वहीं मैं रहता हूँ।

शालिग्रामोदभवदेवायत्र द्वारावती भवः। उभयो संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः।। जहां शालिग्राम और गोमती चक्र रहते हैं वह मुक्ति के स्थान हैं।

यत्र यत्र हि मदभक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः। साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः। श्री वैष्णव कीकट याने मगध वासियों को भी पवित्र करते हैं। पूर्व में मगध अपवित्र था - “अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च। तीर्थ यात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमहर्ति।। अंग (भागलपुर), वंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड़ प्रायद्वीप) तथा मगध इन प्रदेशों में यदि कोई द्विज विना तीर्थ यात्रा के जाय तो स्वदेश लौटने पर पुनः उसे जातीयोचित उपनयन संस्कार द्वारा पवित्र होना चाहिए। इससे ऊपर के स्थानों की अपवित्रता इतिहास सूचित करता है।

क्षणोर्द्धनापि तुल्ये न स्वर्ग ना पुनर्भवम्। भगवत्संगि संगस्य मर्त्यानां किमुता शिषः।। स्वर्ग मोक्षादि का सुख वैसा नहीं जैसा कि भागवत की संगति द्वारा क्षणार्द्ध में होता है।

शब्द ब्रह्म पर ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनुः। शब्द ब्रह्माणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति।। भगवान कहते हैं कि शब्द ब्रह्म और परब्रह्म ये दोनों मेरे अनादि कालिक देह हैं। शब्द ब्रह्म में निपुण व्यक्ति ही परब्रह्म को प्राप्त करता है।

“अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्। ब्र सू 4।4।22।” ब्रह्म सूत्र, श्रीभाष्यादि के शब्दों को अध्ययन अध्यापन श्रवण मनन द्वारा अनावृत्तिः याने मोक्ष पश्चात् इस संसार में कभी आना नहीं पड़ता।

उपर्युक्त सभी विषयों का ही तरेत में अध्ययन, अध्यापन, श्रवण, मनन हुआ करता था। कालक्षेप में यही सब विषय रहते थे। श्रीभाष्य पढ़ाने के लिए दक्षिणात्य विद्वान रखे गये थे। और भी व्याकरण न्यायादि शास्त्रों को पढ़ाने के लिए विद्यालय खोला गया था। सर्वत्र के विद्यार्थी आकर पढ़ते थे। सबों को यथोचित सहायता दी जाती थी। इस समाज के अतिरिक्त अन्य समाज वाले बहुत से पण्डित बने थे। इस समाज में संस्कृत अध्ययन की प्रवृत्ति नहीं थी। जो महान पाप था और आज भी है। इस विद्यालय में पहले सनारी ग्राम के एक पण्डित पढ़ाते थे। पश्चात् एक दक्षिणात्य विद्वान आये। भागवताचार्यादि भी यहां अध्यापन किए थे।



परिआरी निवासी श्री रघुनाथाचार्यादि श्रीभाष्य के विद्वान थे। साम्प्रदायिक विषय, भगवद्विषय, श्री रामायण कथा, मन्त्रार्थ तथा स्तोत्रादि का पाठ नियमतः चलते रहता था। इन विषयों के अनेक वक्ता थे। इन सबों में एक वृन्दावनवासी चेफूल (छपरा)वाले श्री मुमुक्षु स्वामी थे। भावी कल्याणार्थी श्रोताओं में वावू रामखेलावन शर्मा जी, वावू वासुदेव शर्मा जी, श्री वासुदेवाचार्यादि प्रधान थे। शरणागति (मुमुक्षुओं का आत्म समर्पण)महान यज्ञ तथा भागवत सेवा सतत होती रहती थी। समय समय महान व्यक्तियों का आगमन बराबर होते रहता था। जैसे गोवर्धन पीठाधीश्वर, महान्त श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी (रीवाँ राज्य), तोताद्रि पीठाधीश, प्रतिवाद भयंकर श्री अनन्ताचार्य जी तथा अन्यान्य अखाड़े वाले, हरिक्षेत्र मेला से नागाओं का समूह, दाक्षिणात्य विद्वान आदि।

“द्वादश कोटि विप्राणां श्वपचो एक वैष्णवः।”

वैष्णवोऽस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते स्वयं हरिः। हरिः यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयम्।

अन्नाद्याः परतो नित्यं चक्षुषा गृह्यते मया। रसन्तु दास जिह्वाया गृहणामि कमलोद्भवे।।

द्वादश कोटि अवैष्णव विप्रों की अपेक्षा एक श्वपच कुल का वैष्णव श्रेष्ठ है। “किं पुनर्वात्मणाः पुण्याः भक्ता राजर्षयस्तथा।” ब्राह्मण कुल का यदि कोई वैष्णव हो तो उसकी महत्ता को तो कहना ही क्या है। जिस घर में एक वैष्णव भोजन करता है उस घर में स्वयं भगवान ही भोजन करते हैं। और यदि घर में भगवान का भोग लगा तो तीनों लोक उसके घर में भोजन कर लिए।

भगवान श्री लक्ष्मी जी से कहते हैं कि मैं सामने रखे हुए अन्नादि भोगों को केवल आँख से देखता रहता हूँ। यह भगवान का सामान्य नियम है किन्तु कभी कभी भगवान भक्तों के अधीन होने के कारण सामान्य नियमों का उल्लंघन भी कर जाते हैं, जैसे सुदामा जी के चूड़ा के समय - “तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुक तण्डुलाः। भा 10।81।9।” श्रीकृष्ण भगवान सुदामा का चूड़ा खाते समय कहते हैं कि यह चूड़ा विश्वमात्र को तृप्त कर रहा है। आप किसी तरह संकोच नहीं करें, कि यह चूड़ा तुच्छ वस्तु है। इस प्रकार तरेत में भगवत्भागवत्सेवा होने के कारण सर्व महान विश्व यज्ञ हुआ करता था।

न यत्र वैकुण्ठ कथा मुधापगा, न साधवो भागवताः तदाश्रयाः।

न यत्र यज्ञेश मखाः महोत्सवाः, सुरेन्द्र लोकोऽपि न तत्र सेव्यताम्।।

जहां भगवान की कथा रूपी गंगा नहीं बहती हो, वैष्णव लोग नहीं रहते हों, भगवान के आराधनोत्सव नहीं होता हो वह लोक इन्द्रलोक के तुल्य सुखद क्यों न हो, किन्तु वहां नहीं रहना चाहिए।

“तव दास सुखैव संगिनामभवनेष्वस्त्वपि कीट जन्म मे।” भगवत्दासत्व सुख से सुखी रहने वाले भक्तों के घर में कीट भी होकर रहने में कल्याण होता है। इसी लिए वैष्णव -स्थल श्रीरंग वेंकटाद्रि के समान दिव्य देश माना गया है। अचविभव दर्पण नामक ग्रन्थ में दिव्य देशीय यात्रा प्रकरण में तरेत का नाम आया है। यहां की धूल देवताओं को भी शिरोधार्य है। यहां के मनुष्य तो वड़भागी हैं ही, पशु पक्षियों को भी मुक्ति मिलेगी। लौकिक जीवन यात्रा के लिए भी यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। वृन्दावन के श्रीसुदर्शनाचार्य जी महाराज श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ यहां आये थे तो स्थान से कुछ दूर से ही अपना वाहन छोड़कर पैदल चलने लगे। जब लोगों का आग्रह हुआ कि वाहन से ही चला जाए तो वे बोले कि श्री स्वामी जी के चरण स्पर्शित भूमि में हमें शिर के बल से चलना चाहिए था किन्तु विवश होकर श्रीभाष्यकार स्वामी को मुक्ति नारायण की शालिग्रामी भूमि पर पांच पांच चलने के ऐसा चलना पड़ रहा है। वृन्दावन के गोपियों के पाद स्पर्शित भू-रज को श्रीकृष्ण जैसे अपने मुख में रखे थे उससे भी बढ़कर यह भूमि श्री राजेन्द्र सूरि जी के पादस्पर्श से पवित्र हो गयी है, इत्यादि गुण गान करते हुए तरेत स्थान तक आए। यहां के परमार्थ में कल्पतरु के समान इच्छित फल मिला करता था। दीनों को याचना करने पर उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि के लिए भी सहायता दी जाती थी। किसी को किसी भी वस्तु के लिए, रहने पर अस्वीकार नहीं होता था। “मंगन लहही न जिनके नाहिं। मानस - बाल- 230।4” चौपाई



चरितार्थ होती थी। किसी भी प्रकार की विद्या के अध्ययनार्थी विद्यार्थी को सहायता दी जाती थी। इस प्रकार अनेकों प्रकार से मगध वासियों को कल्याण का कार्य होने लगा जिससे अनेकों जन्मों का पाप दूर हुआ। मगध का कलंक मिटा।

### विपक्षियों से संघर्ष

श्री स्वामी जी महाराज के मुख से शुद्ध सात्विक कल्याणप्रद उपदेश की धारा प्रवाहित होते देख तत्कालीन नकली गुरुओं को जो दूसरों को झूठे उपदेशों के द्वारा फँसा कर अपना केवल स्वार्थ साधन करते थे, श्री स्वामी जी महाराज के प्रताप के प्रकाश से उन सबों की आँखें उलूक की तरह दुखने लगीं।

कर्म काण्डे प्रवृत्तो यः सर्वदा विष्णु निन्दकः। निन्दकस्तज्जनानाञ्च महाचाण्डाल उच्यते।। लौकिक कर्मकाण्ड में प्रवृत्त विष्णु और वैष्णव निन्दक महाचाण्डाल होता है। किन्तु इस प्रवृत्ति के लोग भी अपनी मूर्खता वश, श्री सम्प्रदाय को अवैदिक सिद्ध करने का दुःसाहस करने लगे। फिर भी - “न च प्रत्यनुरौति ग्राम सिंहस्य सिंहः।” जैसे ग्राम सिंह (कुत्ता) का अनुकरण सिंह नहीं करता इसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज का व्यवहार शान्ति पूर्ण ही बना रहा। फिर भी - “स्वभावो दुष्करो नाथः।” प्राणियों का स्वभाव नहीं बदलता, अतः खलों का स्वभाव पूर्ववत्ही रहा। निन्दा वाक्यों की चोपड़ियाँ छपीं, गीतें बनीं। परिणाम यह हुआ कि “अति संघर्ष करै जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई। मानस-उत्तर-110।8” सागरपुर, दतियाना आदि ग्रामों में सभायें हुई। सर्वत्र के पक्ष विपक्ष वाले विद्वान एकत्रित हुए थे। विपक्षियों की ओर से अनेकों कुतर्क पूर्ण प्रश्न किये गये। सबों का यथेष्ट समाधान हुआ। उन सबों के प्रश्नों में 'श्री सम्प्रदाय अवैदिक, शंख चक्र धारण अवैदिक' इत्यादि प्रश्नों का समाधान जो श्री स्वामी जी की ओर से हुआ था उसका प्रधान अंश नीचे दिया जाता है - तीनों वेदों में पठित श्रुति -

“पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषिविश्वतः अतप्त तनून तदामोऽश्रुते श्रुतासः इद्वहन्त स्तत्समासत।”

अन्वय - हे ब्रह्मस्पते ! प्रभुः त्वं विश्वतः गात्राणि पर्येषिते पवित्रं विततं तेन अतप्त तनूः आमः तत्तन अश्रुते, इद्वहन्तः श्रुतासः तत्समासत। हे ब्रह्म के अधिष्ठाता देव परमात्मा ! आप विश्व के नियामक रूप से सर्वत्र व्यापक हो। आपका सुदर्शन चक्र आस्तिक जनों की भुजा पर चिन्ह रूप से विद्यमान रहता है। तप्त सुदर्शन चक्र के चिन्ह रहित जनों का पाप नष्ट नहीं होता अतएव उन्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। इस तप्त सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले दग्ध पाप होकर परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। उपर्युक्त श्रुति में पवित्र शब्द का अर्थ सुदर्शन चक्र है। इसका प्रमाण नीचे दिया जाता है।

“सुदर्शमप च दर्भे च पवित्रं चरणं सूत्रं के” (वेद निघण्टु)

“सुदर्शनं सहस्रारं पवित्रं चरणं पविः।” “सुदर्शनं हरेश्चक्रं पवित्रं चरणं पविः।” “पवित्रं चरणं नेमी रथ चक्रं सुदर्शनम्।” “सहस्रारं प्राकृतध्वं लोक द्वारं महौजसम्।” नमामि विष्णु चक्रस्य पर्यायेण निबोध मे (पद्म पुराण)। “उपर्युक्त उद्धरणों में पवित्र शब्द सुदर्शन चक्र का वाचक है। “पवित्रं चरणं चक्रं लोकद्वारं सुदर्शनम्। पर्याय वाचका ह्येते चक्रस्य परमात्मनः।। (श्री शास्त्र)।” पवित्र शब्द परमात्मा के चक्र का वाचक है।

“पवित्र शब्दस्य परिशुद्धिं त्राणं कर्तृत्वावच्छिन्ने, योग शक्तेः सुदर्शनत्वावच्छिन्ने रूढेश्च सत्वात्योग रूढता। पुनाति त्रायते चेत्यतः पवित्रमइति। (एकायन ब्राह्मण निरुक्त)।” उपर्युक्त श्रुति में तत्तशब्द ब्रह्म वाचक है।

“तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति” “ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः” इन प्रमाणों द्वारा पवित्र शब्द सुदर्शन चक्र का वाचक और तत्तशब्द परमात्मा का वाचक है।

पवित्र मित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रारः सहस्रारो नेमिः। नेमिना तप्त तनुः ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।” (सामवेद मैत्रायणीय शाखा)। शुद्ध

करने वाला भगवच्चक्र अग्नि के संयोग से तप्त होने से अग्नि रूप होने के कारण सहस्रों छेदन योग्य अर वाला वर्तुलाकार चक्र से तपे हुए भुजा वाला प्रपन्न भक्त परमात्मा के अपहृत पापमत्वादि समान गुणवाला होकर भगवत्लोक प्राप्त कर लेता है।

विष्णोर्नुक्तेन मन्त्रेण तापयित्वा सुदर्शनम्। चरणं पवित्रमिति द्वाभ्यां तदभि मन्त्रयेत्।

पवित्रं ते विततमिति मुदयेदक्षिणे भुजे। ज्ञान वैराग्यमास्तिक्यं श्रद्धा चास्याभिवर्धते।। (सनक स्मृति)

इस वचन के द्वारा यह सिद्ध होता है कि “विष्णोर्नुक्तेन ०” इस मन्त्र से सुदर्शन चक्र को अग्नि में तपा कर चरण और पवित्र श्रुति से उसे अभिमन्त्रित करे। पुनः “पवित्रं ते विततं ०” इस मन्त्र से सुदर्शन चक्र को दाहिनी भुजा पर मुद्रित करे। इससे जीव प्रपन्न भक्त बन जाता है और उसकी श्रद्धा एवं ज्ञान वैराग्य और आस्तिक्य सभी बढ़ जाते हैं।

चरणं पवित्रं विततं पुराणं वाङ्मयं शुभम्। तेन चक्रेण सन्तप्ताः तेरयुः पातकाम्बुधिम्।।

पवित्रं ब्रह्मणस्पत्यं जगद्व्याप्तं हरेस्सदा। तेन तप्ता तनुर्येषां ते यान्ति परं पदम्।।

तेन तप्ता तनुर्येषां ते प्रयान्ति परं पदम्। शुद्धेन तेन तप्तेन ब्रह्मणस्तेन पुनीहि नः।।

येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु नः।।

प्रजापत्यं पवित्रं तच्छतो द्यामं हिरण्य मयम्। तेन ब्रह्म विदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे।।

सनेभिः चक्रमजरं चक्षुरस्य महात्मनः। तस्मिन् विधृते देवा महोन्नत पदं ययुः।।

यत्ते पवित्रमर्चिषि अग्ने तेन पुनीहि नः। इत्येवं श्रुतयः सर्वाः कथयन्ति वरानने।

तस्माद्वै विधिवद्धार्याः शंखचक्रादि हेतयः (पद्म पुराण। उत्तर खण्ड। अध्याय 224)।।

इण वाक्यों के अन्तर्गत “तेन चक्रेण सन्तप्ताः तेरयुः पातकाम्बुधिम्।” इस वाक्य से पातक रूप समुद्र से पार करने के लिए तप्त सुदर्शन चक्र को भुजा पर धारण करना चाहिए। और तप्त सुदर्शन चक्र को नहीं धारण करने वाले “तेन तप्ता तनुर्येषां ते यान्ति हरे पदम्।” मोक्ष नहीं प्राप्त करते। “तेन तप्ता तनुर्येषां ते यान्ति परं पदम्।” उस सुदर्शन चक्र से जिसका शरीर तप्त हुआ है वे मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं। “तस्मिन् विधृते देवा महोन्नत पदं ययुः।” उस तप्त सुदर्शन चक्र के धारण से बहुत से भागवत उन्नत पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लिए। इसलिए प्रपन्न भक्त होने के लिए ऐहलौकिक पारलौकिक सुखाभिलाषी और मुमुक्षुओं को शास्त्रविधान पूर्वक तप्त शंख चक्र अवश्य धारण करना चाहिए। “ततो लोका महामूढाः विष्णुभक्ति विवर्जिताः। निश्चयं नाधिगच्छन्ति पुनर्नारायणं हरिम्।।” शिवजी ने पार्वती से कहा कि जो लोग विष्णु भगवान की भक्ति छोड़कर अन्य देवों की उपासना करते हैं वे महामूर्ख हैं। निश्चय वे भगवान को नहीं प्राप्त करते। “चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः अति पाप्मानमरातिं तरेम। लोकस्व द्वारमर्चिमतपवित्रं ज्योतिष्मत् भ्राजमानं महस्वत् अमृतस्य धारा बहुधा दोहामानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु। (यजुर्वेद कठ शाखा)।”

अन्वयः - पवित्रं पुराणं चरणं विततं येन पूतः दुष्कृतानि, तरति शुद्धेन तेन (धृतेन सुदर्शनेन)। पूताः वयमरातिं पाप्मानं अति तरेम लोकस्य द्वारमर्चिमतज्योतिष्मत् महस्वत् भ्राजमानं अमृतस्य धारा बहुधा दोहामानं एतादृश पवित्रं चरणं लोके नः सुधितां दधातु।” तप्त सुदर्शन के मुद्रा रूप से आचार्य द्वारा अपनी दाहिनी भुजा पर धारण करने वाले प्रपन्न भक्त के अनादि काल का संचित पाप नष्ट हो जाता है। इसलिए पवित्र करने वाला तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला तप्त सुदर्शन चक्र को हम भी अपनी भुजा पर धारण कर पाप रूपी शत्रु को नाश कर संसार से तर जायें। भगवत्लोक प्राप्ति के उपायभूत प्रचण्ड ज्वालाओं से युक्त देदीप्यमान किरणों से सुशोभित अत्यन्त अप्रतिहत प्रकाशवाला परम तेजस्वी मोक्ष का अनन्य समर्पक परम पवित्र सुदर्शन हमको दिव्य वैकुण्ठ में प्रदर्शित करे।

“मोक्ष कामः नरः सुदर्शनं धारणं कुर्यात्। पाप निवृत्ति कामः सुदर्शनं धारणं कुर्यात्।।”

चमूपच्छयेन शुकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभृत्। अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयमधाम महिषो विवक्ति।

अन्वयः - अपामूर्मि समुद्रं सचमानः द्रप्स गोविन्दुः आयुधानि विभृत्, चमूपत्स्येनः शुकनः विभृत्वा तुरीयं धाम महिषः सन्विवक्ति।

पञ्चभौतिक शरीर से सर्वदा सम्बन्ध रखने वाला परमात्मा के शरीर रूप जीव भगवान्‌के शंख चक्रादि आयुधों को तप्त मुद्रा रूप से आचार्य द्वारा धारण करे तो वह जिन नित्य सूरियों से अनुगम्यमान होकर वैकुण्ठ में पहुंच अपने सम्बन्धियों को भी संसार सागर से पार कर मोक्ष प्राप्ति का अक्षय्य सुख भोगता है।

“गोविन्दस्यायुधान्यङ्गे विभ्रतसुश्रोणि वैद्विज। तुरीयं धाम तद्विष्णोर्महिष्ठः प्राप्नुयादिति।।” “चमूपच्छयेनऽशकुनो विभृत्वेति ऋग्ववीत्।” भगवान्‌ के आयुधों को मुद्रा रूप से अपने अंगों पर धारण करे तो वह जीव नित्य सूरियों से पूज्य हो परमात्मा के लोक अवश्य प्राप्त कर लेता है। यह चमूप श्रुति से सिद्ध है। इस प्रकार श्रीस्वामी जी महाराज का उत्तर सुनकर विपक्षियों का मुख वन्द हुआ किन्तु “स्वभावो दुस्त्य जो नाथ” के अनुकूल पेट में वायुविकार रह ही गया था। इसी प्रकार आर्य समाजियों से भी मुठभेड़ हुई। ढिवरा आदि ग्रामों में सभायें हुई। उन सबों ने भी अपनी बुद्धि का परिचय दिया। जिन्हें पूर्वोक्त उत्तर दिये गये। अर्थात्‌ श्री सम्प्रदाय की वैदिकता पोषक उत्तर दिया गया। मूर्ति खण्डन विषय प्रश्नों का समाधान श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा जो हुआ था उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

आर्य समाजियों का प्रश्न - 1। श्री स्वामी जी महाराज ! “नैनमूर्ध्व न तिर्यञ्च न मध्ये परिजगभत्। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।” इस वैदिक मन्त्र में “न तस्य प्रतिमा अस्ति” अर्थात्‌ उस ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं है इस निषेध वाक्य से स्पष्ट ही मूर्ति पूजन का खण्डन सिद्ध है तो फिर मूर्ति पूजन के विषय में लोगों की प्रवृत्ति क्यों है ?

उत्तर -1। आपलोग पूर्वोक्त मन्त्र का जो ऐसा अर्थ करते हैं वह भूल है। क्योंकि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस वाक्य में प्रतिमा शब्द का अर्थ उपमा है। अर्थात्‌ उस परमप्राप्य ब्रह्म को कोई भी मनुष्य न तो ऊपर से पकड़ सकता है न नीचे से और न मध्य तथा इधर उधर से ही पकड़ सकता है। ये सर्वथा आग्रह्य हैं। जिनका नाम महान यश है, जिनका महान यश सर्वत्र प्रसिद्ध है उस परात्पर ब्रह्म की कोई भी उपमा नहीं है जिनके द्वारा उनको समझा जाए या किसी अन्य को समझा जा सके। “न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।” “गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।”

प्रश्न 2 - यदि वेदों के आधार पर मूर्ति पूजन मानते हैं तो क्या वैदिक मन्त्रों में मूर्ति वर्णन दिखा सकते हैं ?

उत्तर 2 - हाँ, अनेकों मन्त्र मूर्ति वर्णन में व्यस्त हैं। आप ध्यान से सुनें - “सहस्रस्य प्रभासि सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रस्योन्मासि सहस्रायत्वा।। यजुर्वेद 15।35।” सहस्रों का तू प्रभा है, सहस्रों की प्रतिमा है, सहस्र का उन्मान है, सहस्राह है, सहस्र फल देने वाला है। “अभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्च परिमितश्च अपरिमितश्च ...। श का 14 अ 1 वा 2 मं 18।” “द्वावेव ब्रह्मणे रूपे मूर्त ज्वामूर्तञ्च...। अ 2 वा 3 कं 1।” “रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्यरूपं प्रतिचक्षणाय। ऋ मं 6 अ 4 सू 47।” “याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पाप काशिनी। यजु 16।2।49।” हे रुद्र ! तेरा शरीर कल्याण करने वाला है, सौम्य है, और पुण्य फल देने वाला है। “आदित्यं गर्भं पयसा समङ्घि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। यजु 13।40।” विश्व स्वरूप आदित्य को पय में स्थापित करे। वह सहस्रों की प्रतिमा है। “अजात इत्येवं कश्चिद्भीरु प्रपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।” इस मन्त्र में रुद्र के मुख का वर्णन है। किसी के साकार रूप विना मुख या किसी अंग का होना असम्भव है।

प्रश्न 3 - जब निराकार के ध्यान से भी मुक्ति हो सकती है तब मूर्ति पूजा की विडम्बना में लोग क्यों पड़ते हैं ?

उत्तर 3 - किसी के ध्यान में तीन पदार्थ का ध्यान आवश्यक है। ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन तीनों के ज्ञान विना ध्यान बन नहीं सकता है। अतः साकार में ही ध्यान बन सकता है।

प्रश्न 4 - यदि परमात्मा साकार है तो किसके आधार पर ठहरा हुआ है ? साकार को आधार अवश्य चाहिए।

उत्तर 4 - यदि निराकार ब्रह्म को आप सभी व्यापक मानते हैं तो उसका भी कोई आधार होना चाहिए अन्यथा उसकी व्यापकता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः निराकार का भी आधार अवश्य मानन होगा। वही आधार साकार का भी होगा।

प्रश्न 5 - यदि वेदों से मूर्ति पूजन सिद्ध है तो वह वैदिक मंत्र बताइए कि जिसमें ईश्वरादि को पाषाणादि की मूर्ति बनाने का वचन हो।

उत्तर 5 - “अथ मृत पिण्डमुपादाय महावीरं करोति मखा यत्वा मखस्य त्वा शीर्णे। प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिवहि शिरोमध्ये संगृहीतम्, मध्ये संगृहीतमिवहि शिरोऽथास्य उपरिष्ठात्त्रयङ्गुलं मुखं मुन्नयति। नासिकामेवास्मिन्नेतद्वधाति तं निष्ठतमभि मृषति मखस्य शिरोऽसीति। शतपथ ब्राह्मण।” मिट्टी का पिण्ड लेकर “मखा यत्वा मखस्य त्वा शीर्णे” मन्त्र पढ़कर प्रादेश मात्र लम्बा यज्ञरूप प्रजापति के शिर महावीर को बनावे। बीच में संकोच करे। इससे तीन अंगुल ऊपर मुख बनावे और उसके ऊपर नासिका बनावे। “पश्चात्तमखस्य शिरोऽसीति” पढ़कर दायाँ हाथ से मूर्ति स्पर्श करे। इस प्रकार पुरुषाकार मूर्ति बनाने का संविधान वेदों में अनेकानेक पाया जाता है।

प्रश्न 6 - यदि ईश्वर साकार है साकार की भांति प्रत्यक्ष रूप में क्यों नहीं दीख पड़ता ?

उत्तर 6 - ईश्वर साकार है और उत्तम उपासकों द्वारा देखा भी अवश्य जाता है। अर्जुन आदि सद्भक्तों ने उसके विराटरूप का दर्शन किया था। इसलिए “नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।” इत्यादि मन्त्रों में वायु आदि रूपों में ब्रह्म को प्रत्यक्ष बतलाया गया है। काम क्रोधादि ग्रस्त व्यक्तियों को ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो तो इसमें ईश्वर का क्या दोष। “नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धोन पश्यति। (निरुक्त)।” “विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः। गी 15।10।” ईश्वर विश्वरूप में प्रकट होकर सबों के प्रत्यक्ष ही हैं।

प्रश्न 7 - यदि मूर्ति पूजन वेद विहित है तो पूजारी शालिग्राम वेंकटेश्वर आदि शब्दों का क्या अर्थ है ?

उत्तर 7 - पूजारी शब्द का अर्थ पूजा का अरि याने शत्रु समझना महान भूल है। इस शब्द से ह्रस्व इकार नहीं है दीर्घ ई कार वाला संस्कृत का शब्द है। इसकी बनावट इस प्रकार जानना चाहिए। “पूजायाः अरो = ज्ञान पूजारः।” “ऋगतौ” धातु से “ऋदोराप्” पाणिनीय सूत्र से अपप्रत्यय होता है। गति का ज्ञान, गमन प्राप्ति आदि अर्थ होता है। “अतः प्रशस्त पूजारः अस्यास्तीति पूजारी” अर्थात्सम्यक्देव पूजा विधि और तत्त्व विज्ञाता को पूजारी कहते हैं। पाणिनीय सूत्र “अत इनि ठनौ” इससे इन्प्रत्यय के द्वारा पूजारी शब्द बनता है। अथवा “पूजायाः रोदानं पूजारः” रादानो धातु से घञर्थ में 'क' प्रत्यय होता है। पुनः मत्वर्थीय इन् के द्वारा उक्त शब्द की सिद्धि होगी। अर्थात्पूजा का फल अपने स्वामी को अर्पण करे या पूजा प्रसाद तुलसी पत्रादिक जो भक्तों को वितरण करे उसको पूजारी कहते हैं। इसी प्रकार प्रशंसा अर्थवाला शाल धातु से शाल शब्द बना है और ग्राम शब्द समूहार्थक है। अतः “शालानां = प्रशंसानां ग्राम-समूहो यस्मिन्स शालग्रामो भगवन्मूर्ति विशेष गण्डक्यामनद्यामुत्पन्नो मोक्षार्थिभि पूज्यः उपास्यश्च अर्थात्मोक्षार्थियों के उपास्यदेव गण्डकी नदी में होने वाले स्वयंव्यक्त भगवान की मूर्ति विशेष।

प्रश्न 8 - निश्चेष्ट पाषाणादि की मूर्तियों में क्या कोई शक्ति है कि उसकी पूजा की जाती है ?

उत्तर 8 - आर्य समाजी लोग यह समझते हैं कि सनातन धर्मी केवल पाषाणादि की मूर्ति की पूजा करते हैं वह महान भूल है। वल्लि हमलोग मूर्तिमान सर्वशक्ति सम्पन्न परब्रह्म परमेश्वर की पूजा उनकी प्रसन्नता के लिए किया करते हैं। जिस ब्रह्म में अनेकों अघटित घटना शक्ति है, इस विषय में वैदिक प्रमाण है -

“यः पृथिव्यां तिष्ठन्त्यः पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्। यः पृथिवीमन्तरो यमयति।”

“भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।”

“तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।”

इन प्रमाणों से सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति स्पष्टतया झलकती है। सम्पूर्ण सृष्टि की स्थिति, पालन और संहार करने की शक्ति उसी ईश्वर में है - “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्यामि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व ब्रह्म इति।”

इसीलिए ब्रह्म - सूत्र - कर्ता भगवान वेद व्यास ब्रह्म के सम्बन्ध में परिचय यों दिए हैं - “जन्माद्यस्य यतः। 1।1।2।”



प्रश्न 9 - पाषाण मूर्तियों में पड़ित लोग जो वैदिक मन्त्रों से प्रतिष्ठा करवाते हैं तो क्या मूर्ति में प्राण आ जाता है ? यदि ऐसी बात है तो उसमें नश नाड़ी का परिज्ञान होना चाहिए ?

उत्तर 9 - प्राण शक्ति दो प्रकार की होती है। एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। योगियों की समाधि अवस्था तथा वृक्ष वनस्पति कन्दमूल फलादिकों में सूक्ष्म प्राण शक्ति रहती है किन्तु नश नाड़ी का परिज्ञान नहीं होता। योगियों की समाधि मास वर्षों की होती है। उस अवस्था में वे जीवित रहते हैं किन्तु निश्चेष्ट होकर। इसी प्रकार मूर्ति में सूक्ष्म प्राण शक्ति ही मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित होती है। अतः नश नाड़ी का परिज्ञान वहां नहीं होता।

प्रश्न 10 - सर्वव्यापक ईश्वर को एक छोटा स्थान मन्दिर में रहना समझ कर पूजनादि करना क्या उनकी व्यापकता को सीमित करना नहीं है ? या अपने विचार को संकुचित करना नहीं हुआ ?

उत्तर 10 - ईश्वर अपने भक्तों के कल्याणार्थ पांच रूपों में विद्यमान रहते हैं - 1। पर, 2। व्यूह, 3। विभव, 4। अन्तर्यामी और 5। अर्चा।

1। पर - पर वासुदेव वैकुण्ठ में भू नीलादि देवियों के साथ नित्य मुक्त जनों को सदा अनुप्राणित करते रहते हैं - “वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः। उभाभ्यां भूमि नीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः।।”

2। व्यूह - सृष्टि के स्थिति पालन संहार के लिये षड्गुण सम्पन्न ईश्वर दो दो गुणों के साथ संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तीन रूपों में अवतरित होते हैं। इन्हीं तीन मूर्तियों के साथ पर वासुदेव को मिला देने से चतुर्व्यूह संज्ञा हो जाती है। “चतुर्विधः सभगवान् मुमुक्षूणां हिताय वै। अन्येषामपि लोकानां सृष्टि स्थियन्त सिद्ध्ये।”

3। विभव - भक्तों के विशेष कार्यार्थ तथा दुष्टों के संहारार्थ वही ईश्वर राम कृष्ण नृसिंहादि रूपों में अवतरित होते हैं।

4। अन्तर्यामी - सर्वों के हृदय में बैठकर नियमन करते रहते हैं अर्थात्सर्वों को सदा यह निर्देश देते रहते हैं कि तुम शुभ या अशुभ कर रहे हो। “यः आत्मानमन्तरो यमयति, अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्, शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।”

5। अर्चा - चेतनों के विशेष अभिमत सुलभतया सिद्धि के लिए उनसर्वों के पूर्व पापों को नहीं विचारते हुए देश काल तथा अधिकारी आदि की अपेक्षा विना केवल अपनी निर्हेतुक कृपा द्वारा भगवान् अर्चकाधीन होकर मन्दिर में अर्चारूप में परिणत हो गये। अर्चा के दो भेद हैं। एक स्वयंव्यक्त भगवान्, जैसे - रंगनाथ, वेंकटेश, जगन्नाथ, वद्रीनारायण, शालिग्राम आदि। दूसरा प्रतिष्ठित भगवान् - पाषाणादि निर्मित मूर्ति जिसमें प्राण प्रतिष्ठा की गयी है। ईश्वर के इन पांच भेदों में चेतनों के परम कल्याण कारक अर्चा विग्रह ही हैं। क्योंकि पर व्यूह विभव और अन्तर्यामी का ध्यान दर्शन एवं पूजन सर्वथा असंभव है और अर्चा को सुलभ। यद्यपि उक्त सभी रूपों में वही सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर रहते हैं फिर भी जैसे गौ के सर्वांग में दूध की व्यापकता रहते भी केवल थन से ही दूध प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार चेतनों के कल्याण के लिए उपजीव्य केवल अर्चा विग्रह ही हैं। ऐसी परिस्थिति में मन्दिर में भगवान् का रहना कैसी उनकी व्यापकता को सीमित करना हुआ, अथवा इस तरह के विचार रखने वालों का विचार ही कैसे संकुचित हुआ ? इस विषय को संकुचित समझने वालों की महान भूल है।

इस प्रकार अनेकों प्रश्न आर्यसमाजियों ने किया था। कई दिनों तक शास्त्रार्थ होते रहे, किन्तु समुचित उत्तर मिलते गये जिससे सर्वों को हार माननी पड़ी। आकाश में उछाला कीचड़ अपने ही माथे पड़ता है। सर्वों का मुख वन्द हुआ। इस शास्त्रार्थ में वृन्दावन के सुदर्शन शास्त्री जी के विद्यार्थी श्री गोविन्द नारायण जी भी थे। इन्होंने आर्यसमाजियों के सत्यार्थ प्रकाश से ही मुंहतोड़ उत्तर सर्वों को दिए थे। यद्यपि इस मुठभेड़ में आर्यसमाजी परास्त हुए थे फिर भी वे सभी श्री गोविन्द नारायण जी तथा श्री स्वामी जी महाराज की विद्वत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा किए थे। इस तरह के संघर्षों के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज की ख्याति और बढ़ी। ग्रामसिंहों की चिल्लाहट दूर हुई। इसी अवसर पर क्षेत्रीय लोगों की



अज्ञानता दूर करने के लिए तरेत में विद्यालय खोला गया था जिसकी चर्चा पूर्व में हो चुकी है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

### श्रीस्वामी जी महाराज का योगाभ्यास

स्थान - वृन्दावन धाम से दक्षिण यमुना के पश्चिम तट भतरौढ़ नामक स्थान जहां मथुरा की ब्राह्मण स्त्रियों ने श्रीकृष्ण को भोजन कराया था।

1। शरीर पांच भौतिक है। पांच भूतों का संमिश्रण। पंचीकरण कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये ही पांच भूत हैं।

2। सात धातुयें हैं - 1- रस, 2- शुक्र इसके जगह को 1 लोम, 2 चर्म, 3 रुधिर, 4 मांस, 5 हड्डी, 6 मज्जा, 7 मेद।  
“सप्तत्वगष्ट विटपो नवाक्षः। भागवत 10।2।27।”

3। इस शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ हैं - “सार्द्धत्रय लक्ष नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्। प्रधान भूता नाड्यस्तु तामु  
मुख्याश्चतुर्दश।।”

4। प्रधान चौदह ये हैं - 1 सुषुम्ना, 2 ईडा, 3 पिंगला, 4 गान्धारी, 5 हस्तिजिह्वा, 6 कुहू, 7 सरस्वती, 8 पूषा, 9 शंखिनी, 10 पयस्विनी, 11 वारुणा, 12 अल्मवुषा, 13 विश्वोदरी, 14 यशस्विनी।

5। शरीर में सात पद्म हैं - 1 चतुर्दल पद्म, 2 षटदल पद्म, 3 दशदल पद्म, 4 द्वादशदल पद्म, 5 षोडश दल पद्म, 6 द्विदल पद्म, 7 सहस्रदल पद्म। ये सभी भगवान के प्रकाश से प्रकाशित रहते हैं।

6। द्विदल पद्म भूमध्य में है। यहीं से 'ॐ' प्रणव बीज का उच्चारण होता है। यही महत्त्व स्थान है। यहीं से सभी तत्व प्रकट होते हैं और पुनः यहीं पर विलीन हो जाते हैं। यहां ज्योति ही ज्योति करोड़ों सूर्य के समान चमकती रहती है - “नारायण परो ज्योति...।”

7। पद्मों के अधिष्ठाता देव नारायण और अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। साधक गणों को चाहिए कि वे चित्त वृत्ति निरोध पूर्वक वायु को धीरे धीरे मूलाधार से प्रत्येक पद्म होते हुए सहस्रदल कमल तक ले जाने उपर्युक्त दोनों देवों का ध्यान पूर्वक अभ्यास करे।

8। मस्तिष्क में आठ सत्तायें गुप्त हैं। जिनको योगी जन ही योग विद्या से ही जानते हैं। और यही आठों द्वारा आठ सिद्धियाँ भी योगियों को मिलती हैं।

9। शरीर में सात शक्तियाँ हैं - 1 आश्रमिका, 2 स्वसंरक्षिणी, 3 स्वोत्कर्षिणी, 4 सत्प्रवर्तिनी, 5 मनः प्रवर्तिका, 6 बुद्धि प्रवर्तिका, विषय ग्राहिणी, 7 विवेचनी।

10। सत्प्रवर्तिनी शक्ति के पांच भेद हैं जिसमें एक आत्मज्ञान सत्ता है। इस सत्तावाले और भक्ति सत्ता वाले का मस्तक का मध्यभाग ऊँचा और उठा हुआ होता है। वे सदा आत्मा और परमात्मा में विश्वास रखते हैं।

11। विवेचनी शक्ति के चार भेद हैं जिसमें एक न्यायसत्ता है। इस सत्तावाले का ललाट का अग्रभाग विशाल और ऊँचा होता है। वह बुद्धिमान, न्यायशास्त्र में प्रवीण, ब्रह्म सृष्टि का आदि कारण सिद्धान्त करने वाला और चित्तवृत्तियों का निरोधक होता है। जिसमें यह सत्ता पूर्णमात्रा में रहती है वह नवीन विद्याओं का आविष्कारक होता है। जैसे कपिल ने सांख्य, व्यास ने वेदान्त, और भास्कराचार्य ने पृथ्वी का आकर्षण निकाला है।

12। मेरुदण्ड की बाहर की ओर वाम और दक्षिण भाग में चन्द्र और सूर्य से अधिष्ठिता दो नाड़ियाँ ईडा और पिंगला हैं। ईडा मेरु की बायीं ओर से और पिंगला दाहिनी ओर से लिपटी हुई हैं। फिर इसी मेरुदण्ड के मध्य में सुषुम्ना नामकी नाड़ी है जो सत्व रज और तम इन तीनों गुणों से युक्त है। अथवा तीन गुण के सूत वा रज्जु ऐसी लिपटी हुई चन्द्र सूर्य और अग्नि से अधिष्ठित तथा अत्यन्त प्रकाशमान है। यह सुषुम्ना नाड़ी धतूर के पुष्प सदृश खिली हुई मूल द्वार से निकल कर दोनों कन्धों के मध्य होती हुई मस्तक में सहस्रदल कमल तक चली गयी है। इसी के मध्य एक वज्रा नामकी नाड़ी भी है जो लिंग देश से निकलकर मस्तक तक चमकती हुई लगी रहती है। इस वज्रानाड़ी के मध्य प्रणव अर्थात् ॐकार युक्त मकरे के सूत ऐसी पतली योगाभ्यास द्वारा योगियों को ही विदित होनेवाली चित्रिणी नामकी एक तीसरी नाड़ी है जो मेरुदण्ड मध्यस्थ पट्टचक्रों को भेदती हुई प्रकाशमान हो रही है। इसी के मध्य एक चौथी ब्रह्म नामकी नाड़ी है जो प्रसिद्ध पट्टपद्यों को माला के समान पिरोती हुई और साधकों को शुद्ध ज्ञान देती हुई सहस्रदल कमल की कर्णिका में स्थित आदिदेव नारायण के समीप चली गयी है।

13। पृथिवी चक्र के गोद में प्रातःकालीन सूर्य सदृश श्यामवर्ण बालस्वरूप सृष्टि कर्त्ता नारायण अपनी चारों भुजाओं में शंख चक्र गदा और पद्म इन आयुधों से युक्त गरुड़ पर विराजमान हैं ऐसा समझना चाहिए। “यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।” “मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।”

14। पुनः चतुष्कोण चक्र के पृथिवी वीज में ब्रह्मा की अपूर्व शक्ति अत्यन्त प्रकाशमान चार भुजाओं वाली रक्त नयना प्रलय काल के द्वादश सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशमान हो रही है। और शुद्ध बुद्धि जो शिशु रूप ब्रह्मा, उसको प्रकाश दे रही है। अर्थात् सृष्टि रचने की सत्ता दे रही है। क्योंकि बिना शक्ति के कोई भी देव कुछ करने को समर्थ नहीं है। अथवा शुद्धबुद्धि जो योगीजन, उनको ईशित्व सिद्धि प्रदान कर रही है।

15। मूलाधार पद्म के गह्वर में अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकाश धारण किए हुए कमल नाल की सूत सी अत्यन्त पतली सुषुम्ना नाड़ी के मुख को अपने मुख से ढंकते हुए शंख के आवेष्टन ऐसी कुण्डलिनी है। यह अत्यन्त सुन्दर काव्य रचना शक्ति देने वाली और श्वासोच्छ्वास द्वारा अर्थात् प्राण अपान के गमन द्वारा जीवों के प्राण को धारण करती है। इसी कुण्डलिनी के मध्य अत्यन्त ज्ञान प्रकाशक विद्युत्तमाला के समान रश्मियों से प्रकाशमान नारायण श्रीदेवी के साथ अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा जीवों का अभ्युदय कर रहे हैं।

16। मूलाधार चक्र की कर्णिकास्थित त्रिकोण यन्त्र में कुण्डलिनी के मध्य करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान नारायण और महालक्ष्मी का जो ध्यान करता है वह वचन में बृहस्पति के समान वक्ता, मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ शीघ्र सभी विधाओं को जानने वाला, काव्य प्रबन्ध में निपुण एवं नारायण की भक्तिवाला वह हो जाता है।

17-ध्यान करने वालों को चाहिए कि कम से कम पांच मिनट एक एक चक्र पर ध्यान द्वारा चित्तवृत्ति को ठहराते हुए चतुर्दल कमल से सहस्र पर्यन्त आधा घन्टा में जाये। ऐसा अभ्यास करने से प्राण और मन दोनों का ऐसा अवरोध हो जाता है जिसका आनन्द अकथनीय है।

18- सुषुम्ना नाड़ी के मध्य जो चतुर्दल पद्म के ऊपर दूसरा पद्म छः दल का है, इसको अधिष्ठान चक्र कहते हैं। यह पद्म कोमल सिन्दूर के रंग के समान गुलाबी रंग से सुशोभित है। इसके छवों दलों पर श्री विष्णु भगवान् चतुर्भुज नील प्रकाश से प्रकाशित अर्थात् श्यामवर्ण शरीर अत्यन्त सुन्दर युवावस्था से गर्वित पीतवस्त्रधारी, हृदय में श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि धारण किए शोभायमान हो रहे हैं।

19- उक्त चक्र से ऊपर नाभि के मूल में नीलवर्ण प्रकाशित दशदल का कमल है। इस चक्र के मध्य में बालसूर्य के समान लक्ष्मी सहित विष्णु का ध्यान करना चाहिए। यह मणिपूरक चक्र है।

**20-** मणिपूरक चक्र के ऊपर हृदय में अति सुन्दर बन्धूक (दुपहरिया) फूल के समान लालवर्ण द्वादश दल का एक कमल है। इसका नाम अनाहत चक्र है। यह कल्पवृक्ष के समान फलदायक है। इसी के ऊपर जीवमात्र के मुक्तिदाता श्रीलक्ष्मी नारायण विद्यमान हैं।

**21-** षोडशदल कमल के मध्य गोलाकार आकाशमण्डल है। यह पूर्ण चन्द्र के प्रकाश से प्रकाशित हो शोभ रहा है। इसी स्थान में शुक्ल वस्त्र धारण किए चतुर्भुजी विष्णु चारों पदार्थों के दाता शोभायमान हो रहे हैं। पुनः इसी कमल की कर्णिका में निष्कलंक षोडशकला युक्त पूर्णचन्द्रमण्डल शोभायमान हो रहा है। जो सफल श्री वा पराक्रम के अभिलाषी जितेन्द्रिय पुरुषों का मोक्ष का द्वार है।

**22-** भूमध्य में प्रकाशमान ललाट स्थान में दो दल का एक कमल चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण का है। इसी को आज्ञाख्य पद्म कहते हैं। इसके एकदल पर विष्णु, दूसरे दल पर लक्ष्मी रहती है। ये दोनों आश्रितों को अभिलषित पदार्थ एवं मोक्षदाता हैं। भगवान को इस स्थान में ध्यान करने से दिव्यलोक मिलता है।

“भुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्, सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्। गी 8।10।

**23-** शंखिनी नाड़ी मूल द्वार में स्थित है और वहां से सीधे ब्रह्माण्ड तक चली आयी है। उसीके शिखर पर सहस्रदल वर्तमान है। अर्थात् ब्रह्माण्ड में फैला हुआ विसर्ग नामकी शक्ति के नीचे अत्यन्त प्रकाशमान सहस्रदल कमल है जो अधोमुखी है। प्रातःकालीन वालरवि की भांति सुशोभित हो रहा है।

**24-** उक्त ब्रह्म को जो परम प्रकाशमान हैं और इसी स्थान में निवास किए हुए हैं उनका चिन्तन करना चाहिए। भगवद्भक्त लोग इसी ब्रह्माण्डस्थल को भेदन करके अर्चिरादि मार्ग को ग्रहण करते हैं। अर्थात् विरजापार पर वासुदेव भगवान को प्राप्त करते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

### श्रीस्वामी जी महाराज की तीर्थयात्रा

देहधारियों के लिए तीर्थ यात्रा दो प्रकार की होती है। एक तो सर्व साधारण के पाप प्रक्षालन के लिए, दूसरी भगवत्प्रेमी लोगों के लिए। यों तो श्री वैष्णव पाद प्रक्षालित जल से बढ़कर किसी तीर्थ का शुद्ध जल नहीं है - “नान्यत्परं तरं तीर्थं वैष्णवाधि जलाच्छुभात्। तेषां पादजलं शुद्धं गंगामपि पुनाति हि।।”

“तिस्रः काट्यर्थ कोटोच तीर्थानां भुवन त्रये। वैष्णवाधि जले पुण्ये कोटि भागेन नो समाः।।”

तीनों लोकों में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ प्रसिद्ध हैं। किन्तु ये सभी मिलकर भी श्रीवैष्णवपाद प्रक्षालन जल के करोड़वाँ भाग के बराबर नहीं हैं। सीता हरण काल में श्री रामजी वृक्षादिकों से पूछते चलते थे कि सीता को इधर कोई देखो हो ? इसी क्रम में गोदावरी से भी पूछे, किन्तु वह उत्तर नहीं दे सकी तो उसे शाप दे दिए तुम अपवित्र हो जाओ। जब पुनः गोदावरी भगवान के चरणों पर गिरी तो वे कहे कि तुम शवरी के पाद प्रक्षालन जल से शुद्ध होगी और ऐसा ही हुआ भी। श्रीवैष्णवों की तीर्थ यात्रा तीर्थों को पवित्र करने एवं लोक संग्रह तथा शास्त्र मर्यादा की रक्षा के लिए होती है। जैसे जटायु को मोक्ष देने पर भी भगवान शास्त्र मर्यादा के रक्षार्थ उनका श्राद्ध तर्पण भी किए। “नह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला मया। ते पुनन्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः।।” तीर्थ देवादि बहुकाल पश्चात् पवित्र करते हैं किन्तु महत्पुरुष तो दर्श न देते ही पवित्र कर देते हैं। “भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्व देहिनाम्।” महत्पुरुषों की यात्रा जीवमात्र, जड़-चैतन्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि तथा वृक्ष लता गुल्मादिकों के भी कल्याणार्थ होती है।

“यं यं सृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। स्थवराण्यपि मुच्यन्ते किं पुनर्वात्मणाः जनाः।।” सन्त जन जिसको देखते हैं, जिसको स्पर्श करते हैं, उन उन जड़ वृक्षादिकों को भी मुक्ति मिल जाती है। अन्य भक्तिमान जनों की बात क्या। तीर्थ

पापियों का पाप छुड़ाता है न कि तीर्थ बनाता है किन्तु सन्त जन तो अपने ही समान सन्त बना देते हैं। श्री स्वामी यामुनाचार्य जी पदयात्रा किया करते थे। इन्हीं की पदयात्रा की कथा है कि वे एक समय अपनी मण्डली के साथ यात्रा-क्रम में एक स्थान पर आटिके थे। समीप में ही हल जोतते एक हलवाहक को देखे जिनका नाम स्वामी रामनेर था। वे भूख की अवस्था में फाल के अग्र में लगी मिट्टी छोड़ा छोड़ा कर खा रहे थे। यह देखकर श्री स्वामी यामुनाचार्य जी पूछे, यह क्या करते हो ? उत्तर मिला, मिट्टी को मिट्टी में मिलाता हूँ। पुनः पूछे ऐसा क्यों ? उत्तर - अन्न खाने को नहीं है। अतः जठराग्नि शान्त कर रहा हूँ। जो भोजन का अन्न था किसी भूखे को खिला दिया। इस प्रकार की उनकी बातें सुनकर वे इनको अपना लिये जिससे इन्हें छुटकारा मिला। भाष्यकार स्वामी श्री रामानुजाचार्य जी की भी यात्रा इसी प्रकार की होती थी।

श्री रंग करिशैल मज्जन गिरौ, शेषाद्रि सिम्भाचलम्। श्री कुर्म पुरुषोत्तमञ्च वदरी, नारायणं नैमिषम्।।

श्रीमद्वारवती प्रयाग मथुरा, अयोध्या गया पुष्करम्। शालग्राम निवासिनो विजयते, रामानुजोऽयं मुनिः।।

श्री स्वामी भाष्यकार का देशाटन एवं दिग्विजय दोनों साथ ही साथ हुआ था। इसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज भी लोक संग्रहार्थ ही यात्रा किया करते थे न कि कोई निजी स्वार्थ वस। क्योंकि - “गंगा गया नैमिष पुष्कराणि, काशी प्रयाग कुरु जांगलानि। तिष्ठन्ति देहे कृतभक्ति पूर्वम्, गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम्।।” भगवद्भक्तों के देह में सभी तीर्थ निवास करते हैं तो उनको तीर्थाटन से क्या लाभ ? सिवा तीर्थ पवित्र करना छोड़कर।

श्रीसंवत् 1956 में श्री स्वामी जी महाराज की दूसरी यात्रा जगदीश के लिए हुई थी। आपकी यात्रा तो सतत पैदल ही हुआ करती थी। साथ में अधिक संख्या में लोग थे। सामान ढोने के लिए साथ में बैलगाड़ी थी। जगदीश पहुंचकर महान्त श्री राजगोपालाचार्य जी के वगीचा में निवास हुआ। साथ के और लोग यहां के अन्यान्य स्थानों में पड़ाव डाले। सब के सब स्थान भर गये। वहां के लोग यह कहना प्रारम्भ किए कि न मालूम कि कितने तरेत पाली के सम्बन्धित श्री वैष्णव हैं कि जिससे पूछा जाए सब के सब तरेत ही अपना गुरु स्थान बताते हैं। यह महान आश्चर्य का विषय लोगों के लिए हुआ। वहां रथयात्रा के उत्सव काल में जब भगवान का रथ निकला उस समय श्री स्वामी जी महाराज रथ के दायें तरफ अपनी परमहंस वृत्ति में शुक्ल कटिवस्त्र और वैसी ही एक चादर ओढ़े खड़े थे जबकि दूसरी तरफ सब के सब वहां के महान्त गण सुन्दर सुन्दर वस्त्रादिकों से सुसज्जित खड़े थे। श्री स्वामी जी महाराज की दृष्टि तो भगवान की ओर लगी थी किन्तु और दर्शकों की दृष्टि भगवान की ओर से श्री स्वामी जी महाराज के अलौकिक अकृत्रिम दिव्य मंगल विग्रह की ओर बलात् आकर्षित हो रही थी। ऐसी ही उनकी शोभा निखरती थी। “अवनि आंखतर आव न कोई।” “भये कोउ अहहि न होनेउ हारा। मानस।वा।293।3।” “यह शोभा समाज सुख कहत न वनै खगेश।मानस।उ।12।”

दर्शकों को श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन से नेत्र तृप्त नहीं होते थे। इस वर्ष का चार्तुमास (वर्षाकालीन समय) यहीं जगदीश में ही व्यतीत हुआ। इस अवसर पर यहां के सभी पण्डे पूजारियों के यहां तरेतपाली की ही चर्चा चलती रहती थी। यहां के धनाढ्य से भी धनाढ्य मठाधीश्वर यही आश्चर्य में पड़े रहे कि हम सब धनाढ्य होकर क्या किए कि एक दिन भी इतने वैष्णवों की सेवा नहीं कर सके और यह एक त्यागी जिनके पास दूसरे दिन के लिए भोजनादि का संग्रह नहीं रहता किन्तु वे इतने वैष्णवों की सेवा कर लेते हैं। यह महान आश्चर्य की बात है।

यहां से दक्षिण भारत की यात्रा प्रारंभ हुई। इधर प्रदेश में वर्षा नहीं होने के कारण सर्वत्र दुर्भिक्ष छाया था। अतः द्वितीय वर्ष का चातुर्मास वरावर यात्रा में ही व्यतीत हुआ। दक्षिण भारत में जितने भी दिव्यदेश हैं सर्वत्र जाकर दर्शन सेवा किया करते थे। धीरे धीरे मण्डली में साधुओं की संख्या बढ़ती गयी और सामान ढोने के लिए बैलगाड़ियाँ भी बढ़ायीं गयीं। तृतीय चातुर्मास हैदराबाद में व्यतीत हुआ। जहां भी मण्डली जाती थी लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे कि कहां तो त्यागी



धन संग्रह नहीं करने वाला साधु , और दूसरी ओर इतनी बड़ी मण्डली का भरण पोषणभार, यह सचमुच श्री स्वामी जी महाराज की अलौकिकता है। चतुर्थ चतुर्मास वम्बई के माटूंगा में व्यतीत हुआ। यह यहां का एक महल्ला तथा स्टेशन भी है। यहां सन्तों की संख्या और भी बढ़ी किन्तु सबों की सेवा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा। यहां तो यह भी परिस्थिति आयी कि भक्तों को सन्तों की आराधना के लिए अपना अपना नाम लिखाकर पंद्रह पंद्रह दिनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और तब कहीं उनका स्वागत सामान स्वीकृत होता था। इन्हीं भक्त समूहों में एक रामदास नामक अन्त्यज ( धोबी)भक्त भी अपना नाम लिखा गया। किन्तु जब उसकी वारी आयी तो उसके अशोभनीय व्यवहारवश उसका सामान नहीं स्वीकृत हुआ। हालां कि उसको धनी होने के नाते लोभी सन्त महान्त उसका स्वागत सामान स्वीकार किया करते थे। किन्तु जब श्री स्वामी जी महाराज के इस प्रकार के व्यवहार से लोग शिक्षित हुए तो अपनी अपनी भूल समझे। यह समाचार सर्वत्र फैला, श्री स्वामी जी महाराज का त्याग और निष्कार। इनके लिए कर्तव्य पथ के सामने अर्थाभिलाषा तुच्छ वस्तु थी। यहां से जब श्री स्वामी जी महाराज चलने के लिए प्रस्तुत हुए तो यहां के धनीमानी भक्त सेठों ने सम्पत्ति की बड़ी राशि भेंट की जिसको आप सन्त मण्डलियों में यह कह कर बांट दिए कि जिनको जहां कहीं भी तीर्थ स्थानों में जाना है जायें, खर्च दिया जाता है और दिया गया। आप रिक्त हाथ यहां से चले। फिर भी दो हजार के लगभग धनराशि पूजा भेंट में आयी जिसे सीधे वृन्दावन भगवान की आराधना के लिए भेज दिए। वम्बई से बाहर होने पर पुनः कुछ भक्तों ने कुछ रुपये भेंट चढ़ाये जो आगे के मार्ग व्यय में काम आये। वम्बई से चलकर द्वारका, नारायण सरोवर, प्रभास क्षेत्र आदि होते हुए पुष्कर में पहुँचे। यहीं छठा चातुर्मास व्यतीत हुआ था।

इसके पश्चात्विन्दु- सरोवर आदि तीर्थों में होते हुए वृन्दावन आए। इस समय गोवर्धन गद्दी पर श्री रंगाचार्य (श्रीबालक स्वामी)विद्यमान थे। श्री स्वामी जी महाराज की कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी। अतः इनको यहां आने पर सर्वत्र के दर्शनार्थी तीर्थयात्री यहां आ गये। मथुरा से वृन्दावन तक यात्रियों का तांता लगा रहता था। श्री स्वामी जी महाराज वृन्दावन के सभी स्थानों में जा जाकर भगवान भागवतों की आराधना करवाये थे। श्रीरंग मन्दिर में विशेष आराधनोत्सव हुआ था। जितने भी स्थायी तीर्थवासी या अभ्यागत यात्री लोग वहां थे सबों को भोजन कराया जाता था। सभी स्थानों के महान्त या अन्यान्य साधु सन्तों को यथायोग्य वस्त्र रुपये से विदाई की गयी थी। इस अवसर पर वरांव के राजा, रंगमन्दिर के पंचों में से एक आप भी पंच थे, श्री स्वामी जी महाराज के यहां आनेपर स्वागतार्थ अपना दायित्व समझकर यहां आये थे और यथाशक्ति स्वागत किए। पश्चात् अपने यहां भी एक दिन के लिए श्री स्वामी जी महाराज को विशेष निमन्त्रण देकर ले गये थे। वहां से होकर श्री स्वामी जी महाराज मार्ग के निवासियों को दर्शन दे कृतार्थ करके सातवें वर्ष तरेत पहुँचे। आपके आने से सभी भक्तों में नवजीवन का संचार हो गया। सबों का समय दर्शन सेवा सत्संगति में व्यतीत होने लगा। कुछ ही दिनों के बाद कुछ ऐसा प्रसंग आया कि श्री स्वामी जी महाराज का जी उचट गया और वे नासिक यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिए। धीरे धीरे अपनी प्रक्रिया के अनुकूल वहां पहुँच भी गये। इसकी सूचना रीवाँ राज्य के देउरा ग्राम निवासी महान्त श्री रामप्रपन्नाचार्य (जो श्री स्वामी जी महाराज के गुरुभाई थे)को मिली। यह सम्वाद पाते ही श्री स्वामी जी महाराज को तरेत पुनः लौटाकर ले आने के विचार से वे भी नासिक की यात्रा किए और वहां पहुँच गये जहां श्री स्वामी जी महाराज थे। वर्षा काल वहीं व्यतीत होने लगा। इसी मध्य कभी एकान्त समय पाकर वार्ता प्रसंग में श्री महान्त जी श्री स्वामी जी से पूछे कि आप अपने को भगवत्परतन्त्र मानते हैं या स्वतन्त्र ? उत्तर मिला कि मानने की बात नहीं स्वरूप ही परतन्त्र है। पुनः प्रश्न हुआ - क्या आपका शरीर सम्बन्धी वस्तु आपका है या श्री रंग देशिक, भगवान या भागवत का ? उत्तर मिला - सर्वसत्ता से भगवान भागवत तथा आचार्य श्रीरंग देशिक का। प्रश्न - यदि आपका ऐसा



सिद्धान्त है तो आपने भगवान भागवत तथा श्री रंग देशिक की वस्तु स्वतन्त्रता पूर्वक किसी स्वतन्त्र व्यक्ति को क्यों दे दिया ? इसका उत्तर नहीं मिला। श्री स्वामी जी चुप हो गये। संकोच में पड़ गये। पुनः उत्तरकी जिज्ञासा की गयी तो उत्तर मिला - जिस विषय का प्रश्न है वह तो काम हो चुका। यह सुनकर श्री महान्त जी बोले कि यदि किसी से भूल हो जाए और उसमें सुधार की संभावना हो तो क्या उसमें सुधार नहीं किया जा सकता है ? मैं तो समझता हूँ कि उसमें सुधार नहीं करना ही दोष है। मैं इसे सुधारूंगा किन्तु आप चलने की प्रतिज्ञा करें और चलें। इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज को तरेत नहीं आने की इच्छा रहते हुए भी विवश कर तरेत आने के लिए बाध्य किया गया। यहां से श्री महान्त जी महाराज की आज्ञानुसार उज्जैन यात्रा की तैयारी हो गयी। सब के सब चलने को तैयार हो गये। “को न चहै जगजीवन लाहू।”

यहां नासिक में श्री स्वामी जी का एक स्थान था। इस स्थान के एक संरक्षक के लिए यहां के डोंगर सिंह नाग जी, सूरजीनथु, धर्मसीभवान, देवजी हीरावाला आदि भक्तों ने श्री स्वामी जी से आग्रह किये कि यहां किसी को अवश्य रहना चाहिए। अतः हम सबों की सम्मति है कि श्री वासुदेवाचार्य को आप यहां अवश्य रहने दें। किन्तु आप तो इनको छोड़ना नहीं चाहते थे और श्री वासुदेवाचार्य भी श्रीचरणों को क्षणभर के लिए नहीं छोड़ना चाहते थे। किन्तु भक्तों का आग्रह भी टालना भक्तवत्सलों के लिए असंभव था, असमञ्जस पड़ा। भक्त पारवश्यता गुण के कारण श्री स्वामी जी श्री वासुदेवाचार्य को नासिक रहने के लिए आज्ञा दिए। सुनते ही आपका हृदय कमल कुहलाया किन्तु “गुरुराज्ञा गरीयसी।” “आज्ञा सम न सुसाहेव सेवा। मानस। अयो। 300। 2” के अनुकूल भरत जी को श्रीराम जी की आज्ञा मान अयोध्या में रहने के समान आप नासिक रहकर श्रीवैष्णवों की अटूट सेवा करने लगे। मकान आदि भी बनाये। तुलसी पुष्पवाटिका तथा अंगूर वाग भी लगाया गया। उज्जैन की यात्रा में श्री स्वामी जी की मण्डली श्री महान्त जी के अतिरिक्त रामटेकरी के महान्त श्री जगन्नाथाचार्य जी की भी मण्डली साथ थी। बीच बीच में और लोग भी साथ होते गये। मार्ग में गर्म जल का एक उनाई कुण्ड है। इसका जल अत्यन्त गर्म है। इसी के लिए लोहा के तार से घेर दिया गया है कि किसी को धोखा नहीं हो जाए। इस कुण्ड से आगे चलकर कुछ दूर पर एक विश्राम हुआ था। यहीं पर श्री जगन्नाथाचार्य को शरणागति विधि सुनने की इच्छा होने पर श्री स्वामी जी महाराज ने उन्हें सांगोपांग सुनाया था जो निम्न प्रकार है।

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्र यागश्च पञ्चमः। अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्त्य हेतवः।।

शरणागत विधि ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार की है। कहीं विशद और कहीं संक्षिप्त रीति से पायी जाती है। विशद में पांचों संस्कारों को पांच वार और भिन्न भिन्न काल में तथा संक्षिप्त में एक ही समय करने को लिखा है।

1। नित्य नियम के पश्चात्सुवर्ण चांदी या ताम्बा अथवा कांसे का सुदर्शन चक्र तथा शंख निर्माण कराकर कहीं भगवान की सन्निधि में भगवान की पूजा पश्चात्सुदर्शन और शंख को पंचामृत से स्नान कराकर वैदिक या तान्त्रिक या नाम मन्त्र से ही आवाहन और प्रतिष्ठा कर षोडशोपचार से पूजन करे। यदि पूर्व से ही प्रतिष्ठित शंख चक्र हो तो पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती है। केवल पूजन कर लेना चाहिए।

2। स्वगृहोक्त या पाञ्चरात्र शास्त्र विधि से एक कलश स्थापन तथा अग्नि स्थापन करना चाहिए।

3। गौ के दूध में वनी खीर से या गोघृत से एक हजार वार या 108 वार या यथा साध्य बीस ही वार मूल मन्त्र, विष्णु मन्त्र, पुरुष सूक्त, षडक्षर या अन्य कोई भगवन मन्त्रों से अग्नि में हवन कर तर्पण और मार्जन करे।

4। शरणार्थी को भगवत सम्मुख या पूर्वाभिमुख कुशासन या अन्य किसी आसन पर बैठाकर तीर्थ पान करावे और हाथ में अक्षत नारियल या सुपारी देकर कंकण बांधे तथा माथे पर तीन वार मूल मन्त्र से जल छिड़के।

5। सुदर्शन और शंख को वेदी की अग्नि में तप्त करे तथा 108 वार मूल मन्त्र जपे और स्वयं हाथ जोड़कर तथा

शरणार्थी को भी हाथ जुड़वा कर - “सुदर्शन महाज्वाला कोटि सूर्य सम प्रभ। अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णु मार्ग प्रदर्शय।।” यह मन्त्र उच्चारण करवा कर उसके दायें बाहुमूल में सुदर्शन से अंकन करे। पुनः “पाञ्चजन्यं महाशुभं शशि कोटि निभ प्रभम्। शरणार्थी भवेत्सद्यः श्रीमत्पाद युगार्चनात्।।” यह मन्त्र उच्चारण करवा कर उसके वाम बाहुमूल में तप्त शंख से अंकन करे। पश्चात्-

6। इन दोनों आयुधों को स्नान करवा कर पुनः पूजन करे। पूर्व स्थापित कलश जल से शरणार्थी को अभिषेक कर स्वयं आचमन करे।

7। शरणार्थी को भगवान के द्वादश नामों से द्वादश तिलक लगावे।

8। भगवान के किसी नाम से ही शरणार्थी का नामकरण करे।

9। आचार्य सभी सम्पूर्ण भगवन्मंत्रों को अथवा मूल, द्वय, चरम मन्त्रों और इन सबों का अर्थ वैष्णव को सुनाकर आचारणीय नियमों को भी सुना दे। पश्चात् शिष्य भगवान, गुरु और भागवतों को साष्टांग प्रणाम करे। यह संक्षिप्त क्रिया पादमोत्तर खण्ड (अध्याय 226) की है। इससे विशेष पांचरात्र, वृहद्व्रत्संहिता, पराशर उत्तर खण्ड तथा वृद्ध हारीत आदि में है। शरणागति के छः अंग हैं - “अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा। आत्म निक्षेप कार्पण्यं पडविधाः शरणागतिः। लक्ष्मी तन्त्र 17।51।”

इस प्रकार अनेकों विषयों पर विचार विमर्श सतत होते रहता था। यहां से आगे की यात्रा में साथ के रसोइआ पुजारी किसी विशेष कारणवस जो यहां अव्यक्त रखा गया है छोड़कर चले गये थे। श्री स्वामी जी महाराज स्वयं भगवान की सेवा पूजा करते हुए उज्जैन पधारे। इस चढ़ाव पर आपका पधारना जानकर अधिकाधिक संख्या में यात्रिगण यहां पहुंचे थे। जितने भी लोग संग में लग जाते थे सबों का उचित सत्कार किया जाता था। इस चढ़ाव पर से जावरा, रतलाम, मन्दसूर आदि होते हुए रीवाँ आये और यहां से पुनः तरेत आये। इसी वर्ष श्री महान्त जी महाराज (रीवाँ) चातुर्मास व्यतीत करने के लिए अपनी मण्डली के साथ तरेत आये। वृन्दावन श्रीरंगमन्दिर के पञ्चायत के आप एक प्रमुख सदस्य थे अतः आते समय वहां के पंचायती के कागज साथ लेते आये थे। कुछ दिनों तक निवास करने के पश्चात् श्री महान्त जी महाराज तरेत के समीपवर्ती ग्रामों के मुखियों को बुलाकर स्थानीय सम्पत्ति को एक पंचायत के अधीन कर देने का परामर्श किए और वृन्दावन के पंचनामा कागज लोगों को पढ़कर सुनाए। उसे सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और सबों ने यही विचार दिया कि ठीक इसी प्रकार यहां की सारी सम्पत्ति पंचायत के अधीन कर दी जाए। साथ साथ यह भी कहे कि जितना शीघ्र हो सके यह कार्य हो जाना चाहिए। सर्व सम्पत्ति से श्री रामखेलावन शर्मा (चेसी ग्राम वासी), श्री रघुवीर प्रसाद जी (करजा ग्राम वासी), श्री गोवर्धन लाल जी (अमरपुरा ग्राम वासी), श्री दिनेश्वर उपाध्याय जी (तरेत ग्राम वासी), श्रीकैलासपति शर्मा जी (पाली ग्राम वासी), श्री वासुदेव शर्मा जी तथा श्री पं दामोदराचार्य जी (महमदपुर ग्राम वासी) पंच चुने गये। सबों में प्रधान श्री रामखेलावन शर्मा जी चुने गये थे। सेवइत पुजारी के स्थान पर 108 108 श्री स्वामी वासुदेव ब्रह्मचारी जी को रखा गया था। श्री रामखेलावन शर्मा जी ने बाबू गोवर्धन लाल जी से कहा कि आप वृन्दावन की पंचायती के कागज के अनुकूल ही दूसरा कागज लिखकर तैयार करें जिस पर तरेतपाली, महमदपुर, पटना, वैदरावाद आदि जगहों की जमीन आदि सम्पत्ति लिख दी जाए और नौवतपुर में ही श्री स्वामी जी महाराज से रजिस्ट्री करवा ली जाए। ऐसा ही किया गया। इस प्रकार तरेत और उसके शाखा स्थानों को पंचायत के अन्तर्गत कर दिया गया। इस व्यवस्था से सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। स्थानीय खेती व्यवहारादि देखने के लिए श्री चतुर्भुज जी और श्री राम प्रपन्न जी रखे गये थे। ये लोग भगवत्कैर्य आचार्य - सेवा मानकर किया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् महमदपुर का

स्थान इन दोनों मूर्तियों को दे दिया गया था। इसके अतिरिक्त अन्यान्य सार्वत्रिक व्यवहार श्री स्वामी जी महाराज स्वयं निभाते थे। कुछ दिनों तक श्री महान्त जी महाराज यहां ठहरे थे और पंचों या अन्यान्य कार्यकर्ताओं का कार्यकलाप निरीक्षणात्मक दृष्टि से देखा करते थे कि कौन किस ढंग से और क्या करते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

### यज्ञ - प्रकरण

“वेदैश्च तुभिसंयुक्ता व्यासस्यादभुत्कर्मणः।” व्यास रचित महाभारत वेद स्वरूप है। इसमें पांच रत्न हैं - “गीता सहस्रनामञ्च स्तवराज अनुस्मृतिः। गजेन्द्र मोक्षणञ्चैव पंच रत्नानि भारते।।” गीता, विष्णुसहस्रनाम, स्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष ये पांचरत्न महाभारत में हैं। इन पांचों रत्नों में यज्ञ विषय का वर्णन किया गया है। यथा -

“भोक्तारं यज्ञं तपसां सर्वलोक महेश्वरम्। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिं मृच्छति।। गी 5।29।” जो मुझको सभी यज्ञों का भोक्ता, स्वर्ग आदि सभी लोकों का स्वामी एवं सभी प्राणियों का मित्र रूप से जानता है वही शान्ति पाता है।

“अहं ऋतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्य महमग्निरहं हुतम्।। गी 9।16।” ऋतु (श्रौतयज्ञ) मैं हूँ, यज्ञ (स्मार्त यज्ञ) मैं हूँ, स्वधा (श्राद्ध में पितरों को अर्पित अन्न) मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत अग्नि और अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मैं ही हूँ। औषध (यव आदि अन्नों का वना हुआ चरु पुरोडाशादि रूप हवि) मैं हूँ।

“यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।। गी 3।9।” यज्ञ अर्थात् विष्णु के निमित्त किये हुए कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्म में लगा हुआ ही मनुष्य कर्मों द्वारा बन्धता है। इसलिए हे अर्जुन ! आसक्ति से रहित होकर उस परमेश्वर के निमित्त सावधान चित्त से कर्म करो।

“अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च। न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।। गी 9।24।” सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ। जो मुझ अधियज्ञ स्वरूप परमेश्वर को तत्त्व से नहीं जानते हैं इसी से वे गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं।

“यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। गी 9।27।” हे अर्जुन ! तू जो कुछ करता है, जो दान करता है, जो तप करता है, उन सबों को मुझे ही अर्पण किया करो। “यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। गी 10।25।” यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ अर्थात् हमारा मन्त्र जपो।

“ज्ञान यज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्। गी 9।15।” कितने ही महात्मा एकत्व रूप से अर्थात् सखाभाव से और कितने ही पृथक्त्व रूप से अर्थात् दास्यभाव से अनेकों प्रकार के वातसत्य श्रृंगार इत्यादि भावनामय ज्ञान यज्ञ के द्वारा सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापी उपासना किया करते हैं।

“इजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरि दक्षिणैः। सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकं मतीन्द्रियम्।।

द्रव्यं मन्त्रोविधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्विज। धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतदयदात्मम्।। भा 9।6।35-36।”

सर्वदेव सबों की पूजा, सभी प्रकार के यज्ञ, सबों की दक्षिणा, सभी प्रकार की क्रिया, सर्वमन्त्र, सर्वतन्त्र, द्रव्य, सभी विधियाँ, यजमान, ऋत्विज, देश, काल, धर्म, उपदेश, और उपदेशक इन सबों को ईश्वरात्मक जानना चाहिए। अतएव श्रुतियाँ भी ईश्वर को “सर्वकारण कारणम्” कहती हैं अर्थात् परमेश्वर सभी कारणों का भी कारण है।

“येऽप्यन्य देवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। गी 9।23।” जो मुझ परमेश्वर को छोड़ अन्यान्य देवों के भक्त हैं और उन उन देवों का श्रद्धायुक्त पूजन किया करते हैं वे भी मेरा ही पूजन करते हैं किन्तु हे अर्जुन ! वे विधिहीन पूजन करते हैं।

“ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान्सहुताशनान्। सर्वभूतान्तरत्मानं विष्णुरेव यजन्ति ते।।” जो देवता पितृ ब्राह्मण और अग्नि की

सेवा पूजा करते हैं वे सभी पूजायें सर्वान्तर्यामी विष्णु को प्राप्त होती है क्योंकि वह विष्णु प्राणीमात्र की आत्मा है।

“यज्ञ इज्यो महेज्यश्च ऋतुः सत्रं सतां गतिः। वि सहस्रनाम 61।” “यज्ञः - यज्ञाराधनतया भगवत्सेवनम्। भगवान की आराधना ही यज्ञ है। निरुक्त।” “इज्यः - कर्मभिरर्चितः। भगवदर्चन कर्म। निरुक्त।” “महेज्यः - महतीज्याऽस्याव्यवधानेन इति महेज्यः। अर्थात्सम्यक् प्रकार से भगवान की पूजा।” “ऋतुः - आराधनं क्रियते तैस्तैरेति ऋतुः। अर्थात्जिन जिन साधनों से भगवान की पूजा की जाये।”

“यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञ वाहनः। यज्ञ भृद्यज्ञ कृद्यो यज्ञभुग्यज्ञ साधनः। यज्ञान्त कृद्यज्ञ गुह्यमन्मन्नाद एव च। वि सहस्र 117-118। यज्ञ - “स्वारौधन धर्म समृद्धि रित्तानां तदर्थिनां स्वयमेव। अर्थात्यज्ञ साधन हीन भक्तों के लिए स्वयं यज्ञ स्वरूप हैं। श्रुति कहती है “यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञ स्वरूप विष्णु ही स्वयं यज्ञ कर्ता को फल देकर पोषण करते हैं।” “यज्ञपति - यज्ञ फल प्रदः। अर्थात्यज्ञ रक्षक एवं यज्ञ फल दाता हूँ।” “यज्वा - असक्तानां स्वयमेव यजमानः। तेषां तु पावनायाहं नित्यमेव युधिष्ठिर। उभे सन्ध्येऽनु तिष्ठामि ह्यस्कन्तं तद्व्रतं मम। हे युधिष्ठिर ! मैं शक्तिहीन भक्तों के पावनार्थ उनके प्रतिनिधि हो दोनों शाम सन्ध्यावन्दन करता हूँ। जैसे (पद्म पुराण की कथा) - विभीषण के बदले मैंने ही ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया था।” “यज्ञवाहन - यज्ञं वाहयति इति यज्ञवाहनः। अर्थात्यज्ञ कर्ता का सवप्रकार से यज्ञ-भार वहन करता हूँ।” “यज्ञभृत - विकलमपि यज्ञं स्वस्मरण पूर्णाहतिभ्यां पुष्पातीति। यथा - प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यव्यध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्ण स्यादिति श्रुतिः। अर्थात् भक्तों के यज्ञ में प्रमादवश किसी प्रकार की हुई त्रुटियों को मैं पूर्ण करता हूँ।” “यज्ञकृत - जगद्धिताय यज्ञमादौ सृजतीति यज्ञकृत्। अर्थात्संसारहित के लिए मैंने सृष्टि के आदि में यज्ञ की स्थापना की है। जैसे - सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेव वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।। गी 3।10। प्रजापति परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ काल में यज्ञ सहित प्रजा को उत्पन्न कर बोले कि इस यज्ञ से तुम सब वृद्धि करो। यह यज्ञ तुम सबों की कामनाओं को पूरा करेगा।” “यज्ञी - सर्व यज्ञानां शेषी यज्ञी अर्थात्सभी प्रकार का यज्ञ हमारे ही निमित्त है। “यज्ञभुक्- यज्ञान्भुङ्क्ते। अर्थात्सभी यज्ञों का भोक्ता मैं ही हूँ।” “यज्ञसाधन - अस्य ज्ञान द्वारा सिद्ध्युपाया इति अर्थात्मैं ज्ञान द्वारा सर्वयज्ञों का सिद्धोपाय हूँ।”

“सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः। वि सहस्र 102।” “सहस्रार्चि - पाचन शोषण प्रतापन प्रकाशन इत्यादि धर्म हमारी अध्यक्षता में रहते हुए सूर्य चन्द्रादि में वर्तमान है। यथा -

“अग्निपोमास संज्ञस्य देवस्य परमात्मनः। सूर्याचन्द्रमसौ विद्धि साकारौ लोचने श्वरौ।।

यदादित्य गतं तेजो जगदभासयेतऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।”

अर्थात्अग्नि सूर्य चन्द्र तथा इनका तेज सभी ईश्वरात्मक हैं।

“सप्तजिह्व - तदवक्रं देवतानाञ्च हुतभुक्परमेश्वरः। मन्त्रपूतं यदादाय हुतमाज्य पुरः परम्।।

ब्रह्माण्ड भुवनं सर्व सन्तर्पयति सर्वदा।” अग्नि की सात जिह्वायें हैं। इन्हीं सबों के द्वारा देवताओं को भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनमें प्राप्त करानेवाली शक्ति ईश्वरात्मक है।

1।दिप्ति, 2।प्रकाशा, 3।सौदामिनी, 4।मरीची, 5।तापिनी। 6।कराली। 7।लेलिहा। ये सात आग की जिह्वायें हैं।

प्रत्येक क्रिया कलाप में भिन्न अग्नियों की स्थापना होती है। यथा -

भगवत्समवन्धी कर्म में वैष्णवाग्नि। गर्भाधान में मारुत। पुंसवन में पावन। सीमन्त में मंगल। जातकर्म में प्रवल।

नामकरण में पार्थिव। अन्नप्राशन में शुचि। चूड़ाकरण में सभ्य। उज्जयन में समुद्भव। केशान्त में सूर्य। विवाह में योजक।

आवस्थान में द्विज। प्रायश्चित्त में विट्। पाकयज्ञ में पावक। पितृयज्ञ में कव्यवाहन। शान्तिकर्म में वरदाता। पुष्टिकर्म में

वलवर्धन। मृतदाह में क्रव्यात्। पूर्णाहुति में मृड। अभिचार (मारण)में क्रोध। वशीकरण में पावक। वनदहन में दूषक।



उदर में वैश्वानर । विश्वदेव होम में रुक्म । दैव्य में हव्य । लक्षहोम में वह्निकोटि । समुद्र में वड़वानल । अग्नि होत्र में गार्हपत्य । आहवनीय में दक्षिणाग्नि । ये सभी अग्नियाँ ब्रह्मात्मक यज्ञमय विष्णु हैं ।

“सप्तैधा - सप्त वानस्पत्यास्समधिरेऽस्येति सप्तैधाः । अर्थात्सात वनस्पतियों की सात समिधायें । यथा - पलाश, बट, पीपल, पांकड़, शमी, गूलर, देवदारु - ये सभी यज्ञमय हैं ।”

“सप्तवाहन - सप्तवायु स्कन्धान्वहतीति सप्तवाहनः । अर्थात् त्रिष्टुव, महति, जगति, वृहति, पंक्ति, गायत्री, अनुष्टुप् । इन सप्तवाहनों के प्रकाशक विष्णु हैं ।”

### यज्ञों का नाम और अर्थ

नरमेध - 'रीङ्क्षये' इति धातु निष्पन्न 'र' शब्द क्षयिष्णु वाची । रः क्षयिष्णु न भवति इति नरः = नित्यः (आत्मा) । “मेधु संगमे” इति धातु निष्पन्न मेध शब्द संगम वाचकः । अनयो शब्दयोः परस्पर नरस्य, नरेण वा मेधः इति समासे कृते नरमेध पदस्य सिद्धिर्भवति । अर्थात्आत्मा को परमात्मा के साथ संगम कराना ही नरमेध का स्पष्ट अर्थ हुआ । यथा - सुगीव विभीषण जयन्त आदि की शरणागति प्रसिद्ध है । गीता में इसका प्रबल प्रमाण है - “मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । गी 7।14 ।” जो मेरी शरण में आते हैं वही इस माया से तरते हैं ।

गोमेध - गो का अर्थ इन्द्रिय है । “गो गोचर जहं लग मन जाई । मानस अर 14।2 ।” अर्थात् गो मेध का अर्थ हुआ इन्द्रिय वर्ग तथा मन को परमात्मा में लगाना । “मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे । गी 18।65 ।” मुझ में मन लगा मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा और नमस्कार करो । इस प्रकार मत्परायण होकर योग का अभ्यास करने से मुझ को प्राप्त करोगे ।

“स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः वचांसि वैकुण्ठ गुणानुवर्णन । करौ हरिमन्दिर मार्जनादिषु श्रुतिज्वकाराच्युत्सत्कथोदये । । भा 9।4।18 ।” मन भगवान के चरणों में, वचन उनके गुण वर्णन में, हाथ उनके मन्दिर -मार्जन में तथा कान उनके गुण सुनने में लगाना चाहिए । तभी इन तीनों की सफलता है । यथा अम्बरीष की दिनचर्या में मिलती है ।

अश्वमेध या वाजिमेध - न श्वः अनित्यमिन्द्रादि पदं येषामतेषु नियामकतया तिष्ठति इति अश्वत्थः, अथवा न श्वः अश्वः जागृत अवस्था । वि सहस्र 101 । अर्थात्सर्व नियामक (इन्द्रिय नियामक) ईश्वर की शरण प्राप्त करना अश्वमेध का अर्थ हुआ । अथवा “आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च । इन्द्रियाणि हयान्याहुः मनः प्रहवान्स्वयं । कठोप 1।3।3-4 ।” “आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीपून्मन इन्द्रियेशम् । भा 7।15।41 ।” यहां पर अश्व या हय शब्दों से इन्द्रियों को घोड़ा कहा गया है । इसी प्रकार वाजिमेध शब्द को भी जानना चाहिए । “वाजं शुक्रमस्यास्तीति वाजी तस्य मेधः वाजिमेधः । अर्थात्शुक्र का निरोध कर हनुमान के समान ब्रह्मचारी बनन चाहिए न कि घोड़ा का मस्तक काटना ।

छागमेध - छः = स्वच्छः, आगः = जड़देहः तेन मेधः । अर्थात्पवित्र देह तथा शुद्ध मन से भगवदाराधन । इस प्रकार नारायणेष्टि, वासुदेवेष्टि, वैष्णवेष्टि आदि वैदिक यज्ञों में वैकुण्ठपार्षदों, कश्यपादि महर्षियों, श्रीवैष्णवों, वेदों, ब्राह्मणों तथा गौओं को पूजने का विधान है । क्योंकि देवों का देव और सनातन देव विष्णु ही हैं । उक्त यज्ञों का शेष तथा नित्याराधन यज्ञ स्वरूप विष्णु का शेष ही आत्माओं को पवित्र करने वाला है । “यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः । भुज्जते ते त्वघं पापा ते पचन्त्यात्मकारणात् । गी 3।13 ।” यज्ञ शेष अर्थात्भगवान् का निवेदित प्रसाद पाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से छूट जाते हैं । जो अपने शरीर पोषण के लिए पकाते और खाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं । भगवत्प्रसाद में यही विशेषता है कि जो लोग इसको सेवन करते हैं वे लोग आवागमन से छुटकारा पा जाते हैं - “यद्गत्वा



न निवर्तन्ते...। गी 15।6।” जो लोग मेरे धाम में पहुंच जाते हैं वे लौटकर यहां कभी नहीं आते हैं।

यज्ञ अहिंसात्मक है।

गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, छागमेध इत्यादि शब्दार्थों से स्पष्ट है कि यज्ञ अहिंसात्मक है। शास्त्रों में इसका अनेक प्रबल प्रमाण है जो अहिंसात्मक है - वलि का सौ यज्ञ, विश्वामित्र तथा युधिष्ठिर का यज्ञ। वृषल ने हिंसात्मक यज्ञ किया था जिसका फल उसका मस्तक काटकर यज्ञ देवी ने अपनी क्रोधाग्नि शान्त की थी। अब रह जाती है शास्त्रों के हिंसात्मक विधि वाक्यों की बात जिसके द्वारा मांस भक्षण, मैथुनादि का बहाना बनाया जाता है तथा हिंसा वृत्ति अपनायी जाती है। वस्तुतः शास्त्रों में जिन वाक्यों को हिंसात्मक बतलाया जाता है वे सभी अहिंसात्मक ही हैं अपने अपने हृदय के अनुकूल ही लोग उसको समझते और अर्थ करते हैं - “लोके व्यावायामिष मद्य सेवा, नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाह यज्ञ सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा।

वेदों में मांस भक्षण तथा मैथुन का विधान नहीं है बल्कि निषेध है। क्यों कि स्वाभाविक प्रवृत्ति में विधान की क्या आवश्यकता है। प्राणियों में यहां तो मांस भक्षण, मैथुनादि की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही पायी जाती है। “यदघ्राण भक्षो विहितः सूरयाः, तथा पशोरालम्भनं न हिंसा। एवं व्यवयः पूजाया न रत्या, इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम्।। अर्थात् यज्ञों में पशुहनन करना हिंसा नहीं है - ऐसा समझना श्रेष्ठ पुरुषों का धर्म नहीं है बल्कि अधर्म है। यथा - “त्वमेवं विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानीनः। पशून् दुहन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्।”

यज्ञ में पशु मारना, मद पीना इसकी विधि बतलाने वाले अभिमानी मिथ्यावादी हैं। क्योंकि मारने वाले को दूसरे जन्म में वही पशु मारकर खाता है। यदि सचमुच गोवध अश्ववध से ही यज्ञ की पूर्ति एवं मुक्ति होती है तो इससे सुगमता और उत्तमता इसी में थी कि पितृभक्त अपने पिता और पुत्रभक्त अपने पुत्रों को वध (नरमेध)कर जीते जागते मुक्ति के भागी बन जाते क्योंकि पशुओं से तो मनुष्य कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। पर ऐसा किया नहीं जाता है। इससे सिद्ध होता है कि हिंसात्मक यज्ञों से केवल अपनी विषय वासना एवं विषय लिप्सा की पूर्ति की जाती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि प्राचीन काल में स्वार्थ बुद्धि वाले पुरोहित वर्ग जघन्य कृत्यों से अपनी इच्छा पूरी किया करते थे। विश्वरूप ने देवयज्ञों में अपने पक्षपाती दैत्यों को भाग दिया, फलतः उनका मस्तक इन्द्र ने काट लिया।

वृत्रासुर ने इन्द्र का नाश करने के लिए यज्ञ किया था। मन्त्र था “इन्द्र शत्रुर्विबर्धस्व। भा।6।9।11” इसमें बहुव्रीहि समास और पूर्व पद पकृतिश्वर के स्थान पर तत्पुरुष समास और अन्तोदात्त स्वर का उच्चारण भूल से हो गया था। जिसका विपरीत फल हुआ अर्थात् वृत्रासुर मारा गया।

कुछ स्वार्थी पुरोहितों ने अम्बरीष द्वारा हिंसात्मक पशु यज्ञ करवाना चाहा था किन्तु संयोगवश इन्द्र ने यज्ञ पशु को चुरा लिया। फिर भी पुरोहितों ने अपनी वासना पूर्ति के लिए शाप की धमकी देकर पशु की जगह ब्राह्मण-वध के लिए उनको विवश किया। धर्मभीरु अम्बरीष ने हजारों गौएँ देकर एक ब्राह्मण खरीदा जिसका नाम शुनःशेष था। वह ब्राह्मण विकल होकर अपनी रक्षा के लिए मामा विश्वामित्र के यहां पहुंचा तो करुणार्द्र विश्वामित्र ने धर्म संकट से मुक्ति के लिए उसे विष्णु मन्त्र का उपदेश दिया कि तुम वधकाल में विष्णु मन्त्र का स्मरण करना जिससे तुम्हारी रक्षा हो जायेगी। वस अब क्या था ब्राह्मण देव ने मन्त्र स्मरण से अपनी जान बचायी। ईश्वर की दया से राजा का धर्म वचा तथा विष्णु को यज्ञ में प्रत्यक्ष होने से यज्ञ पूरा हुआ। इसीलिए तो अहिंसा परमोधर्म कहा गया है - “परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। मानस उ का 120।11।

इन सभी प्रमाणों से एक मात्र यही सिद्ध होता है कि हिंसात्मक विचार वाले स्वार्थियों ने स्वार्थपूर्ति के लिए हिंसात्मक यज्ञों

का प्रचार किया है। इसका प्रवल प्रमाण महाभारत में है - “सुरामतस्याः मधुमांस मासवं कृसरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्।” यज्ञ में सुरापान, मछली खाना, मदिरा पीना, आसव पीना, तिल मिला हुआ भात खाना आदि धूर्तों का चलाया हुआ है। यज्ञ में इन सबों का उपयोग करना वेद से निषिद्ध है।

### विष्णु-यज्ञ की सुलभता

देवगण असंख्य हैं। सबों की प्रसन्नता के लिए अनेकों प्रकार का यज्ञ करना दुर्लभ ही नहीं असंभव है। ईश्वर में यह विशेषता है कि उनकी पूजा से सबों की पूजा एवं प्रसन्नता हो जाती है क्योंकि ईश्वर सभी कारणों के भी कारण हैं। अर्जुन ने भगवान से कहा है - “पश्यामि देवांस्तव देव देहे, सर्वास्तथा भूत विशेष संघान्। व्रत्साणमीशं कमलासनस्थम्, ऋषींश्च सर्वा नुरगांश्च दिव्यान्। गी 11।15।” हे देव ! आप के शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को और कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्मा को, महादेव को, सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ अर्थात् अर्जुन एक ईश्वर की देह में सम्पूर्ण जगत को देख रहे हैं।

यथा तरोर्मूल निषेचनेन तृण्यन्ति भुजोप शाखाः। प्राणोपहारच्च यथेन्द्रियाणाम् तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या। भा 4।31। 14।” जैसे वृक्ष की जड़ में जल देने से वृक्ष का सर्वाङ्ग हरा भरा रहता है, जैसे मुख में आहार देने से सर्वाङ्ग परिपुष्ट होता है उसी प्रकार एक सर्वमय विष्णु की पूजा से सभी की पूजा हो जाती है और उनकी पूजा में या यज्ञ में विशेष यज्ञ साधन की आवश्यकता भी नहीं है। केवल अनन्य भाव या अनन्य भक्ति चाहिए। ईश्वर को विना प्रेम का दिया हुआ हिमालय के तुल्य वस्तुराशि भी एक तुच्छ कण के बराबर भी नहीं होता और भक्ति पूर्वक समर्पित एक कण भी सुमेरु के बराबर हो जाता है।

“पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः। गी 9।26।” हे अर्जुन ! मेरे पूजन में यह सुलभता भी है कि पत्र पुष्प फल जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का अर्पित पत्र पुष्पादि को मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ। “नन्वतदुपनीतं मे परम प्रीणनं सखे। तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुक तण्डुला। भा 10।81।9।” भगवान श्रीकृष्ण सुदामा से कहते हैं कि प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिए अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो। यह चिउड़ा न केवल मुझे बल्कि सारे संसार को तृप्त करने के लिए पर्याप्त है। “किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फलवपि भूरिकारी। मयोपनीता पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत् प्रीतियुत महात्मा। भा 10।81।35।” द्वारिका से लौटते समय मार्ग में सुदामा मन ही मन कहते हैं कि देखो तो मित्र की उदारता ! श्रीकृष्ण जी परम दयालु हैं। वे देते तो हैं बहुत किन्तु उसे मानते हैं बहुत थोड़ा और उनका प्रेमी भक्त उनके लिए थोड़ा भी दे, तो वे उसको बहुत मान लेते हैं। देखो तो सही, मैंने तो उन्हें केवल एक मुट्ठी चिउड़ा भेंट किया पर परम उदार उन्होंने कितना प्रेम से उसे स्वीकार किया है !

इसी प्रकार भाग्यवती विदुर पत्नी की प्रेमा-भक्ति देखें। विदुर की धर्म पत्नी परम साध्वी त्यागमूर्ति तथा भगवद्भक्ति में तल्लीन थी। भगवान श्रीकृष्ण जब दूत बनकर हस्तिनापुर पधारे थे तब दुर्योधन के प्रेम रहित स्वागत सत्कार का परित्याग कर उन्होंने विदुर के घर की सूखी सूखी शाक भाजी खाकर ही परम प्रसन्नता पायी थी। कहा जाता है कि जिस समय भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन के घर से विना भोजन किए प्रस्थान कर विदुर के घर पहुंचे, उस समय विदुर की स्त्री घर में स्नान कर रही थी। विदुर तो घर पर थे भी नहीं। धनाभाव या स्वेच्छाकृत दरिद्रता से विदुर के घर में वस्त्रों का अभाव था। अतएव वह नग्न ही स्नान कर रही थी। द्वार पर पहुंच कर श्रीकृष्ण बोले - “किवाड़ खोलो, मैं कृष्ण भूखों खड़ा हूँ, मुझे बहुत भूख लगी है।” भगवान का आह्वान सुनते ही वह सुधबुध भूल गई और उन्मत्त सी होकर झट

किवाड़ खोल बाहर दौड़ आयी। भगवान कृष्ण ने उनकी प्रेमोन्मत्त स्थिति देखते ही उसी क्षण अपना पीताम्बर उनके शरीर पर डाल दिया। दिव्य पीत-पट ने उनके समस्त शरीर को ढक लिया। तत्पश्चात् विदुरानी उसी अवस्था में उनका हाथ पकड़े भीतर लिवा ले गयी। उस समय उसे केवल इतना ही याद था - “मैं कृष्ण भूखा हूँ।” अब क्या खिलाऊँ ? कुछ केला ले आयी और प्रेमोन्मत्त होकर उनके पास बैठकर केला छील छील कर गुद्दा तो फेंकने लगी और छिलका भगवान को खिलाने लगी। भगवान तो प्रेम ही चाहते हैं, अतः प्रमोहहार को प्रशंसा पूर्वक खाने लगे। दोनों प्रेम में मग्न थे। इतने में विदुर जी आ गये और भगवान को छिलका खिलाते देख स्त्री को डाँटे तथा स्वयं केला का गुद्दा खिलाने लगे। भगवान विदुर से बोले कि विदुर जी ! आप तो मुझे सावधानी से खिलाये किन्तु छिलका जैसा स्वाद इसमें नहीं मालूम होता है। जिस प्रेम से मैं छिलका खा रहा था उसको आप अकस्मात् भंग कर दिया। यही है ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता।

अर्जुन ने कृष्ण से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पूछा था - “कार्पण्य दोषो पहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढ चेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तस्मै शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। गी 2।7।” दीनता से मेरी वृत्ति नष्ट हो गयी है। मुझे अपने धर्म अर्थात् कर्तव्य का मन में मोह हो गया है। इसलिए आप से मैं पूछता हूँ कि जिससे मेरा कल्याण हो वह मुझे बतलावें। मैं आपका शिष्य हूँ। इसके उत्तर में भगवान ने साफ कहा कि “मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्तस्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। गी 9।34।” मुझ में मन लगा मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा और नमस्कार करो। इस प्रकार मत्परायण होकर योग का अभ्यास करने से मुझ को प्राप्त करोगे। “सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्ब्यपाश्रयः। मत्पसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्। गी 18।56।” मेरा आश्रित होकर सभी कर्मों को करो। मेरी प्रसन्नता से शाश्वत एवं अविनाशी स्थान (वैकुण्ठ) प्राप्त कर लोगे। “मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्पसादात्तरिष्यसि। अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।। गी 18।58।” मुझ में चित्त लगाये रहने पर तू मेरे अनुग्रह से सारे संकटों को अर्थात्कर्म के शुभाशुभ फलों को पार कर जायेगा। किन्तु अहंकारवश हो मेरी नहीं सुनोगे तो तुम विनष्ट हो जाओगे।

“सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्। गी 18।64।” सभी गोप्यों में भी अति गोप्य मेरा परम वाक्य फिर से सुनो। तुम मेरे अतिदृढ़ प्रिय हो, इसीलिए तुमको यह हित उपदेश करता हूँ।

“सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। गी 18।66।” हे अर्जुन ! तुम सभी धर्मों के फल को त्याग कर एक मात्र मुझे ही शरण या रक्षक समझो। अर्थात् मेरा पूजनरूप स्वधर्म युद्ध करो। मैं तुमको युद्ध में होनेवाला हिंसा-पाप से तथा वासना जनित पूर्व के पाप एवं भावी पापों से मुक्त करा दूंगा। तुम सोच मत करो। इसका परम रहस्य यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ही अपने भक्तों एवं सर्व यज्ञों का एक मात्र सिद्धोपाय हैं।

### श्रीमते रामानुजाय नमः मूर्ति पूजा अनादि कालिक

प्रश्न - मूर्ति पूजा सनातन नहीं है बल्कि कुछ ही काल पूर्व से कुछ विशेष स्वार्थियों द्वारा चलायी हुई एक जीविका निर्वाहार्थ विशेष परम्परा है।

उत्तर - अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नियन्ता भगवान के रूप, गुण, वैभव, महिमा, शक्ति, ज्ञान लीलादि सभी अनन्त हैं। सृष्टि चक्र भी अनादि और अनन्त है। इन सबों को सीमित समझना अल्पज्ञता है। इसमें विशेष कारण है - “अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते।” अभक्तों के हृदय में अध्यात्म ज्ञान का प्रकाश नहीं होता है। “जन्मान्तर सहस्रेषु बद्धिर्या जायते नृणाम्।

तामेव लभते जन्तुरूपदेशो निरर्थकः।” पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार के अभाव के कारण भगवद्भक्तिशून्य हृदयवाले व्यक्तियों को सद्ग्रन्थों में विश्वास नहीं होता है। सन्तों का उपदेश उन्हें स्पर्श नहीं करता इसीलिए वे सब नास्तिक समझे जाते हैं। उन सबों की दृष्टि में सृष्टि क्रम, वेदादि सद्ग्रन्थ, मूर्ति पूजन आदि प्रथा परिगणित काल से हैं। इसकी पुष्टि में वे लोग आधुनिक कुछ लेखकों का मत उपस्थित किया करते हैं जो ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है। श्रुति स्मृति पुराणादि के वचनों को मनमाना कुतर्कों द्वारा खण्डन करना नास्तिकों का प्रधान कार्य है।

उक्त प्रश्न के ऊपर यह विचार करना चाहिए कि जब हम सब एक वट और उसके बीज के पूर्वापर की मीमांसा नहीं कर सकते कि कौन पहले हुआ तो अदृश्य एवं अदित घटना सामर्थ्यवान भगवान और उनकी लीलाओं का आदि, अन्तकाल के ज्ञान की क्षमता क्यों कर रख सकते हैं ? नीचे के उद्धरणों में मूर्ति पूजा की अनादिकालिकता स्पष्ट है - “तज्जलानि शान्त उपासित। श्रुति।” जिससे इन भूतों का प्रादुर्भाव पालन और लय होता है उस शान्त स्वरूप परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व ब्रह्म।” जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति पालन और विलयन होता है उसको ब्रह्म जानना चाहिए।

इन श्रुतियों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट झलकता है कि सृष्टि कभी दृश्य रूप में तो कभी अदृश्य रूप में रहती है। दृश्य कार्यरूप की और अदृश्य कारण रूप की स्थिति कहलाती है किन्तु स्थिति रहती है अवश्य। धारा प्रवाह न्याय से सृष्टि नित्य कहलाती है। “अचिद्विशेषतान्प्रलय सीमनि संसरतः करण कलेवरैर्घटयितुं दयमान मनाः।” परमात्मा प्रलयकाल में अपने उदरस्थ जीवात्माओं को जड़ की भांति देखकर उद्धारार्थ उन सबों को शरीरधारी बनाने के लिए अपनी कृपा द्वारा सृष्टि की रचना करते हैं। भगवान मूर्तिमान हैं। उनकी सृष्टि मूर्तिमती है। शरीरधारी सभी प्राणी मूर्तिमान हैं। सृष्टि के आरम्भ से ही मूर्ति की मान्यता है। यही मूर्ति पूजा है। “सहस्रयुग पर्यन्त महर्षद्वह्णो विदुः। गी 8।17।” सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों के आयुमान मिलाकर एक महायुग होता है। एक हजार युग का ब्रह्मा का एक दिन और इतने ही समय की एक रात्रि होती है। इनका दिन के प्रारम्भ में सृष्टि का आरम्भ और रात्रि के आरम्भ में विनाश हो जाता है। प्रारम्भ में “यथापूर्वमकल्पयत्।” के अनुसार पूर्वसृष्टि के अनुरूप ही दूसरी सृष्टि की रचना होती है। इसकी स्थिति काल में दैवी बुद्धि वाले मनुष्य भगवान की आराधना द्वारा संसार से मुक्त हो जाते हैं। “त्रिपादस्या मृतं दिवि।” - भगवान की त्रिपादविभूति वैकुण्ठ में मुक्तात्माओं का वास होता है। “यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।” - मेरा भजन पूजन करने वाले प्राणी मुझको प्राप्त कर लेते हैं। यह भगवान का वचन है। भक्तों के हित के लिए परमात्मा पांच रूप में सतत वर्तमान रहते हैं। 1। पर - त्रिपादविभूति में सदा रहने वाले। 2। व्यूह - संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। यही क्रमशः ब्रह्मा विष्णु और महेश रूप में परिणत होते हैं। 3। वैभव - भगवान का मत्स्य कच्छप वराह नृसिंह राम कृष्णादि रूपों में अवतार। 4। अन्तर्यामी - विश्वव्यापक परमात्मा। 5। अर्चा - श्रीरंग वेकटाद्रि वदरिकाश्रम जगन्नाथादि स्थानों में स्वयं व्यक्त भगवान, शालिग्राम, मन्दिरों में प्रतिष्ठापित भगवान की मूर्ति ये सभी अर्चा कहलाते हैं। ऊपर के भगवान के पंचविध प्रकारों में आराधकों के लिए अर्चावतार ही अधिक सुलभ सुगम एवं उपादेय हैं।

अर्चा विग्रहधारी भगवान सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्था में भक्तों से सेवा पूजा ग्रहण कर कल्याण करते हैं। यह प्राणियों के ऊपर उनकी निर्हेतुक कृपा है। अन्यथा परमप्रिय भक्त अर्जुन को भगवान ने जब अपना रूप दिखलाना चाहा तो पहले उन्हें दिव्यदृष्टि देनी पड़ी तभी अर्जुन ने उनका रूपा देखा। तो हम सब क्षुद्रों की कौन गणना है कि इस चक्षु से उनके तेजमय रूप को देख सकते थे। “अप्रमेयो हि तत्तेजो। वा रा अरण्य 37।18।” “न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः। गी 15।6।” भगवान के अप्रमेय दिव्यतेज के सामने चन्द्र सूर्य भी नहीं चमकते अर्थात् इन सबों का तेज मन्द पड़ जाता है। प्रति वार की सृष्टि में कुछ न कुछ भक्तों का कल्याण अवश्य ही हो जाया करता है। सृष्टिलीला का यही मुख्य उद्देश्य है।



इसीलिए यह लीला भगवान को अतिप्रिय है। मुक्तात्माओं की मुक्ति में अर्चामूर्ति की आराधना की ही विशेषता का प्रमाण सर्वत्र मिलता है।

आदिकवि श्री वाल्मीकि रचित रामायण में मूर्तिपूजा का सबल प्रमाण है। इनकी रचना वर्तमान सृष्टि के प्रथम स्वायम्भुव मनु के शासनकाल के एक महायुग के पश्चात् द्वितीय महायुग के त्रेता में है। श्रीराम जी के राज्याभिषेक वर्णन में आया है-

“गते पुरोहिते रामः स्नातो नियत मानसः। सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्। वा. रा. अयो. 6।1।

ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुश संस्तरे। वा. रा. अयो. 6।3।

वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियत मानसः। श्रीमत्यायतनं विष्णोः शिष्ये नर वरात्मजः। वा. रा. अयो. 6।4।”

राज्याभिषेक की निश्चित तिथि के पूर्वदिन श्री वशिष्ठ जी के उपदेश से भगवान श्रीरामचन्द्र जी पत्नी सहित श्रीरंगनाथ भगवान की आराधना कर उन्हीं के मन्दिर में विशुद्ध भाव से शयन किये। इसी अभिषेकोत्सव में अयोध्या के देव मन्दिरों को भी सजाने का विशेष आयोजन हुआ था। “सिताग शिखराग्रेषु देवतायतनेषु च। वा. रा. अयो. 6।11।”

यह स्पष्ट मूर्तिपूजा का प्रमाण है। आज हम संकल्प में “अष्टाविंशतितमे कलियुगे ...।” इत्यादि वाक्य बोलते हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर है। इसके पूर्व छः मन्वन्तर बीत चुके हैं - “मनवोऽस्मिन्व्यतीता पटकल्पे स्वायम्भुवादयः।” इस वाराह कल्प से पूर्व स्वयम्भु, स्वरोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष इन छः मनुओं का राज्यकाल समाप्त हो गया है। ब्रह्मा के एकदिन की अवधि में चौदहों मनु का राज्यकाल सम्मिलित है। एक मनु का राज्यकाल दो सौ पचासी साधारण युग अर्थात् मनुष्यों के वर्ष में नवलाख अनठावन हजार वर्ष का होता है। प्रत्येक युग में कुछ सन्धिकाल भी होता है। सन्धिरहित इस कालमान को छः से गुणा करने पर एक हजार सात सौ दस साधारण युग अर्थात् मनुष्यों के वर्ष में सन्तावन लाख अड़तालीस हजार वर्ष छवों मनुओं का व्यतीत राज्यकाल हुआ। सृष्टि के आरंभ में एक महायुग बीतने पर द्वितीय महायुग के त्रेता युग में भगवान श्री रामजी का अवतार हुआ था। अब विचारना चाहिए कि कितने काल पूर्व से मूर्ति पूजा प्रचलित है।

श्रीरामजी के आदिपुरुष इक्ष्वाकु थे। इन्हीं के नाम से उनका वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाता है। ब्रह्मा से मरीचि का जन्म, मरीचि से कश्यप, कश्यप से श्राद्धदेव और श्राद्धदेव से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ था। यही अपनी तपस्या द्वारा रंगनाथ भगवान को प्राप्त किये थे। तभी से रंगनाथ भगवान इस कुल में कुलदेव के रूप में रहते आये थे। श्रीरामजी के द्वारा विभीषण को दिये जाने पर दक्षिण भारत के रंगपुरी में प्रतिष्ठित जो आज विराजमान हैं। “इत्युक्त्वा स काकुत्थः शार्ङ्गं विष्णुं सनातनम्। श्रीरंगं शायिनं सौम्यमिक्ष्वाकु कुलं देवतम्। संप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीवलोचनः। पद्म पु० उ० ख० 271।64 तथा अन्य प्रकाशन में 244।61।” “लब्ध्वा कुलधनं राजा लंकां प्रायाद्विभीषणः (प्रायान्महायशाः)। वा० ग० लंका 131।87।” विभीषण श्रीरामजी के कुलधन रंगनाथ भगवान को प्राप्त कर लंका ले जाते हुए श्रीरंगपुरी में रखे थे। भगवान के नाम से ही उस पुरी का नाम रंगपुरी रखा गया। वह सभी धामों में प्रधान धाम है। इससे यह सिद्ध होता है कि रामावतार के पहले से ही मूर्ति पूजा प्रचलित है। इसी रंगनाथ भगवान के सम्बन्ध में श्रीतुलसीदास जी भी लिखे हैं - “ममकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु किं पकवाना। मानस बाल का. 200।1।” कौशल्या ने भगवान के नैवेद्यार्थ पकवान बनाया था।

“यथापूर्वमकल्पयत ...।” सृष्टि की रचना पूर्व सृष्टि के तुल्य ही होती है। अतः पूर्व सृष्टि की सारी लीलायें इसमें भी होती हैं। जिसमें रामावतार, रामायण की रचना और उसमें मूर्ति पूजन प्रसंग आदि सभी बातों का वर्णन रहता है। इस प्रकार ईश्वर, वेद, आत्मा एवं सृष्टि की नित्यता के समान मूर्ति पूजा भी अनादि कालिक नित्य है। “नारदाय पुरा प्रोक्तः ब्रह्मकल्प उपावृते।।” ब्रह्म कल्प में ब्रह्मा ने सर्व प्रथम नारद को श्री रामचरित्र सुनाया था। वर्तमान श्वेत वाराहकल्प के

छः मन्वन्तर के उपरान्त सातवाँ वैवस्वतमन्वन्तर के अठाइसवां चौयुगी का कलियुग वीत रहा है। यह कितना बड़ा लम्बा काल हुआ, इसके आरंभ से ही मूर्ति पूजा चली आ रही है।

श्रीरामजी के एक पूर्वज अम्बरीष थे। इनका अटल नियम था एकादशी व्रत करना। एक समय इनके यहां अतिथि के रूप में दुर्वासा जी पधारे थे। उस समय एकादशी व्रत के द्वितीय दिन द्वादशी तिथि समाप्तप्राय थी। एकादशी के व्रतियों को द्वादशी तिथि में पारण करने का विधान है। अन्यथा व्रतभंग होता है। प्रतिदिन कुछ अतिथियों को खिलाकर पश्चात् स्वयं भोजन करने का भी उनका अटल नियम था। किसी कारणवस अम्बरीष उनको द्वादशी तिथि में नहीं खिला सकते थे। द्वादशी में स्वयं भोजन नहीं करने से व्रतभंग, अतिथि को खिलाये बिना स्वयं खाने से अतिथि-सेवा भंग, इस प्रकार धर्मसंकट में पड़कर वे उक्त दोनों अपचारों से बचने के लिए भगवान का केवल तीर्थ पान कर पारण विधि समाप्त किये। किन्तु इतने पर भी दुर्वासा को शान्ति नहीं मिली, अत्यन्त क्रोधातुर हो अम्बरीष को आपद्ग्रस्त करना चाहे थे। किन्तु परम भगवद्भक्त रहने से सुरक्षित रह गये थे। यही अम्बरीष की दिनचर्या में पाया जाता है - “करो हरेर्मन्दिर मार्जनादिषु श्रुतिज्वकाराच्युत सत्कथोदये। भा. 9।4।18।” शरीर के अवयव भगवान की सेवा में लगें यही इसकी सार्थकता है। इसीसे शान्ति मिलती है। यही अम्बरीष का प्रधान उद्देश्य था।

श्रीमद्भागवत पुराण में सर्वत्र मूर्तिपूजा की ही कथायें मिलती हैं। इस पुराण के रचयिता वेदव्यास जी विष्णु के अवतार हैं। “व्यासाय विष्णुरूपाय”, “वासव्यां कलया हरेः”, “अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विवाहुर परोहरिः। अभा लोचनः शंभुः भगवान्वादरायणः।।” सभी पुराणों में श्रीमद्भागवत ही सात्विक पुराण है। स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद और इनके पुत्र ध्रुव हुए। ध्रुव अर्चामूर्ति की आराधना द्वारा भगवान को प्राप्त किये थे। वे इस धराधाम पर छत्तीस हजार वर्ष राज्य कर ध्रुवलोक गये और आज भी यहां वर्तमान हैं। उत्तानपाद के भाई प्रियव्रत थे, इनका पुत्र अग्निध्र, अग्निध्र के नाभि, नाभि के ऋषभदेव और ऋषभदेव के पुत्र भरत थे। इन्हीं के नाम से भारत देश विख्यात हुआ। भरत के पुत्र नवयोगेश्वर कहलाये। एकवार राजा निमि ने इन्हीं नवयोगेश्वरों से भागवद्धर्म पूछा था। उत्तर में वे सब अर्चामूर्ति की आराधना बतलाये थे - “अर्चायामेव हरये पूजां ...। भा. 11।2।47।।” अर्थात् अर्चामूर्ति की सेवा परम भागवद्धर्म है।

“अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धोपचारकैः। भा. 11।3।50।

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः। पाद्यार्घ्याचमीनयाद्यैः स्नान वासो विभूषणैः। भा. 11।3।52।”

अर्चामूर्ति की पूजा द्वारा निमि को कल्याण प्राप्त हुआ था।

भक्तियोग प्रकरण में कपिलदेव जी ने अपनी माँ देवहूति से कहा है - “अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्।

भा. 3।29।25।” हे माँ ! स्ववर्णाश्रम धर्म को मानते हुए मेरी अर्चामूर्ति की पूजा करो। ये सभी कथायें सत्ययुग की हैं।

कयाधु, हिरण्यकशिपु की पत्नी, ने नारद के उपदेश में भगवत्पूजन विधि सुना था। उस समय प्रह्लाद गर्भ में हीं थे। अतः उनको भी वह उपदेश याद हो गया था। वे अपने सहपाठियों से कहा करते थे - “श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्। भा. 7।5।23।” परमात्मा की प्रसन्नता के लिए भक्ति सबसे श्रेष्ठ साधन है। वह नव प्रकार की है - 1. भगवद्गुणों का श्रवण, 2. कीर्तन, 3. स्मरण, 4. चरण सेवा, 5. अर्चन, 6. वन्दन, 7. दास्यभाव, 8. सखाभाव, 9. आत्मसमर्पण (शरणागति)। यह भी अर्चापूजा की प्राचीनता का द्योताक है।

सृष्टि के प्रारंभ में मनुश्चित उनकी स्मृति में सृष्टि के आदि पुरुष द्वारा - “देवाभ्यर्च्यन्वज्जैव समिधादानमेव च।” अर्चा मूर्ति की आराधना का निर्देश मिलता है। कृष्णावतार में गोपियों ने अर्चापूजा की है-

“आप्तुत्याम्भसि कालिन्ध्या जलान्ते चोदितेऽरुणे। कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुः नृप सैकतीम्।।

गन्धमाल्यैः सुरभिर्भिलिभिर्धूप दीपकैः। उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवाल फल तण्डुलैः। भा. 10।22।23।।”

व्रज की गोपियों ने सूर्योदय के समय यमुना में स्नान कर उसी के तट पर कात्यायनी देवी की बालू की प्रतिमा बनाकर यथासाध्य चन्दन सुपारी पुष्पादि से पूजा की थी। इसी प्रकार रुक्मिणी भी - “पूर्वेद्युरस्ति महतो कुलदेवि यात्रा, यस्यां वहिर्न ववधूः गिरिजामुपेयात् । भा. 10 | 52 | 42 ।” रुक्मिणी ने अपना पाणिग्रहण संस्कार के निश्चित दिन के पूर्व दिन कुलाचार के अनुकूल गिरिजा पूजन निमित्त यात्रा की थी। कृष्ण द्वारा संचालित गोवर्धन पूजा सर्वविदित ही है - यवसं च गवां दत्वा गिरये दीयतां वलिः । भा. 10 | 24 | 28 ।” कृष्ण भगवान ने गोपों को निर्देश किया था कि गौओं को जौ आदि देकर गोवर्धन पर्वत के लिए वलि दी।

अपौरुषेय वेदों में सर्वत्र मूर्तिपूजा तथा मूर्ति का वर्णन मिलता है - “द्वावेव ब्रह्मणो रूपं मूर्तञ्चामूर्तञ्चेति ।” ब्रह्म की दो मूर्तियाँ हैं, एक मूर्त और दूसरी अमूर्त। विपत्ति सूचक प्रतिमा चलन्ति हसन्ति रुदन्ति इत्यादि। भक्त प्रवर विदुर ने कुसंग को दूर करने के लिए तीर्थयात्रा की थी। सर्वत्र देवमूर्ति पाये थे -

“अन्वाक्रमत्पुण्य चिकीर्षयोर्व्या स्वधिष्ठतो यानि सहस्रमूर्तिः । भा. 13 | 1 | 17 ।

अनन्त लिङ्गैस्समलङ्कृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः । भा. 13 | 1 | 18 । ।”

पुण्यार्जन की इच्छा से विदुर जी अनन्त रूपों में स्थित देव मूर्तियों वाले तीर्थ स्थानों में घूमे थे - “कृतानि नावायतनानि विष्णोः प्रत्यंग मुख्यांकित मन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति । भा. 13 | 1 | 23 ।”

“विविध कुसुम किसलय तुलसी काम्बुभिः कन्दमूल फलोपहारैश्च समीहमानो भगवदाराधन विविक्त उपरत विषयाभिलाषः । भाग. 5 | 7 | 12 ।” भरत पुलहाश्रम में रहकर तुलसी जल कन्दमूलादिकों से शालिग्राम की पूजा किया करते थे। ये सभी प्रमाण मूर्तिपूजन के हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता सर्वमान्य है। इसका प्रचार सर्वत्र है। मानव मात्र के लिए उपादेय है। इस ग्रन्थ के प्रवक्ता स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं - “योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयः स्वयम् ।” इसके संमुख वेद भी लघु है - “त्रिगुण्य विषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । गी. 2 | 45 ।” वेद सतो गुण रजोगुण तमोगुण विशिष्ट है। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन को लुभावन वेद वात्ताओं से अलग रहने की चेतावनी देते हैं कि हे अर्जुन ! तुम उक्त तीनों गुणों से रहित बनो। अर्जुन के कल्याण विषयक प्रश्न करने पर भगवान कहते हैं - “पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । गी. 9 | 26 ।” इस कथन के द्वारा भगवान स्पष्ट ही मूर्तिपूजा वतला रहे हैं। यह कथन गीता के सार परम मन्त्र के समान है। इस उपदेश परम्परा की अनादिकालिकता को भी भगवान स्वयं ही वतलाये हैं - “एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः । स काले नेह महता योगो नष्टः परन्तप । । स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः । गी. 4 | 2 | 3 ।” अर्जुन से भगवान कहते हैं कि आज तुमको वही उपदेश सुना रहा हूँ जिसको सृष्टि के आदि में सुनाया था, जिसे परम्परया राजर्षिगण जानते हैं। कालक्रम में वह नष्ट हो गया था। अतएव यह पुरातन है। क्या इससे बढ़कर मूर्तिपूजा का कोई दूसरा प्रमाण भी हो सकता है ? नारद द्वारा व्यक्त पञ्चरात्र शास्त्र के दो सौ आठ संहिताओं के विष्वक्सेन संहिता में कल्याणार्थ अर्चामूर्ति की पूजा का विशेष महत्व वतलाया गया है।

“मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहुः वेदान्त पारगाः । परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम् । ।

अर्चवितारश्च तथा दयालु पुरुषाकृतिः । इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मा रहस्य विदोजनाः । ।”

भगवान जन कल्याणार्थ पाँच रूपों में विद्यमान रहते हैं। प्रतिमा में दो विभाग हैं। एक स्वयं व्यक्त दूसरा प्रतिष्ठापित। प्रतिष्ठापित मूर्ति की अपेक्षा स्वयं व्यक्तों का महत्व अधिक है। स्वयं व्यक्तों में श्रीरंगनाथ (श्रीरंगपुरी दक्षिण भारत), श्रीवेंकटेश (वेंकटाद्रि दक्षिण भारत), नर नारायण (वद्रिकाश्रम उत्तर भारत), मुक्तिनारायण (भारतोत्तर नेपाल), जगन्नाथ (उड़ीसा राज्य पूर्व भारत) और शालिग्राम मूर्ति (शालिग्रामी या गण्डकी नदी से उत्पन्न) हैं। गण्डकी नदी हिमालय के

मुक्तिनारायण नामक पहाड़ से निकलती है। पहाड़ के जो भी अंश टूट फूट जाते हैं वही सब भगवान के विग्रह बन जाते हैं। इसीलिए शालिग्राम की मूर्ति इसी नदी में मिलती है। पहाड़ पृथिवी सृष्टि के आरम्भ से ही हैं। इस विषय को नये पुराने सभी विद्वान मानते हैं। इसलिए यह सिद्ध है कि अर्चामूर्ति की पूजा परम्परा अनादि काल से ही चली आ रही है। भगवान का उद्देश्य अर्चामूर्ति धारण कर भक्तों की पूजा ग्रहण कर उनका उपकार करना ही है। यह भाव भगवान के हृदय में सदा जागरू रहता है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

## पुण्य और पाप का लक्षण

प्रश्न-पाप और पुण्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर -

- 1। “नहिं सत्यात्यरो धर्मः।” सत्य से श्रेष्ठ दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिए दशरथ जी तथा हरिश्चन्द्र ने इसी धर्म को अपनाया था। “नहिं असत्य सम पातक पुंजा। मानस। अयो 27।3।” असत्य के समान दूसरा कोई पाप पुंज नहीं है। सामान्य से विशेष नियम बलवान होता है। ऊपर के सभी धर्माधर्म के लक्षण सामान्य हैं। विशेष नियम की मीमांसा करने पर सदशास्त्रों द्वारा यह बोध होता है कि किस नियम के पालन करने से इहलोक और परलोक में कल्याण (मोक्ष) प्राप्त हो यही विशेष नियम (धर्म) है। “यत्त्वत्प्रियं तदिह पुण्यम पुण्यमन्यत्।” जिस कार्य से भगवान की प्रसन्नता हो वही पुण्यजनक कार्य है। इससे अन्य सभी कार्य पाप जनक हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किया हुआ पुण्य भी पाप जनक और परार्थ पाप भी पुण्य जनक होता है। स्वार्थ बुद्धि से दशरथ जी ने सत्य पालन किया था किन्तु वह उनके लिए बन्धन हो गया, अर्थात् उनको मोक्ष नहीं मिला। जटायु का परार्थ रावण से युद्ध करना मोक्ष का कारण बना। “गिद्ध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा। मानस अरण्य 31।1।” “या गतिर्यज्ञ शीलानाम परावर्तिनाञ्च यत्।”
- 2। श्रीरामजी का पक्ष पूरा करने के लिए अंगद ने रावण से झूठ कहा था कि हनुमान अभी तक श्री राम जी के समीप नहीं गये हैं। “अव लागि गयउ न राम पहुँ तेहि भय रहेउ लुकाइ। मानस लंका 23 क।” वसुदेव जी ने कंस से प्रतिज्ञा पूर्वक कहा था कि मैं देवकी के गर्भ से उत्पन्न सभी वच्चों को आपको दे दूंगा किन्तु इनसे इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करते नहीं बन सका। सत्यता छोड़े, चोरी, झूठ और धूर्तता को अपनाये। प्रतिज्ञा नहीं पूरी करना झूठ, कृष्ण को गोकुल में यशोदा के पास ले जाना चोरी, वहीं से कन्या लाकर देवकी की गोद में रखना धूर्तता हुई। ये सब करने पर भी वसुदेव को मोक्ष मिला। इनका सभी कार्य भगवान के लिए ही हुआ था। “मनिभित्तं कृतं पापं तद्धर्मय च कल्पते।” भगवान के लिए किया हुआ पाप भी पुण्य जनक होता है।
- 3। स्त्रियों के लिए सतीत्व धर्म का पालन करना परम कर्तव्य है - “पतिरेव देववत्पूज्यः।” स्त्रियों को चाहिए कि पति को देव तुल्य माने और सत्कार करे किन्तु इसके विपरीत व्रज की गोपियों को कृष्ण में जार बुद्धि करने पर भी मोक्ष मिला। उन गोपियों की चरण-धूल के लिए ब्रह्मा भी तरसते हैं - “आसामहोचरण रेणुजुषामहं स्याम्।”
- 4। आचारी सम्प्रदायान्तर्गत आठवारों में एक स्वामी श्री परकाल जी थे। वे भगवान और भागवतों के तदीयाराधन



(भोजन) के लिए अपनी सारी सम्पत्ति समाप्त कर पश्चात् चोरी और डकैती भी किया करते थे। यह भगवदकैङ्कर्य महापुण्य जनक था। इनको मोक्ष मिला। भगवान भी श्री परकाल जी को उक्त कार्य में सहायता किया करते थे। यह कथा प्रख्यात है।

5। शुक्राचार्य ने लिखा है - “स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्यर्थे प्राण संकटे। गो ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।” स्त्री से, विवाह विषय में जीविका के लिए, प्राण संकट आने पर गौ तथा ब्राह्मण की हिंसा से मुक्ति में झूठ बोलने का कोई दोष नहीं लगता है। यहां यह सोचना चाहिए कि जब इन संसारी कार्यों में झूठ बोलने का कोई दोष नहीं लगता बल्कि पुण्य होता है तो भगवान के निमित्त बोला हुआ झूठ या किया पाप क्योंकि बड़ा पुण्य न होगा। इसीलिए श्री स्वामी कुरेश जी ने पुण्य और पाप के लक्षण में यही लिखा कि “यत्त्वत्प्रियं तदिह पुण्यमपुण्यमन्यत्।”

6। भगवान को प्रियकर पुण्य होता है और अप्रियकर पाप होता है। इसका उदाहरण श्रीकृष्ण लीला है। “धूर्तायितं हि तव यत्किल रास गोष्ठयामतत्कीर्तनं परम पावनमामनन्ति।” - हे कृष्ण भगवान ! आपका निन्दासूचक नाम रासविहारी माखनचोर आदि का जो कीर्तन करता है वह आपको भी प्रिय लगता है। अतः आपका प्रिय होने से आपकी निन्दा भी पुण्य जनक और अप्रिय स्तुति भी पाप जनक है। किसी को गाली देना सबसे बढ़कर पाप है। शिशुपाल ने कृष्ण को गाली देने के साथ साथ अपमानित भी किया था किन्तु सभी के लक्ष्य श्रीकृष्ण ही थे, अतः उसे मुक्ति मिली। यहां विचारने का विषय यह है कि ऐसे अहित चाहने वाले शिशुपाल को मुक्ति मिली तो क्या भगवान के निमित्त हित की दृष्टि से झूठ बोलने या पाप करने वाले को क्यों नहीं मुक्ति मिलेगी। भगवान तो सर्वदर्शी हैं, सभी जानते ही हैं कि मेरे निमित्त कौन क्या कर रहा है। यदि किसी को झूठ बोलने का या पाप करने का निमित्त मैं बना तो कर्त्ता का इसमें क्या दोष है बल्कि कर्त्ता आत्मस्वरूप ज्ञानी है ऐसा भगवान जानते हैं।

7। “सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। गी 18।66।”

भगवान तो अपने लिए सभी धर्मों का छोड़ने का उपदेश करते हैं। सत्य को छोड़ना तो एक साधारण सी बात है।

8। हत्या करना महापाप है। कीड़ों की अपेक्षा पशुओं की, पशुओं में गौओं की और उन सबों की अपेक्षा ब्राह्मणों की हत्या बड़ी है। पूतना ने तो कृष्ण को मारकर हत्या लेना चाहा था। उसने उन्हें विषपान कराया। किन्तु भगवान ने सोचा कि इस हत्या का लक्ष्य तो मैं ही हूँ, अवश्य मोक्ष देना चाहिए और दिये भी। “यातुधान्यपि सास्वर्गमवाप जननीगतिम्। भा. 10।6।38।” श्रीकृष्ण भगवान उसे अपनी जननी की भांति उत्तमगति मोक्ष दिए।

9। मथुरा की ब्राह्मण स्त्रियाँ अपने पति पुत्रादिकों को अपमानित कर यज्ञार्थ देवी देवताओं के निमित्त बने हुए सभी हविष्यान्न पकवानों को लिए हुए श्रीकृष्ण के समीप पहुँच गयीं। यह सभी कृष्ण के उद्देश्य से ही हुआ था। अतः महापुण्यजनक कार्य हुआ। भगवान प्रसन्न हो उन सबों को पति पुत्रादिकों के साथ दिव्यज्ञान प्रदान कर अपनाये अर्थात् मोक्ष मिला। स्वयं चौबे लोगों ने कहा है “अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः। भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ। भा. 10।23।49।” हम सभी धन्य हैं कि ऐसी स्त्रियाँ हम सबों को मिलीं कि जिन सबों के द्वारा भगवान की निश्चला भक्ति मिल गयी।

10। चोरी करना महापाप है। श्रीकृष्ण के साथ व्रज के अन्यान्य गोपाल बालकों ने रात्रि में घूम घूम कर सबों के घर चोरी की थी, अनेकों उपद्रव मचाया था, किन्तु पाप और पुण्य के नेता तो साथ ही थे, अतः वे दोष के भागी नहीं हुए। इन सबों को दोषी ठहराने का भी साहस किसी को नहीं हुआ। पुराण रचयिता श्री वेदव्यास जी भी कुछ आलोचना नहीं कर सके। क्यों करते जब भगवान की इच्छानुसार ही यह कार्य किया गया था। अतः यह सिद्ध होता है कि भगवान की अनुकूलता का पोषक पुण्य और प्रतिकूलता का पोषक पाप है।

11। एक सन्यासी ने किसी एक निरपराध कुत्ते को एक छड़ी मार दिया था। कुत्ता श्री राम जी के यहां न्याय के लिए उक्त अभियोग (मुकदमा) लेकर गया। श्रीराम जी ने कुत्ते से ही उसे दण्डित करवाया था। किन्तु इनके द्वारा किया गया अश्वमेध यज्ञ में मरे अनेकानेक सैनिकों के लिए प्रायश्चित्त तक भी किसी से नहीं करवाया था क्योंकि उक्त यज्ञ तो भगवान के आज्ञानुकूल ही किया गया था। तन्निमित्तक ही युद्ध भी हुआ था और सैनिक मारे गये थे। वर्तमान में जब कोई प्रजा किसी को मार डालता है तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाता है। किन्तु जब राजा की आज्ञा से युद्ध होता है तो जो वीर जितनी ही अधिक संख्या में विरोधियों को मारता है, उसकी प्रशंसा होती है और उसे पुरस्कार दिया जाता है। इसी प्रकार भगवान के निमित्त किया हुआ सभी कार्य पुण्य है और कर्त्ता प्रशंसाभागी होता है।

12। लक्ष्मण जी ने भगवान के आगमन के समय दुःखी होकर कहा था “अहं हनिष्ये पितरं कामवशं गतम्। वा. रा. अयो. 21।19।” मैं अभी वृद्ध पिता को मारूंगा। भरत जी ने अपनी माता कैकेयी के प्रति कहा है “धिक कैकेयी अमंगल मूला।” “गिरेड न जीह मुख परेड न कीरा। मानस अयो. 161।1।” यह माता के प्रति फटकार है। भरत ने वसिष्ठ जी को भी फटकारा है किन्तु वे सभी दोष भी भरत जी को दूषित न कर सके। “पूरन राम सप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहीं दूषा। मानस अयो. ।” श्री राम जी के लिए ही भरत जी ने सभी का अपमान किया, अतः दोष नहीं हुआ। लक्ष्मण जी ने परम भागवत भरत जी को भी अपमानित किया है। “सोवहु समर सेज दोड भाई। मानस अयो. 229।2।” भगवान के निमित्त होने के कारण यह महान दोष भी नगण्य हो गया।

13। प्रह्लाद ने अपने कुलधर्म, जातिधर्म, पितृवचन, गुरुवचन सभी का परित्याग किया है। उन दोषों के साथी प्रह्लाद के सहपाठी भी थे किन्तु कोई भी दोषी नहीं हुआ क्योंकि प्रह्लाद ने सभी पाप भगवान के निमित्त किया है। इसीलिए भगवान ने कहा है कि “अपि चेतसो दुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक्व्यवसितो हि सः। गी. 9।30।” श्रुति विहित निज पथ को छोड़कर जो भी मुझे अनन्य भाव से जानता है वह साधु है।

14। अपने लिए किया हुआ धर्म कार्य भी बन्धन हो जाता है जैसे नृग एवं बलि आदि को हुआ। स्वार्थ बुद्धि से तृण छेदन भी पाप है किन्तु भगवान के निमित्त तुलसी छेदन किया जाता है। जितनी ही तुलसी भगवान को अर्पित की जाय अधिकाधिक पुण्य है। भगवान प्रसन्न होते हैं। यह सद्ग्रन्थों का वचन है। इसी प्रकार के कर्मों को पाप भय होते हुए भी पुण्य जनक कहा गया है क्योंकि भगवान को वह प्रिय है।

15। हरिवंश की कथा है घण्टाकर्ण जब मुक्ति के लिए भगवान के यहां चला तो उनके लिए नैवेद्यार्थ भोग लगाने के लिए एक ब्राह्मण को मारकर वह ले चला। भगवान ने उसकी हृदयस्थ भावना जानकर वह उपहार लिया और प्रसन्न होकर उसको मोक्ष दिया तथा ब्राह्मण को जिला दिया था।

16। दक्षिण भारत के श्रीरंगपुरी के समीप पहाड़ के ऊपर उद्भट महादेव की एक मूर्ति थी। उस पर प्रतिदिन उनके भक्तगण दूध चढ़ाया करते थे जो एक गढ़ा में जमा हो जाता था। कोई वैष्णव उस दूध को अपने घर लाकर हविष्य बना भगवान को भोग लगाते और वैष्णवों को प्रतिदिन खिलाया करते थे। किसी दूसरे वैष्णव ने उस वैष्णव से पूछा कि तुम शिव के निर्माल्य दूध से खीर बना भगवान और भागवत को खिलाते हो, यह घोर पाप क्यों करते हो ? उसने उत्तर दिया मैं तो जानता हूँ कि मूर्ख लोग पत्थर पर दूध गिरा देते हैं। मैं उसको भगवान के काम में लगा देता हूँ तो क्या अनुचित हुआ ? यह सुनकर सभी प्रसन्न हुए। यह अपचार उस वैष्णव को नहीं लगा क्योंकि भगवान के लिए उसने यह किया था।

17। ययाति ने अपने पुत्र यदु से युवास्था मांगी थी किन्तु यदु ने नहीं दिया। उसने सोचा था कि अपनी युवास्था दे देने से मैं बूढ़ा बन जाऊंगा तो भगवान की आराधना करते नहीं बनेगी। अतः पिता की आज्ञा नहीं माना किन्तु आज्ञा

उल्लंघन का दोष उसे नहीं लग सका। इसी के विषय में कहा है कि “यदोश्च धर्मशीलस्य । भा. 10।1।2 ।” यदु को धर्मशील विशेषण दिया गया है क्योंकि इसने भगवान के निमित्त अपनी युवास्था सुरक्षित रखी थी।

18। ईश्वर को मित्र भाव या शत्रु भाव से जिस प्रकार हो सके जानना चाहिए इससे भलाई होती है। शत्रु भाव से ईश्वर को जानने वाला शिशुपालादि, मित्र भाव से जानने वाले उद्धवादि थे। सर्वों का कल्याण हुआ। ईश्वर को जानकर उपेक्षा करने वाले वेणु आदि की भलाई नहीं हुई इसलिए कहा है “तुलसी अपने राम को रीझ भजे या खीझ। उलटा सीधा जामि है खेत परे सब बीज ।।” खेत में पड़ा बीज चाहे वह उलटा सीधा क्यों न हो जमकर समान ही बढ़ेगा और सर्वों में समान ही फल लगेगा। इसी प्रकार का भगवान का स्मरण है। वह चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो किन्तु उससे कल्याण होगा ही। “पुण्यं पापमिति द्वयं खलु तयोः पूर्वेण यत्साध्यते।” “तत्त्व द्विस्मृति कारकं तनुभृतां ...।” पुण्य का फल सुख है किन्तु वह सुख भगवान को भुला देने वाला है। सुख भोगने के लिए बहुकाल तक देवल्लोकादि में रहना पड़ता है, जो भगवान की प्राप्ति का विरोधी है। अतः वह पाप हुआ।

श्रीमते रामानुजाय नमः  
सत्संग क्यों ?

सन्तसंग अपवर्ग कर कामी भवकर पंथ। कहहिं सन्त कवि कोविद श्रुति पुराण सदग्रन्थ । मानस उत्तर 33 ।  
सज्जनों के साथ संगति करने से मोक्ष मिलता है। संसार के मनुष्यों में दो विभाग हैं। एक दैवी बुद्धि वाला दूसरा आसुरी बुद्धि वाला। दोनों के दो मार्ग, दो कार्य और दो स्थान भी हैं। दैवी बुद्धिवाले संसार से मुक्त होकर अपने साथ अनेकों को भगवान् के यहाँ ले जाते हैं और आसुरी बुद्धिवाले अपने साथियों के साथ नरक में पहुँचते हैं। “दैवी सम्पद्धिमोक्षाय निवन्धायासुरी मता । गी 16 । 5 ।”

दैवी बुद्धिवाले पवित्र कर्म में रत रहते हैं और आसुरी बुद्धिवाले पाप कर्म में रत रहते हैं। जैसे एक ही मैकल पहाड़ से निकले हुए सोनभद्र और नर्मदा की सहायक नदियाँ सोनभद्र के साथ बंगाल की खाड़ी में और नर्मदा के साथ अरब समुद्र में गिरती हैं। इस प्रकार एकही संसार में जन्म लेने पर भी कुछ लोग सज्जनों के संग से मोक्ष प्राप्त करते हैं और कुछ लोग दुष्टों के संग से नरक पाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अपनी भलाई चाहने वालों को सज्जनों की संगति करनी चाहिए।

“गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरौ यथा । पापं तापञ्च दैन्यञ्च हरते सन्त समागमः ।।” गंगा पाप, चन्द्रमा ताप और कल्पतरु दीनता को नाश करता है किन्तु सन्तों की संगति पाप ताप और दीनता सर्वों को नाश करती है। यहाँ ताप शब्द दैविक, दैहिक और भौतिक तीनों का वाचक है। प्रह्लाद ताप से तप्त नहीं हुए, नव योगिश्वरों सनकादिकों तथा नारद कर्द मादिकों को दरिद्रता नहीं सता सकी। “श्रेयार्थी दूरतस्त्यजेत् ।” कल्याण चाहने वालों को चाहिए कि धन से बहुत दूर रहे।

“ससुखी यस्त्वकिञ्चनः ।” अकिञ्चन ही परम सुखी है। किन्तु यह ज्ञान तो सज्जनों को संगति द्वारा ही प्राप्त होता है। दरिद्रता उन्हें नहीं सताती। काक भुसुण्डी ने गरुड़ से कहा है - “सत्संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दण्ड भरि एको वारा । मानस उ. 122।3 ।” इसी प्रकार लंकिनी ने भी कहा है - “सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिण तुला इक अंग । तुलै न ताही सकल मिली जो सुख

लव सत्संग । मानस सु. 4।0 ।” किन्तु “राम कृपा विनु सुलभ न सोई । मानस वा. 2।4 ।” भगवान् की कृपा विना सत्संगति का अवसर नहीं प्राप्त होता। “सत्संगति संसृति कर अन्ता । मानस उ. 44।3 ।” सत्संगति द्वारा संसार-बन्धन छूटता है। ऐसे महान

कार्य में भगवान् की कृपा अवश्य ही अपेक्षित रहती है। उनकी कृपा होते ही जन्म-मरण बन्धन छूट जाता है। नारद पूर्व जन्म में दासीपुत्र थे। इनकी माँ वेद पाठी ब्राह्मण के यहाँ रहती थीं। पिता मर चुके थे। इनके भरण पोषण का भार माँ के ऊपर था। जिस ब्राह्मण के यहाँ नारद की माँ रहती थीं वहाँ कभी कुछ साधु लोग आये और अपनी दयावस भगवान्का तीर्थ प्रसाद बच्चा नारद को भी दिये। इससे नारद का हृदय पवित्र हो गया ज्ञान पट खुल गया। इसी समय इनकी माँ सर्प दंश से मर गयी। नारद इससे अत्यन्त प्रसन्न हुए कि मेरे भरण पोषण के लिए ही माँ को टहलनी का काम करना पड़ता था। इस कष्ट से वह मुक्त हो गयी और मैं भी माँ के प्रेम बन्धन से मुक्त हुआ। साधुओं की संगति के प्रभाव से नारद भगवान्की आराधना करने लगे। भगवान्प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिए किन्तु क्षण भर के लिए। इस दर्शन से विश्लेष होने पर उसके लिए नारद को व्याकुल देखकर पुनः आकाशवाणी हुई - तुम्हारी देह अभी शूद्र का है। आगे के जन्म में ब्राह्मण की देह मिलेगी तब मनोकूल दर्शन होगा और अभिलाषा पूरी होगी। वही नारद जब ब्राह्मण हुए तब पुनः भगवान्का दर्शन हुआ।

सत्संग महिमा : नारद -

अहं पुरातीत भवेऽभवं मुने, दास्यास्तु कस्याश्च न वेद वादिनाम्।  
निरोपिते बालक एव योगिनाम्, शुश्रूषणो प्रावृषि निर्निविविक्षताम्।।  
ते मय्य पेताखिल चापलेऽर्भके, दान्तेऽधृत क्रीडन केऽनुवर्तिनि।  
चक्रुः कृपां - यद्यपि तुल्य दर्शनाः, शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्प भाषिणी।।  
उच्छिष्ट लेपा ननु मोदितो द्विजैः, सकृत्स भुंजे तदपास्त किल्बिषः।  
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्ध चेतसस्, तद्धर्म एवात्म रुचिः प्रजायते।।  
तत्रान्वहं कृष्ण कथा प्रगायताम्, अनुग्रहेण शृणवं मनोहराः।  
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः, प्रिय श्रवस्यंग ममावदुचिः। भा. 1।5।23-26।

नारद जी ने अपनी कथा द्वारा लोगों को सत्संग की महिमा बतायी है।

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा।।  
व्रतानि यज्ञ छन्दांसि तीर्थानि नियमाः यमाः। यथाऽवरुन्धे सत्संगः सर्व संगापहोहि माम्।।  
सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना खगा मृगाः। गन्धर्वाऽप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण गुह्यकाः।।  
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्या शूद्राः स्त्रियोऽन्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्मिंस्तस्मि न्युगेऽनघ।।  
वहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकाया धवस्तथा। भा. 11।12।1-4।

भगवान् अपने विषय में कहते हैं कि हे उद्धव ! मुझको जितना सत्संग अवरुद्ध (वश में) करता है उतना और कोई साधन योग, तप, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, इष्ट, आपूर्त, व्रत, यज्ञ, तीर्थ, नियम, यमादि नहीं अवरुद्ध (वश में) कर सकता है। सभी कुसंगों को नाश करने वाला सत्संग के द्वारा दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, मनुष्य आदि सभी रजोगुणी, तमोगुणी प्रकृति वाले प्राणी, त्वाष्ट्र, कयाधु (प्रह्लाद) आदि भक्त मेरा पद (वैकुण्ठ) प्राप्त कर चुके हैं।

वृषपर्वा वलिर्वाणो मयश्चाथ विभीषणः। सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृद्धो वणिकपथः।।  
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञ पत्न्यस्तथापरे।  
तेनाधीत श्रुति गणा नोपासित महत्तमाः। अव्रतातप्त तपसः सत्संगान्मामुपागताः।।  
केवले न हि भावेन गोप्योगावो नगा मृगाः। येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धामामीयुरं जसा।।  
येन योगेन सांख्येन दानव्रतः तपोऽध्वरैः। व्याख्या स्वाध्याय सन्यासै प्राप्नुयाद्यलवानपि।।

वृषपर्वा, वलि, वाण, मय, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, गज, गृद्ध, तुलाधार वैश्य, धर्म, व्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यज्ञ पत्नियाँ, व्रज की गौएँ, वृक्षादि, मृग, पशुपक्षियाँ जो कभी न तो स्वाध्याय, किसी प्रकार का व्रत, महापुरुषों की



उपासना, कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत ही किये थे। इन सबों में अधिकांश तो साधन-साध्य के सम्बन्ध में सर्वथा मूढ़ बुद्धि वाले ही थे किन्तु सत्संग बल से ही उत्तम गति प्राप्त किये।

सत्संग के सम्बन्ध में श्रीवरद गुरु विरचित दो श्लोक यों हैं-

सत्संगाद्भव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्सवान्। प्रारब्धं परिभुज्य कर्मशकलं प्रक्षीण कर्मान्तरः।।

न्यासादेव निरंकुशेश्वर दया निर्लून मायान्वयो। हार्द्रानुगह लब्ध मध्य धमनी द्वाराद्वहि निर्गतः।।

मनुष्यों का जब सज्जनों के साथ संगति होती है तब उसे सांसारिक विषयों से अरुचि हो जाती है। पश्चात्गुरु द्वारा नारायण की शरणागति और नारायण मन्त्र प्राप्त होता है। इससे इसी जन्म में पूर्व के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान हो जाने के कारण कर्तृत्वाभिमान नहीं रहने से भावी कर्मबन्धन लगता ही नहीं है। यदि स्वभाव से कुछ हो भी जाय तो भगवान्नाश कर देते हैं। प्रारब्ध भोगकर यहीं स्वच्छ हो जाता है। अथवा भगवान्शरणागत के पापों को - उसके शत्रु को और उसके पुण्यों को - उस के मित्रों को देकर उसे स्वच्छ बना देते हैं। हृदयस्थ अन्तर्यामी भगवान्अपनी कृपा द्वारा जीव को सुषुम्ना नाड़ी द्वारा बाहर कर देते हैं। कर्मवासना बस प्राप्त शरीर से छुटकारा पा कर जीव अर्चिरादि मार्ग से आगे बढ़ता है।

मुक्तोऽर्चिदिन पूर्वपक्ष षडुदङ्गासाव्या वातो शुभत्। म्लौर्विद्युद्वरुणेन्द्र मरुतः सीमान्त सिन्ध्वाप्लुतः।।

श्रीवैकुण्ठ मुपेत्य नित्यमज्जं तस्मिन्परब्रह्मणः। सायुज्यं समवाप्य नन्दतिचिरं तेनैव धन्यः पुमान्।।

अग्निलोक के देवगण अर्चिरादि पहुंचा देते हैं। दिनाभिमानी लोक, शुक्लपक्षाभिमानी, उत्तरायण छः मास, सम्बत्सर देवताओं के लोक होते वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत, वरुण, इन्द्र लोक होते हुए और उन सबों से सम्मानित होते हुए ब्रह्मलोक जाता है। वहाँ भी उनसे पूजित होकर प्रकृति मण्डल की सीमा तथा त्रिपादविभूति के मध्य में ज्ञान की धारा वाली विरजा नदी में स्नान कर प्राकृत शरीर को छोड़ कर पञ्चोपनिषमय भगवान्की सेवा योग्य चतुर्भुज शरीर धारण करता है। विरजा के तट पर अमानव भगवान् के स्पर्श से दिव्यज्ञान प्राप्त होता है। मुक्तात्मा को यहाँ से अतिवाहिक लोग दिव्य विमान में बैठकर विरजा तक ले जाते हैं और वहाँ से दिव्यसूरि विमान से भगवान्के यहाँ ले जाते हैं। वैकुण्ठ के समीप पहुँचने पर यह वैकुण्ठ नगर को “श्री वैकुण्ठाय नमः” कह कर प्रणाम करता है। इसको गोपुर के अभ्यन्तर प्रवेश करने पर भगवान्के दिव्य पार्षद गण उसे अपने स्थान एवं घर में लिवा जाते और पूजन स्तुति करते हैं। पुनः भगवान्के दिव्य विमान को “श्रीवैकुण्ठ दिव्यविमानाय नमः” कह कर प्रणाम कर शेष पर बैठे हुए भगवान्को प्रणाम करता है। लक्ष्मी के सहित भगवान् इस मुक्तात्मा को प्रेम से अपने पास बुलाते और पूछते हैं कि अब तक तुम कहाँ था और यहाँ कैसे आया ? यह सुनकर मुक्तात्मा पुरुष अपनी जन्मान्तर की बात कह कर यह भी बतलाता है कि अब तक मैं माया के बन्धन में पड़ा था। जब आप की कृपा हुई तब मैं आप की शरण में आया हूँ। यह सुनकर भगवान् उसे लक्ष्मी को दे देते हैं। लक्ष्मी उसे पुत्र के समान दुलारती हुई सभी प्रकार से भगवान्की सेवा करने की विधि बताती हैं। इस भाँति वह सतत भगवान्की सेवा में रहता हुआ आनन्द से कालक्षेप करता है और वहाँ से कभी भी इस लोक में नहीं आता। यह सत्संगति का ही फल है। इस विषय को लोकाचार्य स्वामीने ऐसा कहा है - निर्हेतुक भगवत्कटाक्ष द्वारा अज्ञान सुकृतं भवति, तद्वारा अद्वेषो भवति, तस्मात्भागवत विषयाभिमुख्यं भवति। भगवान्की निर्हेतुक कृपा द्वारा ही सत्संगति का संयोग होता है। इसी से “सत्संगति दुर्लभ संसारा। मानस उ. 122।3।” कहा गया है क्योंकि संसार बन्धन छूट जाता है।

(दृष्टव्य १) श्री वरदगुरु, श्री वेदान्त स्वामी जी के गुरु के गुरु थे। आपका कांचीपुरम में मुख्यालय था। एक बार अर्चक वरदराज भगवान को अत्यन्त गरम दूध अर्पित करने ही जा रहे थे कि आपने बीच में ही अर्चक को रोककर उस दूध को पीने लायक, न अधिक गरम न अधिक ठंडा, देने का अनुरोध किया। अर्चक ने वैसा ही किया और वरदराज भगवान ने प्रसन्न होकर वरदगुरु को अपनी माँ कहकर सम्बोधित किया। उस दिन से आप “नदहूर अम्मल” के नाम से

ही कांचीपुरम में विख्यात हुए।)

महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में भी यही कथानक है - वाल्मीकि जी पहले घोर हिंसक थे। लूट मार द्वारा धन लाकर परिवार का भरण पोषण करना ही इन का काम था। एकवार सप्तर्षियों से इन्हें भेंट हुई। उन सबों के सामान भी इन्होंने ने छीनने का उपक्रम किया। उन सबों ने उनसे पूछा - क्या तुम्हारे परिवार भी तेरे इस दुष्कर्म के भागी होंगे ? वाल्मीकि अपने परिवार के लोगों से पूछने गये। उन सबों ने उत्तर दिया - हम सब तुम्हारे लाये हुए धन के केवल भोक्ता हैं तुम्हारे पाप के भागी नहीं। यह उत्तर सप्तर्षियों को वाल्मीकि जी ने सुनाया। तब ऋषियों ने अपने उपदेशों के द्वारा इनका अज्ञानान्धकार दूर कर कल्याणार्थ राम नाम जपने को प्रेरित किया। इसके बाद तो इनका भाग्य जग गया। तब से दिव्यज्ञान इन्हें मिल गया। इनसे मिलने ब्रह्मा आये। उन्हीं के उपदेश से इन्होंने रामायण की रचना की। इसीलिए ये आदिकवि कहलाये। भगवान् भी मिले। इस प्रकार सत्संग द्वारा ही ये महान वने। वृत्रासुर को चित्रकेतु जीवन में नारद और अंगिरा के सत्संग से ज्ञान प्राप्त हुआ था अतः भगवान् मिले। मतंग ऋषि के सत्संग से शवरी भगवान् की कृपा पात्र हुई थी। उसकी झोपड़ी में भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वयं पहुंच कर जूठे वेर भी खाये थे। रहुगण को जड़भरत से ज्ञान प्राप्त हुआ था जिससे वे राज्य छोड़ जंगल में तपस्या करने चले गये थे। विदुर के उपदेश द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारी को ज्ञान मिला था। दक्ष पुत्रों को नारद से उपदेश मिला था।

अनेक जन्मों का कर्म संस्कार आत्मा में रहता है। जैसे शीतकालीन पौधे शीत के संयोग से और ग्रीष्मकालीन पौधे उष्ण के संयोग से बढ़ते हैं उसी प्रकार सत्पुरुषों के सम्पर्क से पुण्य बढ़ता है, ज्ञान निर्मल बनता है, जो आत्मा के लिए हितकर है, और उसी से मोक्ष मिलता है। यही जन्म जनक भाव से सत्संग को बड़ा कहा गया है। पापात्मा के संग से पाप बढ़ता है जो नरक देने वाला है। इसी से कहा है - “दुष्ट संगं जनि देहु विधाता। मानस सु 45।4।” भाव यह है कि नरक जाने पर तो पाप नाश होता है किन्तु दुष्टों के साथ संगति करने से पाप बढ़ता है। अतः दुष्टसंगति नरक से भी बढ़कर दुःखदायी है। पापियों के संयोग से पुण्य अवरुद्ध और सज्जनों के संयोग से पाप अवरुद्ध रहता है, जैसे शीतकाल में होने वाले पौधे का बीज ग्रीष्म काल में नहीं उगता और ग्रीष्म काल में होने वाले पौधे का बीज शीत ऋतु में नहीं उगता है। पुण्य और पाप में परस्पर वैर भाव है। ये दोनों एक दूसरे को आक्रान्त करना चाहते हैं। यद्यपि वलवान् दुर्बल को आक्रान्त करता है तथापि अन्योन्य सम्पर्क से किसी की हानि अवश्य होती है। अतः पुण्यात्माओं को पापात्मा से बहुत अलग ही रहना चाहिए, नहीं तो पुण्य की हानि होगी।

“खल के संग सदा दुःखदाई। मानस। ।” “खल परिहरिये श्वान की नाई। मानस उ 105।8।” कुत्ते के स्पर्श से जैसे हड्डी तक को स्पर्श दोष लग जाता है उसी प्रकार दुष्टों के संयोग से आत्मा गिर जाती है। अतः दूर ही रहना चाहिए। “काहु सुमति कि खल संगं जामी। मानस उ 111।2।” दुष्टों की संगति से पहले बुद्धि भ्रष्ट होती है। पश्चात् “बुद्धिनाशात्प्रणश्यति। गी . 2।63।” बुद्धि नष्ट होने पर सर्वस्व नष्ट हो जाता है। इसी का फल प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर हो रहा है। अनाचार का साम्राज्य बढ़ा है। मानव का आचरण प्रायः बदल ही गया है। वर्णाश्रम व्यवस्था बदल गयी, रहन सहन, वेष भूषा, छुआछूत, खानपान, सबों में निवृत्ति आ गयी है। नंगा, चोंगा, नील, काकुल का ही भरमार है। “मुक्त कक्षस्तु यो विप्रः धरण्यां पादतश्चरेत्। पदे पदे सुरापानं प्रायश्चित्तं न विद्यते।।” जो गृहस्थ विना पिछुआ खोंसे चलता है उसे एक एक डेग चलने में सुरापान का दोष लगता है जिसका प्रायश्चित्त भी नहीं है। लुंगी चोंगा वाला व्यक्ति नंगा है। “किञ्चिन्नीलं यदा वस्त्रं विप्रत्वेण धारयेत्। अहोरात्रोश्वितो भूत्वा पञ्च गव्येन शुद्ध्यति।।” यदि ब्राह्मण नीला वस्त्र धारण किया हो तो उसे एक दिन और रात उपवास कर पञ्चगव्य पान द्वारा शुद्ध होना चाहिए। त्रिशंकु को नील वस्त्र धारण किये देखकर ही मलेक्ष

कहकर राज्य से निकाल दिया गया था। “मोहाच्छिन्दति ये केचिद्विजातीनां शिखां नरः। चरेयुस्ते दुर्गत्मनः प्रजापत्यं विशुद्धये।” यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानता वश शिखा कटवा दिया हो तो वह प्रजापत्य व्रत करके शुद्ध होवे। कुसंगति द्वारा कुकृतियाँ हुआ करती हैं। अतः कुसंग से वचना चाहिए। सत्संगति द्वारा कल्याण होता है अतः सत्संग ही करना चाहिए।

श्रीमते रामानुजाय नमः

### श्रीस्वामीजी महाराज के शिष्य प्रशिष्य

- 1। श्री भागवताचार्य जी - आप परम विरक्त साधु थे। दक्षिण भारत के काञ्ची में, जो सप्त पुरियों में प्रधान है, एक बहुत बड़ा स्थान बनाकर वहीं पर रहते थे। आजकल उस स्थान में महान्त श्रीवासुदेवाचार्य जी (तरेत) के दो शिष्य रहकर पूर्ववत् परमार्थ किया करते हैं। उत्तर भारत के वैष्णवों को ठहरने का वह स्थान परम आश्रय है।
- 2। श्रीरामकृष्णाचार्य जी - आप एकान्त प्रिय भक्त परम विरक्त थे। जन समुदाय के कोलाहल से दूर रहना ही आपको अच्छा लगता था। गया जिला के मानिकपुर ग्राम (टिकारी थाना) में सुन्दर मन्दिर बनाउसमें भगवान् को पधराकर भगवत्सेवा, भागवत सेवा तथा आचार्यानुसन्धान में रत रहते थे। अब आप वैकुण्ठवास कर गये। अपना स्थान जीविका सहित महान्त श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य जी (तरेत) को दे गये हैं। पूर्ववत्ही वहां परमार्थ चल रहा है।
- 3। श्री स्वामी दाशरथी जी - आप प्राचीन वैष्णवों में से एक अद्वितीय विरक्त थे। मनिआरी ग्राम (अरवल थाना) में स्थान बनाकर श्रीवैष्णवों की सेवा किया करते थे। अन्तिम अवस्था में आप अपनी समस्त भूमि और स्थान श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी महान्त (तरेत) को दे दिये थे। यही विशुद्ध भाव का समर्पण सर्व प्रथम श्री स्वामी जी को प्राप्त हुआ था। आपको इतना आगे बढ़ने में वही शुभ अंकुर था जो अविस्मरणीय है।
- 4। श्री राजीवलोचनाचार्य जी - आप मिथिला निवासी थे। अपनी जन्म भूमि में ही एक ठाकुरवारी बनाकर अपनी सारी सम्पत्ति उसी के अन्तर्गत कर उसका संरक्षण भार पंच कमिटी को दे दिया था। उस भाग में आपके शिष्य गण अधिक पाये जाते हैं। इस समय उस स्थान की दशा शोचनीय है।
- 5। श्री वाजपेयी जी - भक्त प्रवरों में एक श्री संकर्षणाचार्य जी थे जो वाजपेयी जी कहाते थे। आप भगवान् की मूर्ति के श्रृंगार में परम प्रवीण थे। श्रीस्वामी जी महाराज की चरण सेवा में आप बहुत दिनों तक रहे थे। आपके शिष्य कन्नौज में अधिक हैं। वहीं पर आपका परमपद हुआ था।
- 6। श्री मथुरा जी (मधुसूदनाचार्य) आप वाल्यावस्था से ही श्रीस्वामी जी महाराज के साथ रहकर गान विद्या का अभ्यास किया करते थे। गान विद्या में आप निपुण थे। आपका गान नासिक में छत्तीसगढ़ वालों लोगों ने सुना और आप से इतना प्रभावित हुए कि सब आपको छत्तीसगढ़ में ही बुलाकर ले गये। वहीं पर आप रह गये और एक स्थान बनाकर वैष्णव सेवा करने लगे। आपकी प्रतिष्ठा उधर विशेष है। आपके एक सहोदर भ्राता श्री जनार्दनाचार्य जी भी आप ही के साथ रहकर श्री आचार्य चरणों की सेवा करते रहते हैं।
- 7। श्रीरामानुजाचार्य - आप श्री स्वामी जी महाराज के कृपा पात्र विरक्त महात्मा थे। बहुत दिनों तक आप तरेत ही रहकर कैकय किया करते थे। पश्चात् इक्कील ग्राम में एक स्थान बनाकर वहीं रहते हुए भगवत भागवत सेवा करते थे। वहां आम का एक वाग भी आपका लगाया हुआ वर्तमान है जो अभी वहां के हाई स्कूल के अन्तर्गत हो गया है।

आपके शिष्य विस्तराज श्री सूरि जी के नाम से विख्यात हैं। आप भी बड़े परमार्थी हैं। आप का कई एक स्थान बनाया हुआ है। आप आयुर्वेद एवं यन्त्र तन्त्र के विशेषज्ञ हैं। कुछ धन संचय हो जाने पर आप उसे तदीयाराधन में लगा दिया करते हैं।

8। श्री नारायणाचार्य - आप नागपुर जिले में स्थान बनाकर वहीं परमार्थ किया करते थे। आपकी सेवक मण्डली में बड़े बड़े धनाढ्य लोग हैं। श्रीस्वामी जी महाराज को आप अपने यहां बुलाकर बहुत सेवा किये थे।

9। श्री माधवाचार्य - श्री स्वामी जी महाराज के परमभक्त एक श्री माधवाचार्य जी थे। आप तीर्थटन में श्री स्वामी जी के साथ रहकर सेवा कैक्य किया करते थे। आप के एक शिष्य श्री संकर्षणाचार्य जी बूढ़े पुष्कर क्षेत्र के जंगल में ही एक मन्दिर बनाकर वहीं रहते हैं और भगवत भागवत सेवा के साथ भगवान्की सन्निधि में सतत गोघृत का पाँच अखण्ड दीप जलाया करते हैं। आपको उक्त क्षेत्र में जाने के पूर्व जंगली जानवर बाघ आदि से वह क्षेत्र उपद्रवग्रस्त था किन्तु जब से आप वहां अखण्डदीप द्वारा भगवान् की सेवा करने लगे तब से वह उपद्रव विल्कुल ही दूर हो गया। हिंसक जन्तुओं ने हिंसा छोड़ दी। आप के प्रभाव से उस क्षेत्र के लोग अधिक प्रभावित हुए। आपके स्थान में वैष्णवों का ताँता सतत लगा रहता है। आपके शिष्यगण उस क्षेत्र में अधिक रहते हैं।

10। श्री माधवाचार्य जी (उचिटा ग्राम)- श्रीचरणों की एक शाखा श्री माधवाचार्य जी थे। आप उचिटा ग्राम में स्थान बनाकर भगवत भागवत कैक्य किया करते थे। वहां आपका बनाया हुआ एक विशाल एवं परम मनोहर मन्दिर है जिसमें श्रीराम जानकी एवं लक्ष्मण जी की मूर्ति पधरायी हुई है। समीप ही एक विशाल तालाब भी है जिसका चारो घाट पक्का बना हुआ है। आप भगवान् के लिए पर्याप्त जीविका भी अर्जन कर छोड़े हैं। वहीं पर एक संस्कृत पाठशाला संस्कृत की रक्षा के लिए खोली गयी थी किन्तु समाज के दुर्भाग्यवश वह कुछ दिनों के पश्चात् बन्द हो गयी। अपनी जन्मभूमि निरखपुर में भी आपने एक मन्दिर बनवाया है। आपके पुरुषार्थ से पण्डुई आदि ग्रामों में अधिक सुधार हुआ है। आपके शिष्य उस क्षेत्र के परम वैष्णवसेवी और सुशिक्षित हैं। आपके उत्तराधिकारी वर्तमान महान्त श्री देवराजाचार्य भगवत भागवत कैक्यनिष्ठ हैं। आप काशी के नगवाँ महल्ले में शान्ति सदन नाम से एक स्थान बनाकर अचार्य - चरण - कैक्य कर रहे हैं। भूले भटके अनाथ अध्ययनार्थियों का वह स्थान परम आश्रय है जहाँ छात्रों को सभी सुविधायें प्राप्त हैं।

11। महान्त श्रीधराचार्य (वैदरावाद) - श्री स्वामी जी महाराज के शिष्यों में उनके कृपा पात्र एक श्रीधराचार्य जी भी थे। आप बहुत दिनों तक श्री स्वामी जी महाराज के साथ रहकर सेवा किया करते थे। आपको सत्पात्र विरक्त जानकर श्री स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी थी कि तुम वैदरावाद स्थान में रहकर वैष्णव सेवा किया करो। यह स्थान बड़ी नहर के किनारे चारों दिशाओं से आये हुए अतिथि अभ्यागतों के लिए सुविधापूर्ण आश्रयस्थल है। इस दृष्टि से इसका निर्माण किया गया था। पहले इस स्थान में श्री शत्रुघ्न जी नामक एक वैष्णव को रखा गया था अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले कैक्यपरायण थे। रस रसायन के भी वे विशेषज्ञ थे। श्रीधराचार्य जी के पश्चात् आप को यहाँ का अधिकारी बनाया गया। वैदरावाद की वैष्णवता पहले से ही प्रशंसनीय थी और आज भी है जबकि समय में बड़ा परिवर्तन आ गया है।

आप स्वरूपानुरूप परम उदार चित्तवाले थे। अटूट वैष्णव सेवा और परमार्थ यहाँ करने लगे। प्रारम्भ से आज तक वैष्णवगण ही स्थान का व्यय भार सहर्ष वहन कर रहे हैं। आप का लगाया हुआ आम का एक सुन्दर उद्यान भी है जिसका नाम रामवाग है। इसका फल परमार्थ में ही लगता है। आपके परमपद के पश्चात् आपके उत्तराधिकारी परमार्थी श्रीदामोदराचार्य जी हैं। आप स्वतः भगवान्का समाराधन किया करते हैं। वैदरावाद के भक्तों की सहायता



से स्थान की उन्नति उत्तरोत्तर कर रहे हैं। यह स्थान सेवाश्रम के नाम से भी विख्यात है।

12। श्री पंडित दामोदराचार्य - श्री स्वामी जी महाराज की विभूतियों में महमतपुर (पटना) निवासी एक पंडित दामोदर जी भी थे। ये एक भावुक गायक थे। इनकी कथा में सरसता एवं युक्ति की प्रधानता रहती थी। कथाओं में श्री राम कृष्ण की झाँकी सुनकर श्रोतागण विमुग्ध हो जाया करते थे। आपकी वाणी में अलौकिक आकर्षण था। कथा के रोचक उपदेश द्वारा हिंसक वृत्ति वाले भी सम्पूर्ण ग्राम निवासी हिंसा छोड़कर वैष्णव हो जाया करते थे। इस प्रकार बहुतों का कल्याण हुआ है। आपके द्वारा हरिकीर्तन का बहुत प्रचार हुआ। भगवान् के स्वरूप वर्णन में आप अद्वितीय थे इसीलिए आपकी कथा से बड़े बड़े विद्वान् मुग्ध हो जाते थे। व्याख्यान भी अलौकिक ही होता था। स्वयं पद रचना भी करते और गाते थे। आपके शिष्य भागलपुर, मुंगेर, छपरा, मगध आदि विभागों में बहुत से हैं। उन्हीं शिष्यों में एक प्रधान धर्मोपदेशक कीर्तन कला कुशल पंडित श्री यामुनाचार्य जी हैं। आप प्रतिवर्ष श्रीहरिहर क्षेत्र मेले में आकर धर्मोपदेश किया करते हैं। पं. श्री दामोदराचार्य जी श्री स्वामी जी महाराज को हरिहरक्षेत्र के बाड़ा की परमार्थसेवा में सहायता दिया करते थे। आप अल्पवय से ही श्रीचरणों के साथ लगे थे। आपकी धर्मपोषक भगवत्कथा, उपदेश, हरिकीर्तन, व्याख्यानादि बड़े ही भावपूर्ण होते थे। अतः लब्धप्रतिष्ठित पंडित बन गये थे।

13। पं. श्री गदाधराचार्य जी - आप बाल ब्रह्मचारी थे। यथार्थ में फलवती विद्या आप ही को हुई थी। विद्वान् का लक्षण भी आप ही में था। श्री स्वामी जी महाराज आप को काशी पढ़ने के लिए भेजे थे। व्याकरण न्याय अध्ययन के पश्चात् वेदान्त प्रारम्भ किये थे। अकस्मात् अध्यापक का देहावसान हो गया, जिससे आप पढ़ते थे। उसी समय आपके हृदय में भावना जगी कि जब सबों को एकदिन काल कवलित होना ही है तो मनुष्य होने का वास्तविक फल की ही प्राप्ति का प्रयास क्यों न किया जाय ? वस, आचार्य चरण सेवा, भगवत्सेवा कैर्कर्य सम्पादन करने के हेतु से श्री स्वामी जी महाराज के समीप वहाँ से आ गये। श्री स्वामी जी ने उनसे पूछा कि कैसे आना हुआ ? उत्तर मिला, आपकी सन्निधि में रहकर आपकी सेवा करने का विचार है। श्री स्वामी जी महाराज से आज्ञा हुई कि तुम भगवान्की सेवा किया करो। आप साथ में सदा रहकर भगवान् की सेवा किया करते थे। एक बार दक्षिण यात्रा में आप सन्यास लेने का विचार व्यक्त किये थे। श्री स्वामी जी 'सन्यास आश्रम की कठिनता और भगवान्की प्राप्ति का उपाय शरणागति से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है' ऐसा समझा इन्हें कुछ दिनों तक रोक रखा था किन्तु उत्तरोत्तर इनकी उत्सुकता सन्यास की ओर बढ़ती देखकर श्री स्वामी जी महाराज, वृन्दावन श्री रामानुज स्वामी की सन्निधि में वहाँ के विद्वान् कर्मकाण्डियों द्वारा आपको सन्यास दिलवाये। सन्यास ग्रहण के पश्चात् भी कुछ दिनों तक आप श्री स्वामी जी महाराज की सेवा वृत्ति में रहकर अन्त में बदरिकाश्रम जाकर शरीर त्याग किये।

14। श्री सियारामाचार्य जी - आप कन्नौज के रहने वाले थे। गान विद्या के प्रेमी थे। परम सन्तोषी विरक्त महात्मा भगवद्भजन में सदा रत रहते थे। युवावस्था में ही आप वैकुण्ठ पधार गये थे।

15। महान्त श्री वासुदेव ब्रह्मचारी - आप बाल्यावस्था से ही श्री स्वामी जी महाराज के साथ लगे थे। तरेत स्थान में तथा काशी भी कुछ दिनों तक आप संस्कृत अध्ययन किये थे। जब श्री स्वामी जी महाराज दक्षिण की यात्रा में गये थे, जिसमें सात वर्ष का समय लगा था, आप उनका कृपापात्र होने से बाबू रामखेलावन शर्मा (बेसी) आदि सज्जनों की संगति से तरेत स्थान के उत्तराधिकारी बना दिये गये थे। आप भलीभाँति स्थान का उत्तरदायित्व सम्भालते हुए भगवत् भागवत् सेवा, परमार्थ एवं वैष्णवता की वृद्धि किये थे। आपके शिष्य सर्वत्र गया पटना आरा आदि जिलाओं में हैं।

उन शिष्यों में प्रधान एक पं. अनन्ताचार्य जी हैं। ये स्वरूपानुरूप श्री वैष्णव धर्मोत्थान में सतत तत्पर रहते हैं। इनके

द्वारा भलीभांति भाष्यकार की सेवा हो रही है। इस प्रकार उक्त ब्रह्मचारी जी के शिष्यों में श्री वैष्णव धर्म के ज्ञाता स्वरूपानुरूप भगवत भागवत सेवा कैर्कर्यनिष्ठ अधिक लोग पाये जाते हैं। तरेत स्थानीय सम्पत्ति जब पञ्चायती हो गयी थी तब आप का नाम उसमें सेवइत में रखा गया था।

16। महान्त श्री स्वामी लक्ष्मी प्रपन्नाचार्य जी - श्री स्वामी जी महाराज के परम सन्त स्वामी श्री लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य जी हैं। आप का वाल्यकाल एवं विद्यार्थी जीवन मथुरा वृन्दावन में व्यतीत हुआ। अन्यान्य शास्त्रों के ज्ञाता होने के साथ ही साथ आयुर्वेद के आप विशेष मर्मज्ञ हैं। शास्त्राध्ययन के पश्चात् आप तरेत श्री स्वामी जी महाराज की छत्रछाया में रह श्री वैष्णवों के स्वरूपानुरूप सेवा किया करते थे। पार्श्ववर्ती ग्रामों के रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा करने के कारण आपकी ख्याति अधिक बढ़ गयी है। किसी से विना मांगे जो कुछ द्रव्य मिल जाता था उसको श्री स्वामी जी के चरणों पर प्रतिदिन रख दिया करते थे। जब श्री स्वामी जी महाराज स्थान में नहीं रहते तो आप प्राप्त द्रव्यों को चेसी ग्राम वासी बाबू रामखेलावन सिंह जी के समीप रख दिया करते थे। उन रूपयों से वे आपके नाम कुछ भूमि व्यवस्था कर दिया करते थे। सवों की दृष्टि में आप अत्यन्त उदारमना प्रतीत होते थे। इन्हीं से कारणों से आप तरेत स्थान के महान्त बना दिये गये थे किन्तु त्यागशील वृत्ति के कारण स्थान के झमेलों से अलग रहकर सदा श्री चरणों के अनुसन्धान में ही रत रहते थे। जब आपका शरीर शिथिल हो गया तब आप अपने नाम की सारी भूमि और अन्यान्य द्रव्यों के साथ अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पण कर महन्थी का सर्वस्व अधिकार श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी को समर्पण कर अपने स्थान पर उनको विठा दिया और आप स्वयं भगवच्चिन्तन में सतत रत रहते हैं। आप ही ऐसे सदबुद्धिमान यदि साधु समाज में लोग हुआ करें तो विश्वमात्र का मंगल हो सकता है।

17। श्री सीतारामाचार्य जी - आप श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य भक्त थे। इनकी श्यामल मूर्ति में प्रतिदिन द्वादश तिलक लगता था। श्री स्वामी जी महाराज तथा सभी भागवतों को प्रतिदिन दो बार साष्टांग प्रणाम किया करते थे। आवश्यकता से अधिक बोलना आपका अभ्यास नहीं था। नित्य स्तोत्र पाठ, भगवच्चिन्तन तथा अन्यान्य भगवत्भागवत्कैर्कर्य किया करते थे। बोलने में प्रतिवाक्य 'श्रीरामानुज स्वामी की कृपा से' ऐसा बोलने का अभ्यास था। दक्षिण भारत के ताम्रपर्णी नदी के समीप आळवार तिरुनगरी में आप एक स्थान बनाकर श्री वैष्णवों की सेवा आराधना किया करते थे। आप श्री स्वामी जी महाराज की चरण - पादुका को भरत के समान ले जाकर अपने स्थान में पधराये थे और उसकी पूजा सतत किया करते थे। अन्त में आप यह स्थान श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य (वृन्दावन) को दे दिये थे जो आज भी वर्तमान है।

18। महान्त श्री स्वामी वासुदेवाचार्य (तरेत)-श्री स्वामी जी महाराज के शिष्यों में आप सर्व प्रधान हैं। आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ अधिक कहना भी थोड़ा ही है। आप का जीवन चरित्र छप गया है। उसमें आपके जीवन कृत्यों के सभी पहलुओं पर भलीभांति विचार किया गया है जिसके लेखक कविवर श्री राम प्रसाद शर्मा पुण्डरीक जी हैं। अतः आपके जीवन कृत्यों पर अब कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है किन्तु नियम है कि भागवत के सम्बन्ध में कुछ कहने से मुख पवित्र, लिखने से हाथ पवित्र और चिन्तन से अन्तःकरण पवित्र होता है। इसलिए कुछ लिखना अनिवार्य ही है।

श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी (तरेत) कौण्डिन्य गोत्रीय हैं। इस गोत्र के लोग आथर्वणिक होते हैं। वर्तमान युग में भगवान् नारायण धर्म रक्षार्थ व्यासरूप में अवतीर्ण होकर वेद को चार भागों में विभक्त किये हैं - “ऋगथर्व यजुः साम्नाम्.....। भा. 12।6।50।” ऋग् साम यजुः और अथर्व । इन चार भागों में पूर्व के तीन भाग ऋगसाम और यजु का प्रधान विषय ही अथर्व में रखा गया है। अथर्व का ज्ञाता चारों वेदों का ज्ञाता होता है। यही आथर्वणिक है।

“अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्व शिष्याय सुमन्तवे। भा. 12।6।53।” भगवान् वेदव्यास अपना शिष्य सुमन्तु को अथर्वाङ्गिरसीं नामक संहिता पढ़ाये थे। “अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयेत्स्वकाम्। संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शयाय चोक्तवान्। भा. 12।7।1।” अथर्व वेद ज्ञाता सुमन्तु ने अपनी संहिता शिष्य कवन्ध को पढ़ायी थी और कवन्ध उस संहिता को दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामक शिष्यों को पढ़ाये थे। “शौक्लायनिर्वत्सवलिर्मोदोषः पिप्लायनिः। वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु। भा. 12।7।2।” वेददर्श के चार शिष्य थे - शौक्लायनि, वत्सवलि, मोदोष और पिप्लायनि। पथ्य के शिष्य कुमुद, शुनक और जाजलि थे - “कुमुदः शुनको ब्रह्मन्जाजलिश्चाप्यथर्ववित्। वभुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च। अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथा परे। भा. 12।7।3।” शुनक के दो शिष्य थे वभु और सैन्धवायन। इन दोनों ने दो संहिताओं का अध्ययन किया था।

“नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः। एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने। भा. 12।7।4।” नक्षत्रकल्प, शान्ति, कश्यप, आङ्गिरस तथा सैन्धवायन के शिष्य सावर्ण्य आदि आचार्य आथर्वणिक हुए हैं। कौण्डिन्य ऋषि के सम्बन्ध में यह कथानक है कि नैमिषारण्य क्षेत्र में पार्वती का रूप देखकर ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ और उससे वहां का वालू भींगा, जिससे अठ्ठासी हजार एक सौ अठ्ठासी ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये सभी वाल्यखिल्य कहलाये। इन सबों में से कुछ तो सूर्य की उपासना करके सूर्यलोक चले गये। कुछ भारत के पश्चिम भाग में वसे जो आज गारिले ब्राह्मण से विख्यात हैं और कुछ नैमिषारण्य में ही रह गये। इन्हीं सबों में एक कौण्डिन्य भी थे। इनका विवाह वशिष्ठ गोत्रीय सुमन्तु की कन्या से हुआ था। सुमन्तु (आथर्वणिक) की चर्चा ऊपर आ गयी है। कौण्डिन्य की स्त्री भगवद्भक्तिमति थी। इसकी कथा अनन्त व्रत में है। कौण्डिन्य को ही अनन्तशयन भगवान्जिनको पद्मनाभ जनार्दन भी कहते हैं, खोजने पर समुद्र में मिले थे। भगवान् को प्राप्त कर कौण्डिन्य स्त्री के साथ वहीं समुद्र किनारे वस गये। वह भाग (भारत दक्षिणी समुद्र तट) राम राजा के राज्य से आज प्रसिद्ध है। वहीं से कुछ कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मण वीजापुर, भागनगर, पण्डलपुर, सोलापुर में आ वसे हैं। अयोध्या से दक्षिण सह नदी के किनारे भी ये ब्राह्मण सड़पारे के नाम से ख्यात पाये जाते हैं। वहीं सड़ नदी है जहां पर भरत जी जंगल जाते समय विश्राम किये थे - “सड़तीर वसि चले विहाने। शृंगवेरपुर सव नियराने। मानस अयो. 188।1।” इस गोत्र के और भी कई एक मूल हैं। जैसे - इलाहाबाद में कण्टौली ग्रामवासी कण्टौनियाँ कहाते हैं किन्तु कौण्डिन्य गोत्रीय हैं। आरा जिला में सोनभद्र किनारे अन्धारी प्रगना, पटना में वलिया प्रगना और गया के वेलखरा गढ़ कौण्डिन्यों का अड्डा है। ये सभी दक्षिण भारत से ही आये हैं। इसी गोत्र के शृंगी ऋषि भी थे। ये आथर्वणिक थे। सभी वेदों का इन्हें ज्ञान था। अतः दशरथ जी ने अपने पुत्रेष्टि यज्ञ में इनको बुलाया था। शृंगी ऋषि ने भी यही कहा है कि - “इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्। वा. रा. बाल. 15।2।।” राजा भीष्मक के पुरोहित भी आथर्वणिक ही थे - “चक्रुर्सामर्ग्य यजुर्मन्त्रैर्वदध्वा रक्षा द्विजोत्तम। पुरोहितोऽथर्वविद्वैर्जहाव ग्रह शान्त ये। भा. 10।53।12।”

गृह्य सूत्रों में लिखा है कि यदि आथर्वणिक सुयोग्य विद्वान्कोई नहीं मिले तो अभाव में अन्यान्य ब्राह्मण यज्ञ में ब्रह्मा वनाया जा सकता है। ब्रह्मा यज्ञ का निरीक्षक होता है अतः उसको प्रौढ़ विद्वान् सभी वेदों का ज्ञाता होना चाहिए। इस प्रकार के महान्कौण्डिन्य गोत्र को और भी महान्वनाने के लिए इस गोत्र में श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी का अवतार हुआ है। वड़ों का सबकुछ वड़ा ही होता है। महापुरुष का अवतार उच्चकुल वंश, गोत्र में ही हुआ करता है। आप प्रायः युवास्था के होते ही श्री चरणों से जा लगे थे। तब से बराबर साथ रहकर श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में तत्पर रहने लगे। उनसे एकक्षण का वियोग भी आपको असह्य होता था। आचार्य-सेवा आप में भरी हुई है। आचार्याभिमान होने से ही - “आचार्यवान्पुरुषो वेद।।” “आचार्य चरणों में प्रेम करने वाले लोग ही तत्त्वज्ञाता

होते हैं” के अनुकूल आपको सभी शास्त्र करामलकवत् हो गये। आचार्य चरणों में आपका नैसर्गिक प्रेम है जो शास्त्रविहित है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। यस्य ते कथिताह्वर्याः प्रकाशन्ते महात्मनः।।  
तस्मादभक्ति गुरौ कार्या संसार भय भीरुणा। आचार्य प्लाविता तस्य ज्ञानं प्लवइहोच्यते।।  
मन्त्रे तद्देवतायाञ्च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ। त्रिषु भक्ति सदा कार्या साहि प्रथम साधनम्।।  
दण्डवत्प्रणोदभूमौ निर्लज्जो गुरु सन्निधौ। शरीरमर्थ प्राणञ्च सदगुरुभ्यो निवेदयेत्।।  
आचार्यस्य प्रसादेन मम सर्वमभिप्सितम्। प्राप्नुयामिति यस्यास्ति विश्वास स सुखी भवेत्।५।  
विष्णोर्चावतारेषु लोहं भावं करोति यः। यो गुरोर्मानुषं भावमुभौ नरक गामिनौ।६।

ऊपर के श्लोक में देव शब्द से नारायण को जानना चाहिए। 'शुद्धो देवो ह्येको नारायणः।' 'देवदेवो जनार्दनः।' भगवान नारायण में जैसी पराभक्ति हो वैसे ही गुरु में भी होनी चाहिए। जो अर्थ नारायण का है वही गुरु शब्द का भी है। यह महापुरुषों का कहा हुआ है। “गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।” इसीलिए संसार के जन्म-मरण के भय से डरने वालों को गुरु में प्रेम करना चाहिए और गुरु से पारलौकिक ज्ञान प्राप्त कर संसार भय से मुक्त हो जाना चाहिए। “ज्ञानं गृणाति इति गुरुः।” ज्ञानोपदेशक को ही गुरु कहते हैं।

“गु शब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रु शब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकार निरोधत्वादगुरु रित्यभिधीयते।।”  
अज्ञानान्धकार को नाश करने वाला गुरु का दिया हुआ ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है। इसी से गुरु कहे जाते हैं। इसी से गुरु कहे जाते हैं। यही ज्ञान संसार सागर से पार होने के लिए जहाज के समान है। मन्त्र (मूल, चरम, द्वय) में, मन्त्र के अधिष्ठातृ देव नारायण में और मन्त्र प्रदाता आचार्य, इन तीनों में समान ही भक्ति करनी चाहिए। यही सद्गति का प्रथम साधन है। गुरु के समीप जाकर लज्जारहित होकर दण्ड को भूमि पर गिरा देने के तुल्य साष्टांग प्रणाम करे। “उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पदभ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांगमुच्यते।।” तन धन प्राण सभी आचार्य के लिए समझे और समर्पण करे। यह विश्वास रखना चाहिए कि आचार्य की कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। ऐसी भावना करने से शिष्य सुखी रहता है। भगवान की प्रतिमा में धातुबुद्धि रखना, आचार्य में मनुष्य बुद्धि रखना, ये दोनों ही नरक देने वाले हैं। उपर्युक्त आचार्य चरण की सभी निष्ठा आप में प्रत्यक्ष देखने में आती है। इसीलिए -

“गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदान शेषान्, नरपति परिकल्पितं शुल्कमादातु कामः।

श्वसुरमरवन्धं रंगनाथस्य साक्षात्, द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि। गुरु तनियन।।”

गुरुमुख अध्ययन विना ही केवल उनकी कृपावल से सम्पूर्ण वेदों की व्याख्या करने वाले विष्णुचित्त स्वामी के समान ही आप भी सम्पूर्ण शास्त्रों के गूढ़ तत्वों के ज्ञाता होकर उसके प्रचार प्रसार में सतत उद्यत रहते हैं। किसी विषय के व्यावहारिक या पारमार्थिक प्रश्न आने पर उसका सचमुच उत्तर आप देकर प्रश्नकर्ता को संतुष्ट किया करते हैं। शिष्य मण्डलियों में सततसद्विषयों में कालक्षेप किया करते हैं। आपका यही कहना है कि -

“असारे संसारे विषय विषयसंगा कुलधियः, क्षणार्ध क्षेमार्ध पिवत शुक्रगाथातुलसुधाम्।

किमर्थ व्यर्थ भो व्रजत कुपथे कुत्सित कथे, परीक्षित साक्षी यच्छ्रवण गत मुक्तयत्तिकथने।।”

“जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुं वेदहुं वडभागी। मानस अयो. 258।3।” “जे गुरु चरण रेणु शिर धरहीं। ते सव लोक विभव वश करहीं। मानस अयो. 2।3।” गुरु की सेवा से सभी ऋद्धि सिद्धियाँ आपके वशवर्ती हो गयी हैं। जहां रहते हैं वहीं द्रव्यों की वर्षा होती रहती है। इसी से महान्से महान्द्रव्ययज्ञ, ज्ञानयज्ञादि रूप परमार्थ आप से होते रहते हैं। “जिमि सरिता सागर पहि जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं। मानस बाल 293।1।” “तिमि सुख सम्पति विनहीं बुलाये। धर्मशील पढ़ जाहिं सुहाये। मानस 293।2।”



आपके पास आये हुए धन का वास्तविकरूप से सद्व्यय होता है, अतः आपकी अनिच्छया भी धन आते ही रहता है। आचार्य चरण परायणता आपकी अवर्णनीय है। एकवार श्री स्वामी जी महाराज उज्जैन की यात्रा के लिए तरेत से चले। साथ मण्डली भी थी। मिर्जापुर (वनारस के समीप) पहुंचने पर यह ज्ञात हुआ कि वृन्दावन पीठाधीश्वरी तरेत पधार रहे हैं। अतः श्रीस्वामी जी महाराज तरेत लौट आये और आपको आज्ञा दिये कि तुम मण्डली को नासिक ले चलो। उस समय श्रीचरणों का वियोग आपको वैसा ही मालूम हुआ जैसे श्रीरामजी का वियोग दशरथ को - “मीन दीन जनु जल ते काढ़े। मानस अयो. 69।2।” तथापि “आज्ञा सम न सुसाहेव सेवा। मानस अयो. 300।2।” मानकर आप मण्डली के भरण पोषण का सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर लेकर नासिक के लिए आगे बढ़े। भयावह जंगली पहाड़ी मार्ग में भी जहां दिनरात बाघ सिंहादिकों के आक्रमण का भय बना रहता था आप निर्भीक आचार्य कैङ्कर्य मानकर आगे बढ़ते गये। मण्डली नासिक सकुशल पहुंच गयी। श्रीस्वामी जी की इस अनुपस्थिति में दो वर्षों तक निरावलम्ब रहने पर भी आप भलीभांति भगवत् भागवत् कैङ्कर्य करते रहे। अन्यान्य अतिथि अभ्यागत साधुओं की सेवा भी अनवरत चलती थी। जब पुनः श्रीस्वामी जी महाराज तरेत से नासिक आ गये और वहां से आगे उज्जैन चलने की तैयारी होने लगी। किन्तु, आपके भक्तिभाव, भगवान और भागवतों की सेवा सुश्रूषा से प्रसन्न होने के कारण वहां के सेठ साहुकार भक्तगण श्रीस्वामी जी महाराज से आग्रहपूर्वक यह कहने लगे कि श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य जी यहीं छोड़ दिया जाये। ये यहां इस स्थान (श्रीस्वामी जी महाराज का पुराना स्थान) की रक्षा किया करेंगे। भक्तों के आग्रहवश आज्ञा हो गयी कि तुम यहीं रहो। आपका हृदय कमल कुम्हलाया किन्तु 'गुरु आज्ञा गरीयसी' मानकर आप वहां रह गये और वहां का समुचित कैङ्कर्य करने लगे। इसीलिए आप नासिक के स्वामी जी भी कहाते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् मगधवासियों के सौभाग्यवश आप इधर ही आ गये और भाष्यकार के कैङ्कर्य करने लगे। इस समय तक श्रीस्वामी जी महाराज का परमपद हो गया था। आपके कैङ्कर्य से श्रीस्वामी जी महाराज पूर्ण सन्तुष्ट रहते थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि मेरे पीछे यह भाष्यकार का कैङ्कर्य अवश्य रहेगा। इसीलिए अपने उत्तराधिकारी की चिन्ता से मुक्त हो गये थे जैसे भगवान्की सन्निधि में जाने पर मुक्तात्मा भी। “ममसाधम्यमागता ...।” “भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। ब्र. सू.

4।4।21। भगवान के रूपरंग, गुण, भोगवाला हो जाता है। इसी से “ईश्वर नियोगात्सृष्टि स्थिति संहार कर्तुशक्ताः।” भगवान की आज्ञा से वह सृष्टि करने में समर्थ हो जाता है। इसी प्रकार श्रीस्वामी जी महाराज ने भी अपने जीवन में ही अपना वरद हस्त आपके मस्तक पर रखकर मंगलानुशासन करते हुए कहा था कि तुम वैष्णव बनाया करो, यह भाष्यकार का दिव्य कैङ्कर्य है। इस सम्प्रदाय की वृद्धि से लोक कल्याण के साथ साथ भगवान्की प्रसन्नता होती है। एक वैष्णव बनाने से भगवान् को कौस्तुभ मणि की प्राप्ति के समान प्रसन्नता होती है। अपने सामने ही श्रीस्वामी जी महाराज आप से सभी प्रकार के लौकिक पारलौकिक कैङ्कर्य करा कर आपकी क्षमता देख चुके थे।

सभी दिव्य लौकिक गुण आप में विद्यमान हैं। आपके कार्यकलाप से स्पष्ट यही झलकता है कि जिस कार्य को करने के लिए श्रीस्वामी रामानुजाचार्य, श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य और श्रीस्वामी राजेन्द्रसूरि जी महाराज यहां आये वही शेष कार्य को पूरा करने के लिए भगवान ने अपने दिव्य गोष्ठि से आपको यहां भेजा है। इसी से आप से सभी अलौकिक कार्य जन कल्याण के लिए हो रहे हैं। श्रीवैष्णवों में भगवत्भागवत् और आचार्य इन तीनों पर्वों की सेवा प्रधान कैङ्कर्य माना जाता है। नासिक से आने के पश्चात् आप सर्वप्रथम आचार्य कैङ्कर्य तरेत स्थानीय सुधार में लग गये। वहां पूर्व से संस्कृत प्रचारार्थ साधारण पाठशाला थी। उसको आपने 'राजवंशान्शतगुणान्' के समान संस्कृत महाविद्यालय (कालेज) में परिणत कर दिया जिसका पूरा नाम राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय है। इसके साथ साथ

अनेकों जिलाओं में संस्कृत प्रचार के लिए संस्कृत पाठशाला, संस्कृत विद्यालय और संस्कृत महाविद्यालय खोल चुके हैं जिन सबों के द्वारा व्याकरण, न्याय, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र तथा श्रीसाम्प्रदायिक ग्रन्थों की शिक्षा हो रही है।

संस्कृत प्रचार से ब्राह्मणत्व की रक्षा होती है जिससे संस्कृति सुरक्षित रहती है और विश्व का कल्याण होता है। आप से जितना संस्कृत का उद्धार हो सका है कभी ऐसी संभावना नहीं थी। इसके लिए ब्राह्मण मात्र आपके आभारी हैं। प्रतिवर्ष भारत प्रसिद्ध हरिहर क्षेत्र मेला में आपका वाड़ा (जन सेवा केन्द्र) जाता है। उसमें सर्वसामान्य लोगों के साथ साथ सभी सम्प्रदाय के साधु सन्त विरक्तदीन दुखियों को आश्रय दिया जाता है। आठ दिनों तक परमार्थ चलते रहता है। उसमें विशेष रूप से विद्वानों का समागम होता है। सतत् सदुपदेश द्वारा जनकल्याण के कार्य होते रहते हैं। पहले इस कार्य के लिए भू-भाड़ा (कर) देना पड़ता था किन्तु अब पर्याप्त भूमि खरीद ली गयी है। इसमें भी एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई है। श्रीस्वामी जी के समय में जहां पर पांच स्थानों से कैङ्कर्य चलता था वहां आज पचासो स्थानों से कैङ्कर्य चल रहा है। उनके द्वारा श्री भाष्यकार की फहरायी ध्वजा को आपने सभी दिशाओं में चिरस्थायी कर दिया। आपके करकमल में श्रीरेखा है और चरण कमल में वाहन की रेखा है जिसका फल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। वड़ा से वड़ा स्थान, भूमि, द्रव्यादि विना मांगे प्राप्त होते रहते हैं। इस कुल परम्परा में मांगने की प्रथा पूर्व से ही नहीं है। जैसे श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य (वृन्दावन), श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज (तन्त्र) में याचना वृत्ति नहीं की थी। आप में भी वही बात है। एक तो आप पंक्तिपावन हैं -

ये शान्ता दान्ता श्रुतिपूर्ण कर्णाः, जितेन्द्रिय प्राणिवधे निवृत्ताः।

प्रतिग्रहे संकुचिताग्र हस्ताः, ते ब्राह्मणस्तारयितुं समर्थाः।।

हस्ताग्र संकुचित का यही भाव है कि जिसे देने पर भी लेने में संकोच हो वही पंक्तिपावन है। “असन्तुष्टस्य विप्रस्य ब्रह्मतेजो प्रशाम्यति।” असन्तोषी ब्राह्मण का ब्रह्मतेज विनष्ट हो जाता है। आप में विशेष वह व्यक्तित्व है, प्रभा है जिससे भक्तगण अनुप्राणित होकर आपकी आराधना के लिए उद्यत हो जाते हैं। गरीब भक्तों को यज्ञादि की अभिलाषा होने पर आपको वह यज्ञस्थल में बिठा देता है। वस, आपके प्रभाव से उसे किसी वस्तु की कमी नहीं रह जाती, यज्ञ पूरा हो जाता है। उसकी अभिलाषा पूरी होती है। जैसे सूर्य को किसी अन्य से प्रकाश मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, ठीक आपको भी दूसरों से धन सम्पत्ति मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हां, जो भक्त स्वयं किसी प्रकार का आपसे कैङ्कर्य की याचना करता है उसको उचित कैङ्कर्य प्रदान कर उसका मनोरथ पूरा करते हैं। “प्रभुता तजि प्रभु किन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु मम गेहू। मानस अयो. 8।4।”

शिष्य बनाने के पश्चात्गुरु पर यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि शिष्य से किसी प्रकार का अपचार न हो जावे, अतः गुरु सतत् शिष्य मण्डली में घूम घूम कर शिष्यों को औचित्य पालन का सदुपदेश दिया करे। इसी नियम से निर्वाहार्थ आप शिष्य मण्डली में सतत्घूमा करते हैं। जिसके यहां जाते हैं वह अपने को भाग्यवान्मानता है, कृत कृत्य हो जाता है। शिष्यों में उच्चवर्ग के लोग हैं। भूमिहार ब्राह्मण, कान्यकुब्ज, सरयूपारी, महाराष्ट्रीय, गौड़, मैथिल आदि ब्राह्मण सम्पूर्ण भारत में आपके शिष्य हैं। “अर्चयन्तोऽपि गोविन्दं तदीयान्नर्चयन्ति ये। न त विष्णोः प्रसादस्य भाजनाः दाम्भिका जनाः।।” जो भगवान्नारायण को अर्चन करते हुए उनके भक्तों की अर्चना नहीं करता है वह भगवान् का कृपा पात्र नहीं बनता है। “तस्माद्विष्णो प्रसादाय वैष्णवान्परितोषयेत्। प्रसाद सु मुखो विष्णुस्तेवैव स्यान् संशयः।।” भगवान् की प्रसन्नता के लिए भागवतों की सेवा अवश्य करनी चाहिए। “कृते तु दास्य कृत्येषु दासानां कृत्य कृत्यतता। अकृते दास कृत्येषु दास्यमेव न सिद्ध्यति।।” भगवद्भक्तों का कैङ्कर्य करने से ही दास अर्थात्भगवद्भक्त कृतकृत्य होते हैं।

दास्यकृत्य किये विना दास्यता ही नहीं सिद्ध होती है। अतः मानव मात्र का यह परमकर्तव्य है कि भगवद्भक्तों के प्रति श्रद्धाभक्ति अवश्य करे।

### श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य के प्रधानशिष्य वर्ग

**18-1** । श्री विष्वक्सेनाचार्य - आपके शिष्यों में सर्वप्रधान श्री विष्वक्सेनाचार्य जी थे (वेदान्ती जी) थे। इनका जन्म अवाँरी ग्राम (गया जिला) के कौण्डिन्य गोत्र में हुआ था जिस कुल में साधुसेवी जोरी शर्मा थे। साधु सेवा के प्रभाव से ही उनके यहां कढ़ू के फल से चना पैदा हुआ था। वेदान्ती जी सम्प्रति प्राकृत देह और प्राकृतलोक छोड़कर दिव्यदेह धारण कर दिव्यलोक वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण की सेवा में तत्पर हैं। तुलसी में दो पत्र होने की अवस्था से ही जैसे पवित्रता गन्धादि गुण विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार इनमें भी साधु सेवा वृत्ति वाल्यावस्था से ही थी। बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी। रामायण, तुलसीकृत मानस आदि सम्पूर्ण अभ्यस्त था। गानविद्या में भी प्रेम था। एक साधु आपको ठग कर ले निकला था किन्तु दैवातउसके पञ्जे से छूटकर नासिक में श्रीस्वामी जी के द्वारा भगवान् के शरणागत हुए। उन्हें और संस्कृत अध्ययन की इच्छा हुई। साम्प्रदायिक विषय की जानकारी के लिए पंचनदीय पंडित श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री जी के यहां काशी में श्रीभाष्यादि पढ़ने गये किन्तु पहले उन्होंने व्याकरण न्यायादि पढ़ने के लिए कहा। अतः वहां से आकर दक्षिण भारत चले गये। वहां प्रतिवाद भयंकर श्री अनन्ताचार्य जी से अन्यान्य विषयों के साथ साथ प्रधान रूप से वेदान्त का अध्ययन करते सर्वत्र उनके साथ शास्त्रादि पढ़ते घूमने लगे। कुछ दिन आसूरि श्री रामानुजाचार्य जी से भी वेदान्त अध्ययन किये थे। इनके ऊपर भगवान की कृपा थी। अतः कुछ ही दिनों में वेदान्त के प्रौढ़ विद्वान हो गये। दक्षिण भारत में रहजाने के कारण सदा संस्कृत में ही बोलने का अभ्यास हो गया था। कांचीपुरी में श्री भागवताचार्य जी वाला स्थान जो वृन्दावन गोवर्धन पीठाधीश के अधीन था, श्री रंगाचार्य, श्रीगोवर्धन पीठाधीश वृन्दावन ने आपही को दे दिया था जो आज भी वर्तमान है। किन्तु आप उस स्थान के झमेले से अलग ही रहकर वेदान्त का प्रचार - प्रसार रूप श्रीभाष्यकार के कैङ्कर्य में सदा रत रहते थे। समाज - विद्रोहियों के मान मर्दन में आप प्रौढ़ थे।

**18-2** । महान्त श्री वंशीधराचार्य जी - श्री स्वामी जी के विरक्त शिष्यों में आप एक हैं। भोरी में रहकर आप यहां के सांगदर्शन विद्यालय और ठाकुरवारी का संचालन भार अपने ऊपर लिए हुए हैं। भगवत्भागवत् सेवा रूप परमार्थ आप भली भांति कर रहे हैं। आप स्वयं उस क्षेत्र में घूम घूम कर वैष्णव बनाते हैं तथा उन सर्वों को स्वरूपानुरूप ज्ञान प्रदान कर वैष्णव धर्म को बढ़ाकर श्री स्वामी रामानुजाचार्य का कैङ्कर्य कर रहे हैं। नासिक स्थान का संचालनभार आप ही के ऊपर है। यथा समय वहां के चढ़ाव या प्रयाग उज्जैन के चढ़ाव में जाकर परमार्थ कार्य किया करते हैं।

**18-3** । श्री मुरलीधराचार्य - आप विरक्त हैं। गया के मानपुर में संस्कृत विद्यालय का संचालन कैङ्कर्य आप को दिया गया है। सभी प्रकार के कैङ्कर्य में आप अग्रगण्य हैं। शरीर से अधिक परिश्रमी हैं। इसी के बल पर विद्यालय संचालन भार के साथ साथ अन्यान्य अतिथि अभ्यागत साधु सन्तों की सेवा का भार आप ढो रहे हैं। इस स्थान के भार से श्री स्वामी जी निश्चिन्त रहते हैं।

**18-4** । कवि श्री रामप्रसाद शर्मा जी (पुण्डरीक) - श्रीस्वामी जी के जीवनी के लेखक आप ही हैं। आपने गीता के तत्व को सर्वसाधारण जनता में प्रचार की दृष्टि से उसको गीता पंचामृत, हरि गीतिका, आल्हा, विरहा, कुँवर विजयी इत्यादि लयों में परिणत किया है। श्रोताओं को विभिन्न लयों में परिणत गीता अत्यन्त हृदयकारक है। इसका प्रचार

भी बहुत हुआ है।

**18-5।** पं. श्री प्रसिद्ध नारायण शर्मा - श्री स्वामी जी के शिष्य पण्डितों में सर्वप्रधान आप हैं। 'यथा नामस्तथा गुणः' आपका अन्वर्थक है। श्री पं. जटाशंकर झा जी (प्राचार्य राजकीय सं. कालेज पटना) के आप विद्यार्थी थे। न्याय, व्याकरण विषय में सर्वप्रथम होने के कारण आपको पुरस्कार में स्वर्ण पदक मिला है। इन विषयों में शास्त्रार्थ महारथी आपको कहा जा सकता है। राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय (तरेत) के प्राचार्य आप हैं। हृदय से विद्यादान में आप निरत रहते हैं। दुर्भाग्य का विषय यह है ऐसा कोई सुयोग्य विद्यार्थी ही नहीं मिल सका जो आपसे सांगोपांग विद्याध्ययन कर आपका अनुगामी बने। लोभ ही सब को विगाड़ने वाला है। नौकरी के द्वन्द में पड़कर लोग पिछड़ जाते हैं। आप दुनियाँ के अन्यान्य झमेलों से अलग रहकर विद्यादान करते रहते हैं। ईश्वर आपको ऐसी बुद्धि सततप्रदान करते रहें कि आप इसी निष्ठा से समाज-सेवा करते रहें।

**18-6।** पं. श्री रामावतार शर्मा जी - आप बड़े तीव्र बुद्धि के हैं। व्याकरण, साहित्य और न्याय के आचार्य हैं। आप भी उक्त विषयों में पुरस्कार (स्वर्णपदक) प्राप्त किये हैं। विद्यादान में ही आपका समय व्यतीत होता है। आप में दूरदर्शिता अपूर्व है। आप ठोस परिवार के हैं तथापि विद्या प्रेमी होने के कारण से सभी प्रकार के अन्यान्य उलझनों को सहते हुए भी विद्या प्रचार में अपना सम्पूर्ण समय लगाया करते हैं। आप में श्रद्धा है कि "जिस प्रकार का शास्त्राधिकारी मैं हूँ, औरों को भी वैसा ही बनाऊँ।"

**18-7।** श्री ब्रह्मचारी जी - आप परम त्यागी हैं। बनारस के समीप सर्वत्र घूम घूम कर वैष्णव धर्म का प्रचार करते रहते हैं। मानस रामायण के प्रधान पण्डित हैं। कीर्तन रूप में रामायण उत्तम स्वर से गाया करते थे।

**18-8।** वेदान्ती श्री कृष्णाचार्य - पण्डितों में आप हयग्रीव भगवान के विशेष कृपा पात्र हैं। आप में स्मरण वक्तृत्व एवं विषय प्रतिपादन शक्ति अपूर्व है। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य एवं वेदान्त के आचार्य हैं। वेदान्त एवं श्री सम्प्रदाय के उच्च कोटि के सभी ग्रन्थों के अध्ययन की उत्कण्ठा आपकी सदा बनी रहती है किन्तु "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" श्रेयस्कर मार्ग की प्राप्ति में विघ्नों की अधिकता रहती है। संसार अपनी ओर खींचता है किन्तु भगवान की कृपा वचाते आयी है आगे वचावेगी भी। भगवान अपने संकल्प मात्र से ब्रह्मा को सभी वेदों का वक्ता बना दिये थे। इसी प्रकार आपका मनोरथ पूर्ण होगा। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्। गी 4।39।" सांसारिक उलझनों में रहते हुए भी आपसे वैष्णव समाज था ब्राह्मण समाज का उपकार अनवरत होता रहता है। व्याख्यान में किसी विषय को आप युक्तियुक्त ढंग से प्रतिपादन करते हैं जिससे श्रोताओं का आकर्षण विशेष होता है।

**18-9।** पं. श्री धरणीधराचार्य (उच्चीरमा गया) - आप उच्च कोटि के विद्वान् त्यागवृत्ति वाले एकान्त प्रियहैं। अत्यन्त मधुर एवं शान्त स्वाभाव के हैं। विशेष उलझनों से अलग रहकर दक्षिणी गया में आप एक विद्यालय चला रहे हैं। सर्वत्र घूम घूम कर वैष्णव धर्म के प्रचार प्रसार में आप सर्वदा व्यस्त रहते हैं। आपके उपकार से जनसमुदाय कृतकृत्य हो रहा है। उच्चीरमा में आपका देव भारती विद्या मन्दिर नामक विद्यालय है। उससे उस क्षेत्र में संस्कृत का विशेष प्रचार हो रहा है।

**18-10।** पं. श्री धरणीधराचार्य (तरेत) - आप व्याकरण न्याय और वेदान्त के आचार्य हैं। विद्याध्ययन में सतत निरत रहते हैं। सत्सम्प्रदायनिष्ठ स्वरूपानुरूप ज्ञानयुक्त निरपेक्ष भगवत् भागवत् सेवा परायण हैं। आप बड़े ही शान्त वृत्ति के हैं। बहुत दिनों तक सरोती रहकर श्रीराम संस्कृत विद्यालय में आप विद्या प्रदान किये हैं। सम्प्रति आप बनारस छात्रावास में रहकर वेदान्त अध्ययन और उस छात्रावास की व्यवस्था सुधार में लगे हैं।

**18-11।** पं. श्री मनस्वी जी - श्री विष्वक्सेनाचार्य जी के आप शिष्य हैं। आप उत्तम साहित्यिक हैं। वक्तृत्व कला



के आप कलानिधि हैं। वाणी से मधुरता सदा टपकती रहती है। श्रोता व्याख्यान से मुग्ध हो जाते हैं। कुछ दिनों तक आप तरेत विद्यालय में आप विद्या प्रदान करते थे। इस समय आप सरकार द्वारा व्याख्यान में पुरस्कृत होने से मुजफ्फर कालेज में आचार्य पद पर सुशोभित हैं। अवकाश के समय में आप निरपेक्ष भाव से सर्वत्र घूम घूम कर स्वरूपानुरूप वैष्णव धर्म का प्रचार करते हैं।

**18-12।** श्री यामुनाचार्य जी - श्री विष्वक्सेना चार्य जी के द्वितीय शिष्य श्री स्वामी यामुनाचार्य जी हैं। आप परम त्यागी विरक्त भगवत्भागवत्सेवी हैं। कणाद ऋषि के समान भक्तों के घर से कणा कणा संग्रह कर तदीयाराधन किया करते हैं। यद्यपि आप वृद्ध हैं तथापि आपका शारीरिक श्रम देखकर बड़े बड़े युवक भी हतप्रभ हो जाते हैं। हरिहर क्षेत्र मेला के समय प्रायः मेला में इधर से (गंगा के दक्षिण भागे) जाने वाले लोगों को आप कुटिया में अवश्य पधरवाते और स्वागत पूर्वक भोजन कराकर मेला के लिए विदा करते हैं। गंगा के उत्तर किनारे पर ही (पटना के सामने उत्तर) आपकी सेवा कुटिया है। सभी वैष्णवों को आप काकागुरु वावागुरु कहकर स्वागत करते हैं। यथार्थरूप में वैष्णवता आप ही में लक्षित होती है। प्रतीत होता है कि पूर्वाचार्य श्रीस्वामी यामुनाचार्य जी ही दूसरा अवतार ग्रहण कर आपके रूप में विद्यमान हैं।

**18-13।** पं. श्री वेंकटेशाचार्य - व्याकरण शास्त्र में आप उद्भट विद्वान हैं। गन्थ विना देखे ही छात्रों को अध्यापन कराते हैं। शान्तप्रिय एवं मधुरभाषी हैं। सांगदर्शन विद्यालय भोरी में आप विद्या प्रदान कर रहे हैं। “ वें कहते जन पाप को 'कट' तेहि नाशक जान। ईश ताहि को जानिये वेंकटेश भगवान्। ” इस नाम के प्रभाव से अवश्य प्रभावित हैं।

**18-14।** विरक्तराज श्री रामप्रपन्नाचार्य जी - श्री स्वामी जी के शिष्यों में परम त्यागी हैं। श्री स्वामी जी द्वारा संचालित संस्थाओं में जहां कहीं भी किसी प्रकार की कमी हो रही है, वस आप उस कमी को पूरा करने के लिए कटिवद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सतत् आप में यही वृत्ति जागरूक रहती है। सम्पूर्ण समय इसी प्रकार के कैङ्कर्य में व्यतीत होता है। भगवत्भागवत् सेवा में तल्लीन हो जाने पर अपने को भूल जाते हैं। श्री स्वामी जी जिस किसी कैङ्कर्य को करने का आदेश देते हैं तो आप उसे अवश्य पूरा करते हैं। इस समय आप व्रत्मर्षि छात्रावास लक्ष्मी कुण्ड काशी, जिसकी अवस्था सोचनीय है सुधार के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

**18-15।** पं. श्री सूर्यदेवाचार्य - देश काल के ज्ञान में आप अग्रगण्य हैं। स्थिर भाव से तरेत रहकर विद्या प्रदान कर रहे हैं। वैष्णवों के प्रति श्रद्धाभक्ति यथेष्ट रूप में आप में पायी जाती है।

**18-16।** श्री सुदर्शनाचार्य और श्री वालमुकुन्दाचार्य - श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी शिष्यों में प्रधान दो शिष्य श्री स्वामी कुरेश जी और श्री स्वामी दाशरथी जी थे। श्री राम जी के सहायकों में दो हनुमान और अंगद थे। उसी प्रकार श्री स्वामी जी के शिष्यों में दो प्रधान श्री सुदर्शनाचार्य तथा श्री वालमुकुन्दाचार्य हैं। आप दोनों दक्षिण भारत के कांचीपुरी में रहा करते हैं। दोनों में परस्पर का प्रेम ठीक वैसा ही दीख पड़ता है जैसा कि श्री राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न में परस्पर था। इस वैष्णव सम्प्रदाय के उत्तर देशीय महात्माओं में अधिकांश आचार्याभिमान वाले लोगों में ऐसी निष्ठा देखी गयी है कि वे अपने आचार्य के देश में ही रहकर वहीं भगवत्भागवत्सेवारूप कैङ्कर्य द्वारा संतुष्ट रहते हुए अपना शरीर भी वहीं छोड़े हैं।

श्री स्वामी लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य जी भूतपुरी में, श्रीस्वामी जीयर श्रीरंगपुरी में, श्री स्वामी लक्ष्मणाचार्य शास्त्री जी, श्री स्वामी देवराजाचार्य जी, श्री स्वामी मधुसूदना चार्य जी, श्री स्वामी रामकिंकराचार्य जी आदि भूतपुरी में, श्री स्वामी सीताराम जी आलवार तिरुनगरी में, श्री स्वामी भागवताचार्य जी कांचीपुरी में, इस प्रकार अनेकों महानुभाव आचार्याभिमानि लोग दक्षिण भारत के दिव्यदेशों में रह भगवत्भागवत्सेवा करते हुए अपने शरीर त्याग किये हैं। यही निष्ठाभाव

हृदय में रखकर कांचीपुरी में वरदराज भगवान के सम्मुख फाटक पर जय विजय के समान श्री स्वामी वालमुकुन्दाचार्य जी तथा श्री स्वामी सुदर्शनाचार्य जी दोनों मूर्ति निवास करते हुए आचार्य कैङ्कर्य कर रहे हैं। भगवान की श्री वृद्धि में आप दोनों मूर्ति सदा संलग्न रहते हैं। अतिथि अभ्यागतों की सेवा भलीभांति होती है। जहां तहां घूम कर धन संग्रह कर तदीयाराधन (विष्णव भोजन) समय समय पर कराया करते हैं।

श्री परमहंस स्वामी जी की जीवनी का प्रथम भाग संपूर्ण

श्रीमते रामानुजाय नमः



तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -  
स्वामी राजेन्द्र सूरिजी  
महाराज की संक्षिप्त जीवनी

(द्वितीय खण्ड)

स्त्री और मन्त्र

- साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर

रचयिता  
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य  
सरौती स्थानाधीश  
|

संवत् 2062 वि.  
(तृतीय संस्करण)

प्रकाशक : -

श्री पराङ्कुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्  
हुलासगंज (जहानाबाद)

मुद्रक :-

श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य प्रेस  
हुलासगंज (जहानाबाद)

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

प्राप्ति स्थान -

श्री पराङ्कुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्  
हुलासगंज (जहानाबाद)

विषय - सूची

- 1। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्में गुरु शब्द का अर्थ
- 2। सभी अवस्थाओं में नारियों के लिये देवपूजन आवश्यक
- 3। सामान्य धर्म और विशेष धर्म
- 4। नारियों के लिए दीक्षा आवश्यक
- 5। सभी वर्णों एवं नारियों के लिये दीक्षा का विधान
- 6। वैकुण्ठ स्तवः
- 7। लक्ष्मी जी भगवान के दाहिने या बायें
- 8। परगत शरणागति
- 9। भगवान की निर्हेतुक कृपा





श्री स्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी)

श्रीमतेरामानुजाय नमः

### 1। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्में गुरु शब्द का अर्थ

यह प्रसंग तब का है जब श्री स्वामी जी महाराज दूसरी बार दक्षिण यात्रा से लौट चुके थे। पटना जिले के नौवतपुर थाने में जो तरेत स्थान श्री स्वामी जी महाराज का था, वहीं रह रहे थे। स्थान से सटे एक अमरूद का रमणीक वाग था जिसे अजवा के हीरा भगत ने लगाया था। उनके बीच में एक सुन्दर वेदिका थी। प्रायः श्री स्वामी जी महाराज सुबह-शाम कुछ काल तक उसी पर बैठ कर बैठते थे। एक दिन की बात है कि उसी पर श्री स्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) विराजमान थे। एक खजुरी ग्रामवासी पं. मुकुन्द शर्मा जी ने यह प्रश्न किया कि स्त्रियों के विषय में लोग कहा करते हैं कि - पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्- अर्थात् स्त्रियों के लिए एक पति ही गुरु है, तथा पूज्य एवं मान्य है न कि अन्य कोई गुरु या देवता। किन्तु श्रीसम्प्रदाय के आचार्य लोग स्त्रियों को भी मन्त्र देते हैं, इसमें भी वैदिक मन्त्र, इसका हेतु या प्रमाण क्या है? ऐसा सुनकर श्री स्वामी जी महाराज हँसे और बोले कि यह सर्वथा अनभिज्ञों का प्रश्न है। विद्वानों का ऐसा प्रश्न नहीं हो सकता। सद्ग्रन्थों में तो स्त्रियों के लिए यह लिखा है। सुनो मैं सुनाता हूँ - “गुरुरग्निद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।।” द्विजातियों के लिए अग्नि पूज्य हैं, सभी वर्णों के लिए ब्राह्मण पूज्य हैं, स्त्रियों के लिए पति पूज्य हैं अभ्यागत सर्वों का पूज्य होता है।

उक्त श्लोक के “पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्” इस अंश का “स्त्रियों के लिए एक पति ही धर्मगुरु है, वही मन्त्रदाता है, पति सेवा ही स्त्रियों का परमधर्म है अन्य कोई नहीं,” ऐसा अर्थ करके स्त्रियों के लिए लोक प्रचलित पति से अन्य धर्म गुरु, अन्य धर्म का अपनाना अनुचित है ऐसा होता है क्यों? यह प्रश्न है।

इस प्रश्न के समाधान में सर्वप्रथम श्लोक के वास्तविक अर्थ निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है। अर्थ निर्णय में -

“संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गां शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।

सामर्थ्यमौचितो देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः। शब्दार्थस्थानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।।”

संयोग, विप्रयोग, साहचर्य विरोध, अर्थ, प्रकरण लिङ्गादि नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। इन सर्वों के नियन्त्रण विना किया गया अर्थ अनर्थ हो जाता है। गुरु शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है -

“माता पिता तथाऽचार्यो मातुलः श्वशुरस्तथा। गुरवः पञ्च सर्वेषां चतुर्णां श्रुतिचोदिता।।

तेषां मुख्यस्त्रयः प्रोक्ता आचार्यः पितरौ तथा। एषां मुख्यतमस्त्वेकः आचार्यः परमार्थवित्।।”

माता, पिता, आचार्य, माता का भाई, श्वशुर ये सभी गुरु कहलाते हैं और चारों वर्णों के ये सभी गुरु हैं। यह श्रुतिसम्मत है। प्रसंग से अनुकूल अर्थ किया जाता है।

“गुरुरग्निद्विजातीनाम्” इस श्लोक में गुरु शब्द पूज्य बोधक है, क्योंकि पूज्य अर्थ निदर्शन में ही गुरु शब्द का प्रयोग हुआ है। यही अर्थ उपर्युक्त नियमों से नियन्त्रित है। यदि इस स्थल में गुरु शब्द मन्त्र-दाता बोधक मानें तो प्रकरण विरोध होगा क्योंकि अग्नि जड़ वस्तु है, यह ज्ञानदाता मन्त्रदाता कैसे हो सकती है? यदि किसी के आग्रहवश मान भी लें तो जब यह द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए गुरु हुई तो द्विजों से इतर एक शूद्र बचा, केवल इसके लिए गुरु विधान में “वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः” वर्ण शब्दोत्तर बहुवचन अनुपयुक्त होगा। यदि बहुवचन उपयुक्त माना जाये तो सभी वर्णों के लिए ब्राह्मण गुरु, और ब्राह्मणोत्तर द्विजातियों के लिए अग्नि और ब्राह्मण दोनों गुरु हुए। वर्णों के अन्तर्गत स्त्रियाँ भी आ जाती हैं जो पुरुषों की अर्द्धांगिनी हैं तो

इन सबों के लिए अग्नि, ब्राह्मण और पति भी गुरु हुए। अभ्यागत सबों का गुरु होता है। गुरु की संख्या और बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में स्त्रियों के लिए एक पति ही गुरु, यह अर्थ नितान्त असंगत प्रतीत होता है। यदि “पतिरेको गुरुः स्त्रिणाम्” इस अंश में गुरु शब्द मन्त्रदाता गुरुबोधक और अन्य अंशों में पूज्यबोधक माना जाय तो भी साहचर्य विरोध होगा। यह पूर्वापर विरोध हुआ। तीसरा श्रुति स्मृति इतिहासादि से भी विरोध होगा, क्योंकि सर्वत्र स्त्रियों को पति से अन्य धर्मगुरु, अन्य धर्म पालन करने का प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं जिसका दिग्दर्शन आगे कराया जाता है।

2। सभी अवस्थाओं में नारियों के लिये देवपूजन आवश्यक

स्त्रियों की तीन अवस्था होती है - 1। कुमारी, 2। सौभाग्यवती और 3। विधवा। कुमारी-अवस्था में उत्तम पति प्राप्ति के लिए भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। देवाराधन करना चाहिए। इसमें इतिहास और पुराण प्रमाण है। कुमारी अवस्था में पार्वती, सीता, रुक्मिणी, कालिन्दी आदि ने देवाराधन किया है। ये सब उदाहरण मिलते हैं।

विवाहितावस्था में शतरूपा, देवहूति, अदिति, दिति, कयाधु, कुन्ती, धर्मशीला, गान्धारी, मथुरावासिनी, शवरी, कौण्डिन्य की स्त्री, गोपियाँ, मीरा, दिल्ली, तुर्की, ताज, वरिया, रानी रत्नावली, निर्मला, आनन्दीबाई, जनाबाई, सखूबाई, करमैती, कर्मठी, मीरा, गंगा, यमुना, कृष्णा, जगदेवी, हरदेवी, सरस्वती, अंकुरानी, चन्द्रलेखा, नन्दी, शान्ति, यशोदाबाई इत्यादि ने देवाराधन किया है।

यद्यपि स्त्रियों के लिए पतिरूप का ध्यान, उसके नाम का जप, शरीर सेवा आदि का वर्णन आया है, किन्तु यह सामान्य धर्म है। विशेष धर्म देखिए -

“या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितेक्षणमार्जनादौ।

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो धन्या व्रजस्त्रिय उरुकर्मचिन्तयानाः। भा. 10। 44। 15।”

व्रज की गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्ण में चित्त लगा रहने के कारण प्रेम भरे हृदय से आँसुओं के कारण गदगद कण्ठ से वे इनकी लीलाओं का गान करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकों को झूला झुलाते, रोते हुए बालकों को चुप कराते, उन्हें नहाते धुलाते, घरों को झाड़ते बहारते सारे कामों के समय श्रीकृष्ण के ही गुणगान में विभोर रहती हैं। पार्वती ने तपस्या की थी, सीता ने गौरी-पूजन की थी। तुलसीकृत रामायण इनकी साक्षी हैं।

“अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती। विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता।।

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम्। तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः। भा. 10। 58। 20-21।”

कालिन्दी ने अर्जुन से कहा कि हे वीर! मैं सूर्य की कन्या हूँ और शरणागति करने के योग्य वरद विष्णु को पति बनाने की इच्छा से तपस्या करती हूँ। अन्य किसी को मैं पति नहीं बनाऊँगी। षड्गुण सम्पन्न भगवान् मुकुन्द अनार्यों के सम्यक्प्रकार से आश्रय हैं, वे मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे।

“शंखचक्राङ्कणं कुर्यादात्मनो बाहुमूलयोः। कलत्रापत्यभृत्येषु पश्यादिषु चमुक्तयः। मत्स्यपु.।”

मुक्ति के लिए स्त्री, सन्तान, भृत्य, पशु आदि के साथ चक्रांकित होना चाहिये। पुनः भागवत का कथन है -

“पूर्तेष्टदत्तनियम व्रतदेव विप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेः।

आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषमुतादयोऽन्ये। भा. 10। 52। 40।”

रुक्मिणी कहती हैं कि यदि मैंने इष्टापूर्ति (वाग लगाना, कुँआ खोदवाना, तालाव आदि बनवाना) नियम, व्रत, देव, विप्र, गुरु की अर्चनादि तथा भगवान् की भलीभाँति आराधना की है तो हमारा पाणिग्रहण श्रीकृष्ण ही करें, शिशुपाल आदि से मेरा विवाह न हो। यहाँ रुक्मिणी ने स्पष्ट गुरु की अर्चना को कहा है। भगवान् की पूजा भी भगवन्मन्त्रों से करती रही होगी क्योंकि वह पण्डिता थीं तथा मन्त्र भी द्वादशाक्षर ही था।



“तावद्रागादयस्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् । तावन्मोहोऽद्विघ्ननिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः । भा. 10 | 14 | 36 ।”

ब्रह्मा ने कहा है कि हे श्रीकृष्ण ! तभी तक संसार-बन्धन में रहता है, जबतक वह आपका जन नहीं हुआ है । विवाह के पश्चात् पार्वती तथा महादेव दोनों ही वैष्णव होने के कारण कैलास पर्वत के ऊपर तुलसी पुष्प लगाकर उसी से भगवान की पूजा किया करते थे । एक बार विष्णुसहस्रनाम के पाठ करने में पार्वती को विलम्ब हुआ तो महादेव ने कहा - “राम रामेति रामेति रामे रामे मनोरमे । सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने । पद्म पु. उ. 254 | 20 ।” इसी को तुलसीदास जी ने कहा है - “सहस्रनाम सम सुनि शिववानी । जपी जेई पिय संग भवानी । मानस वाल 18 | 3 ।” इन दोनों को वैष्णव रहने के कारण ही भागवत में “वैष्णवानां यथा शम्भुः । भा. 12 | 13 | 16 ।” कहा है ।

इसी प्रकार कश्यप-अदिति तथा मनु-शतरूपा ने साथ-साथ तपस्या की थी । पद्मपुराण की कथा है । तुलसीदास जी ने भी लिखा कि मनु-शतरूपा छः हजार वर्षों तक जल पीकर, सात हजार वर्षों तक हवा पीकर और दस हजार वर्षों तक निर्वात होकर अर्थात् सम्पूर्ण तेईस हजार वर्षों तक एक पाँव पर खड़े होकर भगवान को प्राप्त करने के लिए तप करते रहे । इसलिए इन दोनों को दशरथ और कौशल्या के रूप में होने पर भगवान रामचन्द्र पुत्ररूप से हुए । द्रोणवसु तथा उनकी स्त्री धरा ने भगवान् की आराधना की तो नन्द और यशोदा के रूप में होने पर श्रीकृष्ण पुत्र रूप में हुए - “द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया । भा. 10 | 8 | 48 ।” “जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् । भा. 10 | 8 | 50 ।” उसी तरह वशिष्ठ की आज्ञा पाकर राज्याभिषेक के पूर्व - “सह पत्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागतम् । वा रा अयो 6 | 1 ।” “श्रीमत्यायतनं विष्णोः शिष्ये नरवरात्मजा । वा रा अयो 6 | 4 ।” स्त्री का यह भी धर्म है कि पति के कल्याण तथा योगक्षेम के लिए भी भगवद्भक्ति करे । “कौशल्यादि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता । प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी । वा रा अयो 20 | 14 ।” “मम कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह पकवाना । मानस वाल 200 | 1 ।” कौशल्या जी श्रीरंगनाथ की पूजा नारायण मन्त्र से करती थीं ।

“मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाहम् । भा 3 | 25 | 22 ।” “तत् एते साधवः साध्वी सर्वसङ्गविवर्जिताः । भा 3 | 25 | 24 ।” जो पुरुष या स्त्री अनन्य होकर मेरी भक्ति करते हैं वे सभी बन्धनों से छूटकर मुझे प्राप्त करते हैं । देवहूति ने भी अपने पति कर्दम से कहा कि -

“नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्मपि मृतो हि सः । भा. 3 | 23 | 56 ।”

हे पतिदेव ! जिस शरीर से भगवत्सम्बन्धी धर्म-कर्म अथवा भगवत्पद की सेवा नहीं हुई वह देह जीवितावस्था में भी मृतक के तुल्य है । मैं प्रवल माया के पंजे में पड़ गयी हूँ । उत्तर में कर्दम ने कहा है कि भगवान कृपा कर तुमको मुक्तिका उपाय बतला देंगे और कृपापात्र बनने का उपाय उनकी भक्ति ही है ।

“श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् । भा. 7 | 5 | 23 ।”

इसमें आत्मनिवेदन का ही दूसरा नाम शरणागति है । अनेक स्त्रियों ने पति को छोड़कर इस विशेष धर्म को अपनाया है । क्षत्राणी मीरा आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए गर्भावस्था में पालनीय नियमों में कहा गया है कि -

“धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता । पूजयेत्प्रातराशात् गोविप्राञ्ज श्रियमच्युतम् । भा. 6 | 18 | 52 ।”

प्रातः काल स्नान करके पवित्र वस्त्र धारण कर सौभाग्य चिह्न से विभूषित हो सर्वप्रथम गौ, ब्राह्मण और लक्ष्मी सहित भगवान की पूजा करनी चाहिए । किसी जीव की हिंसा न करे, झूठ न बोले, नख-रोम को दाँत से न काटे, अमंगल वस्तु के स्पर्श से बचे, जल में घुस कर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जन से न बोले, माला न पहने, जूठा न खाये, व्यभिचारिणी रजस्वला से न छुआए, सूप, झाड़ू, केश, चण्डी प्रकृति कलही स्त्रियों से न छुआए । सन्ध्या में माथा न खोले, पाँव धोकर सोवे, मल-मूत्र त्याग के बाद (लघु करने के पश्चात्) पाँव धोवे, कुल्ला करे, डरे नहीं, अपवित्र वस्तु न खाए और चिन्ता-शोक न करे । भगवच्चरित्र सुने या पढ़े । नीच प्रसंग की वार्ता न करे । इन्हीं नियमों के पालन करने के प्रभाव से दिति का गर्भ इन्द्र द्वारा उनचास टुकड़े किये जाने पर भी विनष्ट नहीं हुआ । अतः गर्भवतियों को चाहिए कि उपर्युक्त सभी नियमों का पालन करे ।



इसी प्रकार गर्भवती कयाधु को भी इन्द्र ने मारना चाहा था किन्तु वह भी विशेष नियमानुकूल रहने के कारण ही बच गयी थी। नारद के आश्रम में रहकर उनकी सेवा करती थी और नारद ने ही उसे शरणागति करायी थी।

“ऋषि पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती। अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छा प्रसूतये।।

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः। धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम्।।

तत्तु कालस्यदीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे। ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाऽप्यजहात्स्मृतिः। भा. 7।7।14-16।”

गर्भवती कयाधु ने यथासाध्य नारद की सेवा की और नारद ने तो - “स्त्रीवालानां च मे यथा। भा. 7।7।17” गर्भ समेत कयाधु को भगवत्शरण में रखा था। गर्भ के कल्याण की इच्छा से धर्मतत्त्व, भगवत्परत्व, निर्मल विज्ञान, आत्मस्वरूप, शेषत्व, पारतन्त्र्य आदि उसे सुनाया करते थे। प्रह्लाद लोगों से कहते थे - हे भाईयों! मेरी माँ नारद के उपदेशों को भूल गयी हैं किन्तु मैं नहीं भूलूँगा। वही प्रह्लाद काटने पर भी नहीं मरा। आग में नहीं जला। इसका कारण था गर्भ में ही ज्ञानों का श्रवण करना। गर्भवती जो स्मरण करती है वह गर्भ के लिए स्मारक होता है। मथुरा के ब्राह्मणों के स्त्रियों ने भी भगवान्की पूजा की थी। यही नहीं गर्भवती उत्तरा आदि स्त्रियों ने भी यह कह कर भगवान की शरणागति की थी, जैसे -

उत्तरा - “पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते। भा. 1।8।9।”

देवहूति - “अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुर्महसि। भा. 3।23।51।”

नागभार्या - “तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो, नान्याभवेद्गतिरन्दम तद्विधेहि। भा. 10।23।30।”

पिंगला - “त्यक्ता दुराशा शरणं ब्रजामि। भा. 11।8।39।”

गोपी - गोप - “गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः। भा. 10।25।11।”

पृथ्वी - “प्रणता प्राञ्जलिर्प्राह।”

स्त्री - पुरुष दोनों - “सोऽहं ब्रजामि शरणं ह्यकुतोभयम्।”

ऊपर के उदाहरणों द्वारा यह व्यक्त होता है कि स्त्रियों को या तो पति के साथ ही अथवा अकेले भी शरणागति करने का अधिकार है। अतः उन्हें भगवान की शरणागति अवश्य करनी चाहिए।

विधवा के लिए भी विशेष विधान है। भक्तिमती शवरी को कौन नहीं जानता। श्रीराम जी ने उससे कहा है -

“कह रघुपति सुनु भामिनी वाता। मानउँ एक भक्ति कर नाता। मानस अरण्य 34।2।

सो अतिशय प्रिय भामिनी मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे। मानस अरण्य 35।4।”

मैं तो एक भक्ति का नाता मानता हूँ। हमें तो वही प्रिय है जिसमें भक्ति है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष - “नारि पुरुष सचराचर कोई। मानस अरण्य 35।3।” तुममें तो नवो प्रकार की भक्ति है - “गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान। मानस अरण्य 35।6।” इससे स्पष्ट है कि नारियों के लिए पति के सिवा धर्मगुरु का विधान है - “मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। मानस अरण्य 35।1।” दृढ़ विश्वास पूर्वक मन्त्र का जपना पाँचवीं भक्ति है। इस प्रसंग में स्त्री - शवरी। गुरु - मतंग ऋषि। मन्त्रजाप - भगवत्सम्बन्धी मूल-मन्त्र है। आत्मनिवेदन ही शरणागति है।

इसी तरह - “कच्चित्ते गुरु शुश्रूषा सफला चारुभाषिणी। वा. रा. अरण्य 74।9।” श्रीराम जी शवरी से पूछते हैं कि तुमगुरु सेवा भलीभाँति करती हो न। “शवर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः। वा. रा. बाल 1।58।” मतंग ऋषि ने राम की सेवा के निमित्त शवरी को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया था और उसने गुरु क बदले राम की सेवा की। गुरु के वचनों का पालन करना यही उसकी सेवा थी। इसी कारण विराध ने कहा था - “श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव। वा. रा. बाल 1।57।”

अहिर्बुधन्य संहिता में तो - “श्रियः प्रवृत्त्यै परिपूजनीयौ ह्यभीष्टसिद्धिं कुरुते सुदर्शनः। कन्या च भर्तुः पुरुषो वधूनां लभेच्च विद्याधनधान्ययुक्तम्।।” इस प्रकार सुदर्शन की आराधना बतायी गयी है। स्त्रियों के लिए भगवान्ने स्वयं कहा है - “स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। गी 9।32।” स्त्री वैश्य शूद्रादि भी मेरी भक्ति शरणागति तथा उपासना द्वारा मोक्ष प्राप्त करते

हैं।

### 3। सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म

धर्म के दो विभाग हैं - एक सामान्य तथा दूसर विशेष। विशेष धर्म में स्त्री तथा पुरुष का समानाधिकार है। सच्छास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि सामान्य धर्म को छोड़कर विशेष धर्म में लग जाना चाहिए। श्रेष्ठ पुरुषों ने सामान्यधर्म को त्यागकर भी विशेष धर्म का पालन किया है। उदाहरण में - लक्ष्मण, भरत, प्रह्लाद, गोप, शुकदेव आदि हैं। इनके लिए भगवान् ने स्वयं आदेश भी दिया है। “सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। गी. 18।66।” इसके अनुसार स्त्री पुरुष की बात क्या कही जाय, इसमें तो पशु-पक्षी जीवमात्र का समान अधिकार हुआ। कल्याण भी तो सबों का होना ही है। इस कल्याण के लिए भगवत्शरणागति के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है। श्रुति कहती है - “मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।” “यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।” “नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।”

सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा है - “रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्। वा. रा. अयो. 40।9।” इसी को तुलसीदास जी ने भी कहा है - “तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भौति सनेही। मानस अयो 73।1।” जब वशिष्ठ ने भरतजी को राजा बनने के लिए कहा तो भरत ने उत्तर दिया - “विललाप सभामध्ये जगहें च पुरोहितम्। वा. रा. अयो. 82।10।” राज्यज्वाहज्व रामस्य। वा. रा. अयो. 82।12।” मैं और अयोध्या का राज्य दोनों ही भगवान् के हैं, फिर तो राज्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रह्लाद ने भी पिता के वचन को न मानकर भगवदाश्रय में अपने को लगा दिया था। उनका कहना था - “दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः। खगामृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः। भा. 7।7।54।” अर्थात् स्त्री की बात कौन कहे सभी पशु पक्षी भी भगवत्शरण के अधिकारी हैं। यज्ञपत्नी (मथुरा की ब्राह्मणी) तथा गोपियाँ सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान् को प्राप्त कर ली थीं। यही नहीं शुकदेवजी भी व्यास को प्रत्युत्तर में रोते छोड़ जंगल में चले गये थे।

विवाह में सप्तपदी और वायाँ भाग में बैठने के समय में पति ने स्त्री से प्रतिज्ञा की है कि हम श्रेष्ठ कर्मों में तुमको साथ रखेंगे। भगवत्शरणागति से बढ़कर दूसरा कोई पवित्र कर्म नहीं है। इसलिए पति का परम कर्तव्य है कि स्त्री को भगवत्शरणागति में साथ ले ले। अन्यथा पति की प्रतिज्ञा भंग का दोष लगेगा और स्त्री के आत्मकल्याण में हानि होगी। भारद्वाज संहिता में तो यहाँ तक है - “स्त्रिया सहैव कर्तव्यं ब्राह्मणस्य विधानतः।” विधिपूर्वक ब्राह्मणों की पत्नी के साथ साथ भगवान् की शरणागति करनी चाहिए। इसमें जीवमात्र का समान अधिकार है।

सुदामा की सेवा में सुदामा की सेवा में रुक्मिणी वरावर श्रीकृष्ण के साथ थीं। वह प्रसाद में अपना भाग स्वयं माँगी है। वेद के प्रधान अंग पुरुषसूक्त में कहा है - “यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।” इसका अर्थ इसप्रकार है - ‘यज्ञेन यजनीयेन द्रव्येण (आराधन-योग्य वस्तु आत्मा से) यज्ञं भगवन्तं नारायणम्।’ यहाँ यज्ञ भगवान् विष्णु का नाम है। श्रुति भी कहती है - “यज्ञो वै विष्णुः” “यज्ञो वै पुरुषः” विष्णुसहस्रनाम में “यज्ञ इज्यो महेज्यश्च” “यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा” आया है। अयजन्त किया है। जैसे - तुलसी पुष्प भगवान् को समर्पण करना उनकी पूजा है। उसी प्रकार आराधन योग्य वस्तु आत्मार्पण द्वारा भगवान् की पूजा करता हूँ। यहाँ आत्म-त्याग-रूपी यज्ञ है और ‘ईश्वराय निवेदितुम्’ परमात्मा के निवेदन के लिए यह शरीर और आत्मा है।

“यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। गी. 3।9।” कल्याण साधन के लिए यह निवेदन मर्म स्थान है। इसमें स्त्री को साथ रखना उचित है। विवाह-काल में वर को विष्णु और कन्या को लक्ष्मी कहा गया है। इसका अर्थ है कि उचित समय पर दोनों की एकता है। अतः “यज्ञे होमे च दानादौ भवेयं तव वामतः। यत्र त्वं तत्र चैवाहं पदे पष्ठे ब्रवीम्यहम्।।” यज्ञ होम दान आदि सभी श्रेष्ठ कर्मों में जहाँ-जहाँ आप रहेंगे वहाँ-वहाँ आपके वाम भाग से भी उस कर्म को करूँगी।

इसी प्रकार - “तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं मया सह त्वं यदि कान्त कुर्यात्। वामाङ्गनायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी।।”

हे स्वामिन्! मैं आपके वामभाग में तभी बैठूँगी जब आप तीर्थ व्रत दान यज्ञ वाग तड़ाग के उद्यापनादि पवित्र कर्मों में मुझको साथ रखने की प्रतिज्ञा कर लेंगे और पति - “यदेतद्दहदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।” हे भद्रे ! हमारा तुम्हारा हृदय एक रहे। कभी भी विभिन्न न हो। हम और तुम एक जीव दो देह हों।

“इहार्थे साक्षिणो विष्णुरग्निः सोमो द्विजस्तथा। उभयोः प्रीतिसंभूताः सप्तम्येषा ब्रवीम्यहम्।।” हमारे तुम्हारे प्रेम और प्रतिज्ञा का साक्षी विष्णु अग्नि महादेव ब्राह्मण तथा मण्डप में आवाहित सभी देव अन्यान्यजन हैं। इसलिए दोनों का साथ रहना ठीक है।

पति-पत्नी के बीच एक यह भी रहस्य है कि पति यदि अपने उचित पथ से भ्रष्ट हो तो स्त्री उसे एकान्त में प्रार्थना पूर्वक सिखाकर उचित पथ पर लावे। इसके अनेक उदाहरण हैं। जैसे - पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में मैना ने हिमाचल से कहा है - “पतिहि एकान्त पाय कह मैना। नाथ न मैं मानी मुनि वैना। मानस वाल 70।1।” मन्दोदरी कही है - “कन्त कर्ष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अतिहित चित धरहू। मानस लंका 13।4।” तारा कही है - “मुनि पति आहि मिला सुग्रीवाँ। ते दोउ बन्धु तेज वल सीवाँ। मानस किष्क 6।14।” सुशीला अपने पति सुदामा को समझाकर कृष्ण के समीप भेजी है। श्री जानकी - “वधार्हमपि काकुत्थ कृपया परिपालय। वा. रा. सुन्दर 38।33।” हे भगवन्! यह जयन्त तो मारने योग्य तो अवश्य है किन्तु आपके श्रीचरण में आकर लगा है, इसलिए अपनी कृपा द्वारा इसकी रक्षा अवश्य कीजिए। आप शरणगतवत्सल शरण्य गुणसागर हैं। अतः अपने सुन्दर गुण तथा यश में दोष नहीं लगने दें। इस प्रकार कहकर इन्होंने जयन्त को वचा लिया है। इसीको तुलसीदास जी भी लिखे हैं - “कवहुँक अम्ब अवसर पाय। मेरोइसुधि देहवी कछु करुण कथा चलाय। विनय पत्रिका 41।”

चैतन्यों के कर्म देखकर भगवान् कहते हैं - “तानहं द्विषतः क्रूरांसंसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभान्आसुरीष्वेव योनिषु। गी. 16।19।” ऐसे अधमों को आसुरी योनि में डाल दूँगा। क्षमा नहीं करूँगा। उसी समय महालक्ष्मी भगवान् का चरण पकड़कर जयन्त सदृश पापी को भी क्षमा दान दिलवा देती है। अतः यह सिद्ध होता है कि आवश्यकता पड़ने पर स्त्री पति से औचित्य का पालन करवावे। स्त्री को यह अधिकार है कि पति यदि अनर्थ करता हो (वीड़ी, गांजा, भांग, मद्य, मदिरा, मांसादि का सेवन करता हो) तो उसका निषेध करे और ऐसे पति की बात भी न माने। कहा है - “जिन कृत महामोह मद पाना। तिनके वचन करिए नहीं काना। मानस वाल 114।4।” “मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न खादन्ति वायसाः।” कौआ क्या नहीं खाता है, शरावी क्या नहीं बोलता। अतः इनकी बातों का प्रमाण नहीं मानना चाहिए। रावण की बातों को मन्दोदरी ठुकरा देती है, वह सोच ली थी कि - ‘भयउ कन्त पर विधि विपरीता।’ रावण और वाली अपनी स्त्रियों की सद शिक्षा से अलग रहे, अतः उनका विनाश हुआ। इसी तरह की कथा पुराणों में और भी मिलती है। जैसे - सुमन्त की कन्या अनन्त भगवान् की पूजा अपनी वाल्यावस्था से ही करती थी। वह कन्या कौण्डिन्य ऋषि से व्याही गई। कौण्डिन्य ने क्रोधवश अनन्त सूत्र आग में फेंक दिया। जब उनकी स्त्री ने उनकी स्त्री ने उनको फटकारा तो उनको ग्लानि हुई। फिर तो स्त्री के सदुपदेश से ही उनमें भगवान् की भक्ति हुई और पुनः उनकी आराधना करने लगे। वही अनन्त भगवान् आज भी दक्षिण समुद्र के किनारे पद्मनार्भ जनार्दन के नाम से विख्यात है। वह स्थान मालावार रामराज्य के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की मुद्रा में रम लक्ष्मण जानकी की मूर्ति है। यही अनन्त की कथा आज संसार में अनन्त व्रत के नाम से प्रचलित है। कौण्डिन्य के वंशज आज भी वहाँ बहुत दूर में वसे हैं और वे सब पद्मनार्भ जनार्दन की आराधना करते हैं। यह स्त्री के उपदेश का ही प्रभाव है।

महात्मा तुलसीदास की भी कथा इसी प्रकार की है। उनकी स्त्री नारीरत्न रत्ना ने यह दिव्य उपदेश दिया था

“लाज न लागत आपको दोरे आयो साथ। धिक्धिक्ऐसे प्रेम को कहा कहहु मैं नाथ।।

अस्थि चर्ममय देह मम ता में जैसी प्रीत। तैसी जो श्रीराम महुँ होत न तो भव भीत।।”

यदिस्थिभिर्निमित्त वंशवंश्य स्थूणां त्वचारोमन्यैः पिनद्धम्।

क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णमदुपैति कन्या।

आप हमारे इस कुत्सित शरीर के प्रेम में पड़कर दौड़े हुए ससुराल में भी आ गये। यदि चित्त में परमात्मा से प्रेम करते तो आपका यह मानव जन्म सफल हो जाता। इस धिक्कार का प्रभाव उन पर ऐसा पड़ा कि तुलसी गोस्वामी बन गये। अपनी स्त्री शिक्षा द्वारा उनका भाग्य खुल गया जिससे लोक और परलोक दोनों बना। यह बात सभी जानते हैं। ऐसी स्त्री की बात मानने वालों की भलाई होती है। अनेक उदाहरण इस तरह के मिलेंगे जिसमें स्त्री द्वारा पुरुषों का सुधार लक्षित होता है। पुरुषों के सुधार में स्त्रियों का पूर्ण अधिकार भी है। चण्डी, ताड़का, शूर्पणखा के समान स्त्रियाँ अमान्य हैं यह विचार कर लेना चाहिये। शैव्या, कुन्ती, सीता, गार्गी इत्यादि अतः इन सबों के चरित्रों पर स्त्रियों को विशेष ध्यान देकर उनके आचरण को अपनाना चाहिए।

पतिं प्रयान्तं सुवलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी।

हिमालयं न्यस्त दण्डप्रहर्ष मनस्विनामिव सत्संप्रहारः। भा. 1। 13। 29।”

धृतराष्ट्र के साथ उनकी स्त्री गान्धारी हिमालय में चली गयी और उनकी चिता के समीप ही अपना शरीर भस्म कर दिया, पति पत्नी का सम्बन्ध यहाँ तक है। श्रीरामजी श्रीजानकी जी की अनुपस्थिति में जब यज्ञ करना चाहे तो उनकी स्वर्ण की प्रतिमा बनाकर ही किये। गृहस्थों के लिए यह सुन्दर सदुपदेश है।

#### 4। नारियों के लिए दीक्षा आवश्यक

कल्याण के लिए स्त्रियों का मन्त्र लेना आवश्यक है। यदि पति से ही स्त्री मन्त्र ले तो पति गुरु हुआ, स्त्री गुरु गामिनी होगी? पति से मन्त्र लेने की विधि भी कहीं नहीं है। अतः पति के साथ या उससे पृथक् भी गुरु से मन्त्र ले। पुरुषों का उपनयनादि संस्कार करने वाला आचार्य गुरु कहलाता है। स्त्रियों के सभी संस्कार के बदले में एक विवाह संस्कार ही माना गया है। विवाह कराने वाले आचार्य उसके गुरु कहलाते हैं। ऐसा प्रमाण शास्त्र सम्मत है। “गुरु पञ्च तु सर्वेषाम” पाँच गुरु तो सबके होते हैं। किन्तु प्रधान गुरु सबों में वही है जो संसार चक्र से निवृत्त कराता हो।

मन्त्र दीक्षा पूर्वक जो भगवान से सम्बन्धित नहीं हुआ उसे कल्याण नहीं होता। अतः उपर्युक्त विधि से भगवान से सम्बन्ध कराने वाला आचार्य ही प्रधान गुरु हैं। ऐसे गुरु की योग्यता के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि 'सर्ववेदविदोवापि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। महति कुल जातोऽपि न गुरुः स्यादवैष्णवः।।' ब्राह्मण विद्वान हो कुलीन हो किन्तु अवैष्णव होने पर उसे गुरु होने का अधिकार नहीं है। यह हारीत का कहा हुआ है। शास्त्रों में देवाराधन से श्रेष्ठ भगवदाराधना को बतलाया है। स्त्रियों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि विवाहित या अविवाहित सभी अवस्था में भगवान की पूजा करनी चाहिए। परन्तु पूजा के सम्बन्ध में भी विधान है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत' देवता का स्वरूप धारण कर ही देव पूजन किया जाना चाहिए। अन्यथा 'विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते। गी. 17। 13।' विधिहीन क्रिया तामसी होने से निष्फल या विपरीत फल की होती है। दशरथ जी ने इसी सावधानी की रक्षार्थ आचार्यों को बार बार चेतावनी दी है। 'विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति।' विधिहीन यज्ञ कर्मकर्त्ता का भी नाश करता है। इसलिए स्त्रियों को भी उचित है कि आचार्य से मन्त्र लेकर ही भगवान् की आराधना करे। पूर्व की स्त्रियाँ ऐसा ही किया करती थीं। कौशल्या वैष्णवी थीं, रंगनाथ भगवान की पूजा किया करती थीं। भगवत्शरणागत होने में स्त्री पुरुष की अवस्था का प्रश्न ही नहीं उठता और सभी अवस्थाओं में शरणागति करे। गर्भवास काल से मरण पर्यन्त शरणागति की जा सकती है।

'सर्वाश्रमेषु वसतां सर्वेषु च। न देशकाला नावस्था योगो ह्यमपेक्षते।। भारद्वाज संहिता।'

राजा परीक्षित और प्रह्लाद दोनों माता के गर्भ में रहते हुए ही भगवान की शरणागति किये थे। ध्रुव अनुपवीत पाँच वर्ष की अवस्था में भगवान् की शरण में आये। इसमें देश काल वय का विचार नहीं झलकता है। कपिल ने भागवत में कहा है

“मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाः। मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्त स्वजनबान्धवाः।।



मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च । तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मदगतचेतसः । भा. 3।25।22, 23 ।”

‘त एते साधवः साध्वि सर्वसंगतिवर्जिताः ।’ यहाँ पर पद्मपुराण में लिखा है “अवैष्णवस्य यन्मन्त्रं तत्सर्वं परिवर्जयेत् । पुनश्च विधिना सम्यक्वैष्णवाद्ग्राहयेन्मुनः । प. पु. उ. खण्ड 227।2।” जो पञ्च संस्कार रहित व्यक्ति से मन्त्र ले चुका है उसे पुनः वैष्णव से पञ्च संस्कारपूर्वक मन्त्र लेना चाहिए । “रसलुब्धो यथा भृंगः पुष्पादपुष्पान्तरं व्रजेत् । ज्ञानलुब्धः तथा शिष्यः गुरोः गुरुतरं व्रजेत् । ।” जैसे भौरे को एक फूल पर तृप्ति नहीं होती है तो अन्य फूल पर जाकर रस लेता है उसी प्रकार मूर्ख या असंस्कृत से मन्त्र ले चुका हो तो उसे पुनः ज्ञानी गुरु से मन्त्र लेना चाहिए ।

## 5। सभी वर्णों एवं नारियों के लिए दीक्षा का विधान

“सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तमाः । कर्म संस्कार सिद्धयर्थं जातकर्मादि कारयेत् ।

मन्त्र संस्कारसिद्धयर्थं मन्त्रदीक्षाविधिं तथा । ।” ऊपर के वचनों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि स्त्रियों को मुक्ति की कामना से दीक्षा गुरु करने का अधिकार है । फिर भी इसके पोषक कुछ वचनों को उद्धृत कर दिया जाता है जिसमें किसी को यह भ्रम न रह जाय कि पति के अतिरिक्त दीक्षा गुरु करने का अधिकार स्त्रियों को सचमुच है या नहीं ?

5।1 - उद्वाहसमये स्त्रीणां पुमांश्चैवोपनायने । चक्रादिधारणं प्रोक्तं मन्त्रैः पञ्चायुधन्तथा । पराशर स्मृति 1-5-6 ।

स्त्रियों को विवाह - संस्कार और पुरुषों को उपनयन संस्कार के पूर्व ही सुसंस्कृत भगवद्भक्त दीक्षा गुरु से पञ्चसंस्कार पूर्वक दीक्षित होना चाहिए ।

5।2 - आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् । अङ्कयेच्चक्रशंखाभ्यां प्रतप्ताभ्यां विधानतः । हारीत स्मृति

चारों आश्रमों में रहने वाले स्त्री तथा पुरुषों को तप्त शंख चक्र से विधिपूर्वक अंकित होकर दीक्षित होना चाहिए यह श्रुति की आज्ञा है ।

5।3 - ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेपरे । तस्याधिकारणः सर्वे सत्त्वशीलगुणा यदि । हारीत स्मृति ।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र तथा स्त्री कोई भी हो जिसमें सत्त्व गुण हो, शीलवान हो सब को भगवान्की शरणागति का पूरा अधिकार है ।

5।4 - ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेपरे । तस्याधिकारणः सर्वे मम भक्ता भवन्ति चेत् । पद्म. पु. उ. खंड 223।27।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र और स्त्री कोई भी भगवद्भक्तहोसब को भगवान्की शरणागति का पूरा अधिकार है ।

5।5 - प्राप्ता ये वैष्णवीं दीक्षां वर्णाश्चत्वार आश्रमाः । चातुर्वर्ण्यं स्त्रियश्चैते प्रोक्तास्तत्राधिकारिणः । ।

इस वैष्णवी दीक्षा के अधिकारी चारों वर्णों और आश्रमों के पुरुष तथा स्त्रियाँ सभी हैं ।

5।6 - नारायणाराधनं तत्परा स्त्री कामानवाप्नोति न संशयाऽस्ति । सुदर्शन मीमांसा । इसमें सन्देह नहीं है कि नारायण की

आराधना करने वाली स्त्रियाँ अपने इच्छित समस्त फलों को प्राप्त कर लेती हैं ।

5।7 - विशेषात्कन्यकायास्तु कर्तव्यं मंगलेन च । शाण्डिल्य स्मृति । विशेषरूप से वचन में ही पुरुष या स्त्री को भगवान् का समाश्रित होना चाहिए ।

5।8 - यथार्हं विभूयुः सर्वे पुमांसस्त्री जनोऽपि वा । उत्थाय पूर्वं गृहिणीं सुस्नाता यतमानसा । ।

सुषा दुहितृ पुत्राद्यान्यथार्हं शुचितां नयेत् । स्त्रीणामर्चनीयः स्ववर्णस्यानुरूपतः । हारीत स्मृति ।

स्त्रियों को अपनी वर्ण व्यवस्थानुकूल भगवान्की अर्चना करनी चाहिए ।

5।9 - वसन्ते दीक्षयोद्विप्रं ग्रीष्मे राजन्यमेव च । शरत्समये वैश्यं च हेमन्ते शूद्रमेव च । ।

स्त्रियञ्च वर्षाकाले तु पञ्चरात्रविधानतः । महाभा. शा. प. ।

पाञ्चरात्र शास्त्र की विधि से ब्राह्मणों को वसन्त ऋतु में, क्षत्रियों को ग्रीष्म ऋतु में, वैश्यों को शरद ऋतु में तथा शूद्रों को

हेमन्त ऋतु में और स्त्रियों को वर्षा ऋतु में दीक्षित करें। यही बात सुदर्शन सुरदुम के पृष्ठ 136 में वाक्यान्तर से दुहराई गयी है।

5 | 10 - स्त्रियः शूद्रादयश्चापि बोधय्येर्हिताहितम्। यथार्ह माननीयाश्च नार्हन्त्याचार्यतां क्वचित्। वाराह पु.।

स्त्रियों तथा शूद्रों को भी आत्मकल्याण की बात बताने का पूर्ण अधिकार है। वे यथायोग्य मान्यता भी प्राप्त कर सकते हैं। हाँ, वे आचार्य या आचार्या नहीं हो सकती हैं।

5 | 11 - स्त्रियश्च वार्षिके काले दीक्षयेद्यत्तस्तथा। स्त्रियों को वर्षाकाल में ही दीक्षित करना चाहिये।

5 | 12 - ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतरः। चक्रादिनाड्येदगात्रमात्मीयस्याखिलस्य च।। वैष्णव - आचार्य को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा नारियों को भी चक्राङ्कण पूर्वक दीक्षित करने का अधिकार है।

5 | 13 - स्त्रीणां च पतिपित्रादीननतिक्रम्य सत्तमान्। अनुज्ञया वाप्यन्येभ्यः स्मृतो मन्त्रपरिग्रहः।। स्त्रियों के लिए पति पिता और श्वसुर इनमें से कोई भी आचार्य लक्षण युक्त हो तो उसे दीक्षित करने का अधिकार है। पर इन तीनों के योग्य न होने पर इनकी आज्ञा से आचार्य गुणसम्पन्न दूसरे गुरु से भी दीक्षा उचित है।

5 | 14 - शिष्यपुत्र कलत्राणं भृतानाञ्च गवामपि।। आचार्य को चाहिए कि अपने पुत्र शिष्य स्त्री तथा भृत्यों एवं कुटुम्बों को भी चक्राङ्कित करे।

5 | 15 - अनुज्ञाताः स्त्रियश्चैवमर्चयन्त्यो जगद्गुरुम्।। पति पुत्रादि की आज्ञा से आचार्य से दीक्षित हो जो स्त्री श्रीमन्नारायण की अर्चना करती है वह मोक्ष प्राप्त करती है।

5 | 16 - नारी वा पुरुषो वापि प्रपद्ये शरणं हरिः। स्त्री हो या पुरुष हरि की शरणागति का अधिकार दोनों को बराबर है।

5 | 17 - तृष्णीं प्रायः क्रियाः स्त्रीणां मन्त्रश्रावणबोधने। स्त्रियों को मन्त्रादि पञ्चसंस्कार मूक भाव से करना चाहिए।

5 | 18 - श्रीकृष्णशस्त्राङ्कितहीन गात्रश्मशान तुल्याः पुरुषोथ नारी। दृष्टवानरस्तं नृपतेः सवासाः स्नात्वा समर्चयेद्वरि मंगलाय। नारद पु.। जिस स्त्री या पुरुष का शरीर शंख चक्र से अङ्कित नहीं है श्मशान तुल्य है। इस प्रकार के व्यक्ति को देखकर जब तक स्नान नहीं करता और भगवान की पूजा नहीं कर लेता तब तक पवित्र नहीं होता।

5 | 19 - नारी वा पुरुषो वापि गुरुवन्दनपूर्वकम्। पद्म.पु.। स्त्री या पुरुष गुरु-वन्दना का अधिकार सबों को है।

5 | 20 - स्त्रीणां च सर्ववर्णानां पुरुषो वा तथा विदुः। द्वयेन मन्त्ररत्नेन प्राप्नुयात्परमं पदम्। पद्म.पु.। सभी वर्ण की स्त्री तथा पुरुष दोनों ही द्वय मंत्र का अनुसन्धान कर वैकुण्ठ प्राप्त कर सकते हैं। विप्राणां सततं धार्य स्त्रीणां च शुभदर्शने। ब्राह्मण जाति का स्त्री हो या पुरुष सबों को ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण सतत करना चाहिए।

5 | 21 - स्त्रिया सहैव कर्तव्यं गृहस्थस्य विधानतः। संस्कारं पञ्चक्रं तेन भवेत्सा धर्मचारिणी। शाण्डिल्य स्मृति। स्त्रियों के साथ साथ उनके पति का भी पञ्चसंस्कार होना चाहिए क्योंकि इससे स्त्रियाँ धर्मचारिणी होती हैं।

5 | 22 - सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तमाः। अग्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लाञ्छिताः। पराशरस्मृति उक्त.। सभी आश्रमों में रहनेवाली स्त्रियों को एवं ब्राह्मण को तप्तशंखचक्र से अंकित करना चाहिए।

5 | 23 - कलत्रापत्य भृत्येषु पश्वाविश्व सर्वशः। पद्म.पु.। वैष्णव को चाहिये कि अपनी स्त्री पुत्र भृत्य तथा पशुओं को भी चक्राङ्कित करे।

5 | 24 - स्त्रियाश्च वार्षिके काले दीक्षयेद्यत्तस्तथा। एवं स्त्री सप्रयत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत्। मन्त्रसारे। वर्षाकाल में स्त्रियों को दीक्षा गुरु की शरण में जाकर पञ्चसंस्कार से संस्कृत होना चाहिए।

5 | 25 - वालगोपालवेषश्च स्त्री शूद्रः पूजयेत्सदा। स्त्रियों तथा शूद्रों को वालगोपाल वेषधारी भगवान की अर्चना करनी चाहिए।

5 | 26 - सर्वाश्रमेषु वसतां सर्वेषु वर्णेषु च। स्त्रिया सहैव कर्तव्यं ब्राह्मणस्य विधानतः। सभी आश्रमों तथा सभी वर्णों के लोगों

को चाहिए कि अपनी स्त्री के साथ ही यथासम्भव मन्त्र ग्रहण करें और ब्राह्मण तो अवश्य ऐसा करे।

5 | 27 <sup>१</sup> ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेते । मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि । हारीत । अनन्य भाव से गुरु की शरणागति करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र और उनकी स्त्रियाँ सभी मन्त्र के अधिकारी हैं।

5 | 28 <sup>१</sup> जायायाः भक्तिभ्राया रताया अर्चने हरेः । सम्बन्धिनाञ्च मित्राणां भगवद्धाम सेविनम् । परा. सू. 14 । श्रद्धा भक्तियुक्त भगवान्की पूजा करने वाली स्त्रियों के तथा वैकुण्ठवासी प्राणियों के सम्बन्धियों का भी कल्याण हो जाता है।

5 | 29 <sup>१</sup> स्त्री वा नरो वा तदभक्तो धर्मार्थी मुदृढव्रतः । गृहणीयानियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकम् ।

पुत्रदाराकुटुम्बेषु कदाचित्केनचित्सह । वियोगो नाप्नुयात्किञ्चित्पितृत्वा पुरुषः तथा ।

अनन्य शरणागत स्त्री या पुरुष कोई भी हो उसे पुत्रादि कुटुम्बियों से न तो वियोग होता और न उनकी अधोगति ही होती है। इसलिए स्त्री तथा पुरुष सभी को नित्य क्रिया करके इन नियमों का पालन करना चाहिए।

5 | 30 <sup>१</sup> अथवा नित्यमुक्तानि तानि संगृह्य योषितः । सुस्नाता शुद्धवसना द्विजातिभावितात्मनः । ।

ललाटे

तिलकं दत्वा सर्वालङ्कार भूषिता । योषितो दीपपात्राणि गृहीत्वा प्रोक्तमात्मनः । पा. अ. 15 ।

स्त्रियों को चाहिए कि नित्य क्रिया से निवृत्त हो दैनिक काम में आनेवाली वस्तुओं को एकत्र कर स्नान करे, पवित्र वस्त्र धारण कर तिलक लगावे और पुष्प दीपादि उपचारों से भगवान्की पूजा करे।

5 | 31 <sup>१</sup> त्रिकालभर्चयेन्नित्यं वासुदेव सनातनम् । ध्याननृजपनमस्कृर्वन्कीर्तयन्नामभिः शुभैः । ।

एवं व्रतं समाचारा नारायण परायणा । सापि भर्तारमुदधृत्य प्रयाति परमां गति । । वशि. सू. अ. 5 ।

जो स्त्री तीनों काल में सनातन वासुदेव भगवान का ध्यान, उनके मंत्रों का जाप, नमस्कार तथा उनके नामों का कीर्तन करती है, इस तरह की अनन्य शरण भगवद् व्रत परायण स्त्रियाँ अपने सार्थ साथ अपने पति का भी उद्धार कर देती है।

5 | 32 <sup>१</sup> शंखचक्राङ्कणं कुर्यादात्मनो बाहुमूलयोः । कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिषु विमुक्तये । ।

स पुत्रं पशुं दाराणां ब्राह्मणानां विशेषतः । कुर्यात्तच्चिन्तनं चैव वैष्णवं नाम लक्षणम् । ।

सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात् ।

मुक्ति की कामना वाले पुरुष को चाहिये कि अपने पुत्र स्त्री नौकर एवं पशुओं को भी चक्रांकित करावे। यही नहीं उन सर्वों का नामकरण भी विष्णु भगवान के नामों में से ही करे। विशेषरूप से ब्राह्मणों को तो अपनी पत्नी सहित नित्य भगवान्की अर्चा तथा उनके नामों का चिन्तन करना चाहिए।

5 | 33 <sup>१</sup> विष्णुभक्तिपरान्साधून्दीक्षयेत्तविधिना गुरुः । ब्राह्मणानक्षत्रियान्वैश्यान् सच्छूद्रान सस्त्रियोऽपि वा । ।

अदीक्षितस्य वामोरुः कृतं सर्वमनर्थकम् । पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो नरो मृतः । ।

विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना । विना श्रीवैष्णवं धर्मं कथं भागवते भवेत् । विष्णु यामले ।

आचार्य को चाहिए कि विष्णु भक्ति परायण साधु स्वभाव वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को मोक्ष की कामना से पञ्चसंस्कारपूर्वक दीक्षित करे।

5 | 34 <sup>१</sup> मतङ्गं शवरीञ्चैव पृथुभागवतोत्तमम् । सुशीलां त्रिजटां गौरीं शुभां विद्यावलीं तथा ।

अनुसूयां द्रौपदीञ्च यशोदां देवकीन्तथा । सुभद्राञ्चैव गोपीञ्च शुभां नन्दव्रजे स्थिताः ।

सभ्रातृकाञ्चैव कौशल्यां कन्यामपि च वैष्णवान् ।

मतंग ऋषि, उनकी शिष्या शवरी, सुशीला, त्रिजटा, गौरी, शुभा, विद्यावली, अनुसूया, द्रौपदी, यशोदा, देवकी, सुभद्रा और ब्रजवासी गोपियाँ एवं राजा दशरथ के साथ कौशल्या आदि असंख्य आदर्श नारियों ने गुरु के द्वारा भगवान की शरणागति की थी।

“गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान।

नव महुँ एको जाकहँ होई । नारी पुरुष सचराचर कोई । मानस अरण्य 35 । 3 । ” जिस स्त्री पुरुष में नवधा भक्ति से में एक भी हो वह भगवान्का प्रिय है ।

5 । 35 । दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् । आत्मानञ्च तथा हीनमनुत्पत्ता व्यग्रहयन् । भाग . 10 । 23 । 38 । मथुरा के ब्राह्मणों को एक ओर तो आत्मग्लानि इसलिए है कि उन्हें भगवान की भक्ति नहीं है । दूसरी ओर आत्मगौरव इसलिए है कि उनकी स्त्रियाँ भगवद्भक्ता हैं ।

5 । 36 । धिगजन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिगघ्नतं धिगवहुज्ञताम् । धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे । 39

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः । भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ । भाग . 10 । 23 । 49 ।

यद्यपि मथुरावासी ब्राह्मण यज्ञशील थे किन्तु यज्ञपुरुष अधोक्षज पर उनकी दृढ़ आस्था नहीं थी । जब उन्होंने अपनी स्त्रियों को जाना कि वे अनन्य भगवद् भक्ता हैं, सचमुच वे ही यज्ञपुरुष की अर्चना जानते हैं, तो उन्हें आत्मग्लानि होती है, किन्तु यह कहकर धैर्य वाँधते हैं कि हम धन्य हैं इसलिए कि हम सब की कृष्णभक्ता स्त्रियाँ मिली हैं ।

5 । 36 । नारीणामपि कर्तव्या अहन्यहनि शाश्वतीम् । उत्थाय पश्चिमे यामे भर्तुः पूर्वमतन्दिता ।

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत् । कृत्वाऽथामलं स्नानं धृत्वा शुक्लाम्बरं तथा । ।

आचम्य धारयेद्दूर्ध्वपुण्ड्रं शुभ्रं मृद्वैव तु । अप्त्वा मंत्रं गुरुं यश्चादभिनन्द्य च वैष्णवान् । ।

नमस्कृत्वा जगन्नार्थं कृत्वा च शरणागतिम् । केशवाराधनं कुर्यात्स्त्रियश्च पुरुषम् । ।

नारी मात्र को चाहिये कि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्नान करे और शुभ वस्त्र धारण कर श्वेत मृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर पवित्र हो आचमन करे । इसके बाद यथासाध्य गुरु मंत्र का जप करे । पुनः वैष्णवों को प्रणाम करे फिर भगवान्की शरणागति उनकी विधिवत्पूजा करे ।

5 । 37 । नारायणः पूज्यतमो हि लोके नारायणः सर्वगतः प्रधानः ।

नारायणाराधनतत्परा स्त्री कामानवाप्नोति न संशयोऽत्र । ।

वेदमन्त्रपुराणोक्तैर्मन्त्रमूलेन द्विजः पूजेयुर्दीक्षिता योगाः सच्छूद्रा मूलमन्त्रतः ।

आदौ तु वैष्णवां दीक्षां गृहणीयात्सद्गुरोः पुमान् । ।

सदैकान्कि धर्मस्थादवस्म नातेर्दयानिधे । पौरुषञ्च तथा सूक्तं श्रीसूक्तेन च संयुतम् । ।

एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्री शूद्रेषु तथा शृणु । द्वादशाष्टाक्षरी मन्त्रस्तथा तेषां महात्मनाम् । ।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि स्त्रियों को पति से अन्य मोक्ष की कामना से दीक्षा गुरु करना चाहिये । यही नारी मात्र के लिए प्रशस्त मार्ग है । इसके प्रतिकूल चलनेवाली नरक गामिनी होती है । अतः “पतिरेको गुरु स्त्रीणाम्” का वचन केवल पूज्यत्व के लिए व्यवहृत हुआ है । यहाँ गुरु शब्द का प्रयोग पूज्य अर्थ में है न कि दीक्षागुरु अर्थ में । ऐसा मानना भ्रम और अज्ञानमूलक होगा । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि ऊपर कहे गये शास्त्रीय प्रमाणों को ध्यान में रखकर इस श्लोक का अर्थ करे तभी सच्ची संगति और उचित और उचित अर्थ होगा । अन्यथा अनर्थ होगा ।

प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से इस विचार का प्रसार आवश्यक है, तभी “सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे निरापदाः सन्तु मा कश्चिददुःखं भाग्भवेत् । । ” विश्व का सच्चा कल्याण सम्भव है ।

श्रीस्वामी जी महाराज के इस सारगर्भित उपदेश के बाद पण्डित वालमुकुन्द शर्माजी की आँखें खुल गयीं और उन्होंने हाथ जोड़कर यह कहते हुए कि आज ही श्रीचरणों के प्रसाद दास की अज्ञानता दूर हो गयी । क्षमा याचना की ।

-० इति शुभम् :-

## 6 । वैकुण्ठ स्तवः

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेम नगरे ।



महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम् । 1 ।

हे भगवन्! वह समय कब आयेगा जब प्रकृति मण्डल आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंगहृद सरोवर से परे चित्रविचित्र मणियों से जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यंत रमणीय सर्वोच्च स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मंडप में सहस्र फणयुक्त शेष शय्या पर नित्यमुक्तों से सम्मिलित होकर सुख से बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलों की परिचर्या में करूँगा ।

महासिन्धोः नीरे विगतकलुषो दिव्यगुणको हरे सद्गात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृततनुः ।

भवेयं संश्लाघ्योऽमरनिकर संमानित भवनकदाहं संरुद्धो वरगरुडयाने समचरम् । 2 ।

हे हरे ! कब वह समय आवेगा जब मैं लीलाविभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म प्राकृत वासना रहित दिव्यगुण युक्त होकर आपके द्वितीय दिव्य मंगल विग्रह अमानव भगवान की सन्निधि में दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से अलंकृत होकर नित्यमुक्तों से सम्मानित गरुडयान से आपके चरण सन्निधि में पहुँचूँगा ।

कदा वा प्राविष्टं सुरतरुगणैराविलसितम्पदार्थैर्नित्यैर्धैरमितविभवैः पूरितमशम् ।

सदा शुद्धं शान्तं प्रभुमुपनिषदभिर्विचितम्पुरं तत्पश्येयं तव करुणया दिव्यमजडम् । 3 ।

कब वह शुभ समय आयेगा जब मैं देव वृक्षों से (कल्पवृक्षों से) से सुशोभित नित्य पदार्थों से युक्त निरवधिक निरतिशय वैभवों से परिपूर्ण शुद्ध सत्वमय शांत सर्वसमर्थ पञ्चोपनिषन्मय रचित नित्य चैतन्य दिव्य श्रीमहावैकुण्ठ आपकी कृपा के अवलम्ब से देखूँगा ।

कदा हर्म्य गत्वा सुखमयमहामण्डपमणौ तदा वैतन्यमध्ये सदसि वर पीठेऽब्जशिरसि ।

निषण्णं शेषांके सुरजितगणैकातिनिकटे प्रिया विद्युन्मध्ये घनसदृशमब्जाक्ष सुमुखम् । 4 ।

यथावद्विश्वांग प्रियमुचितमेकं सममलं शुभादयं चास्त्रद्याभरण निजदीप्याविलसितम् ।

प्रपश्यन्श्रीकान्तं सुरनिकासंसेव्यमनिशम्प्रबोधानन्दं त्वां परमनुदधेयं सुरवरम् । 5 ।

हे भगवन्! वह समय कब आयेगा जब मैं आपके निजभवन (वैकुण्ठ) में जाकर आनन्दमय महामणि मण्डप में नित्यमुक्तों की सभा के बीच सहस्रफण मण्डित शेषजी को गोद में सहस्रदल कमल के ऊपर बैठे हुए विद्युत सदृश श्री, भूमि नीला देवियों के मध्य में कमलनयन सुन्दर मुख मण्डल महामेघ सदृश सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले सवके परमप्रिय जग के अधिपति मंगलमय शंख चक्रादि आयुध वस्त्र भूषणों से विभूषित स्वयं प्रकाश से प्रकाशित श्री लक्ष्मीपति आपको देखता हुआ वैकुण्ठ निवासी सभी अमरों से सदा सेव्यमान ज्ञानानन्दमय देवाधिदेव आपका अनुभव करूँगा ।

कदा तस्मिन्दिव्ये वरगुणतरङ्गैश्च वृत्तिभिः भ्रमित्वा संस्तुत्वा कृतकरपुटः सामनिगमम् ।

सुगायन्संमोदे तव गुणगणान्मुक्तसुलभान पदद्वन्द्वं दत्तं परमनुदधेयं शिरसि च । 6 ।

वह सुअवसर कब मिलेगा जब उस दिव्यलोक (श्रीवैकुण्ठ महानगर) में मुक्तों को सुलभ आपके दिव्यगुणों का हम स्मरण करते हुए आनन्द के तरंगों में भ्रमण करते हुए हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए सामवेद गान करते हुए आनन्द सागर में गोता लगाते हुए आनन्दित होंगे और आपका दिया हुआ प्रसाद रूप आपके दोनों चरणकमलों को मैं अपने मस्तक पर धारण करूँगा ।

नुतं यद्वत्साधैर्जगदखिलजं स्वस्तिनिलयममहालक्ष्मीलाल्यं प्रवरसुरसेव्यं वरसुवम् ।

विचित्रं त्वां प्राप्य सकलविधिसम्बन्धसहितं समं जोरं साकं सरसिकमलं कीर्तिधवलम् । 7 ।

हे भगवन्! आपके जिस चरणकमल को ब्रह्मादि देव वारम्बार नमस्कार करते हैं जो सम्पूर्ण जगत को सुखदायी सकल मंगल का स्थान श्रीदेवी से लालित नित्यमुक्तों से सुसेवित सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला नूपुरादि भूषणों से भूषित स्वच्छ कीर्तियुक्त नवीन कमल के समान सर्वसम्बन्ध सहित अतिविचित्र आपके उन दोनों चरणकमलों को अपने मस्तक पर कब धारण करूँगा ।

कदाहं जातस्तेऽनुभवजमहानन्दविभवात्स्वसंकल्पादेशादुरिकृत त्वद्वाह्यमखिलम् ।

करिष्ये तत्प्रीतं मुहूरनुभवाञ्छ्री प्रियसखम्भवेयं प्रीतोऽहं तव परिजनैर्मगल परम् । 8 ।

हे भगवन्! वह सुसमय कब आयेगा जब मैं आपके अनुभव से उत्पन्न महानन्द रूपवैभव से आपके आदेशानुसार सर्वदेश सर्वकाल

सर्वावस्था में आपकी दास्यता को शिर पर धारण कर वारम्बार लक्ष्मी जी के अतिप्रिय आपको प्रसन्न करता हुआ आपके सेवकों के साथ मंगलानुशासन करते हुए प्रसन्न होऊँगा।

न कामये ह्यत्र परत्र भोगे न चालभोगे प्रवणो भवेयम्।

विहाय सर्व हि विरोधिर्वर्ग त्वदासदास्यं सततं भजेयम्। 9।

हे भगवन्! ऐहलौकिक और पारलौकिक स्वर्गादि सुखों की मुझे कामना नहीं है तथा केवल आत्मानुभव कैवल्य सुख में भी हमको प्रेम नहीं है। आपके चरणसेवा के विरोधी वर्ग जितने हैं सबसे अलग होकर सदैव आपके दासों की दास्यता में करता रहूँ यही मेरी प्रार्थना है।

न मे जगन्नाथ विना दयायाः त्वदङ्घ्रि रामानुजपादपङ्कजम्।

त्वयैव दत्तं करुणैकसिन्धो त्वमेवमेनं किल यां कुरुष्व। 10।

हे जगन्नाथ भगवन्! आपकी दया विना आपके चरणकमल स्वरूप जो श्रीस्वामी रामानुजाचार्य थे उनका चरणकमल मुझे नहीं प्राप्त हो सकता था। वह आपही ने कृपा द्वारा मुझे दिया है। हे भगवन्! आपही इस प्रकार आत्मसात्कीजिए।

मुररिपु पदपद्मकारीसूनुशठारि। पदरिपु पदपद्म देशिकोन्द्रो यतीन्द्रः।

यतिपति पदपद्म सौम्यजामात्रयोगी। वरवर पदपद्म मानका देशिकासुः।।

## 7 लक्ष्मी जी को भगवान्से दाहिने या बायें

पटना मण्डलीय देवकुली ग्रामवासी भक्तिसार जी ने श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) से यह प्रश्न किया था कि 'लक्ष्मी जी को भगवान् से कहीं पर दाहिने रहना और कहीं पर बायें रहना देखा जाता है' इसका वास्तविक रहस्य क्या है? उत्तर में श्रीस्वामी जी महाराज जो बतलाये थे नीचे लिखा गया है।

अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान् यद्यपि किसी के अधीन नहीं रहते तथापि अपना भक्तपारवश्यता गुण के कारण भक्तों के अधीन रहते हैं - “अहं भक्तपराधीनः।” भगवान्स्वयं ही यह कहे हैं कि मैं अपने भक्तों के अधीन रहता हूँ। इसी विषय को श्रीस्वामी कुरेश जी इस प्रकार कहे हैं - “अनन्याधीन त्वं तव किल जगुर्वेदिक गिरः। पराधीन त्वान्तु प्रणत परतन्त्रं मनुमे।।” भगवान् को वेदवचन अनन्याधीन अर्थात् किसी के वशीभूत नहीं बतलाया है किन्तु वे अपने प्रणत -भक्तों के परतन्त्र अवश्य हैं। अतः भक्त उनको जैसे रखे वे रहते हैं। यह तो दूसरा ही देशकाल का विषय हुआ।

यद्यपि शास्त्रों में लक्ष्मी जी को भगवान्से बायें और दायें दोनों ओर रहने का प्रमाण मिलता है-

1-“राम वाम दिशि जानकी लषन दाहिने ओर। ध्यान सकल कल्याण कर तुलसी सुरतरु तोर।” 2- “सीता समारोपित वाम भागम्। मानस अयो. मंगलाचरण 3।” 3- “वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके। मानस अयो. मंगलाचरण 1।” 4- “वाम भाग शोभित अनुकूला। आदिशक्ति छवि निधि जगमूला। मानस वा. 147।1।” 5- “जनक वाम दिशि सोह सुनयना। मानस वा. 323।2।” इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि देवता या मनुष्यों की स्त्रियाँ वामांगी हैं। अतः स्त्रियों को पति से वाम भाग में रहना चाहिए। इसीलिए मन्दिरों में देवियों को बायें भी स्थापित देखी जाती हैं।

इसी प्रकार लक्ष्मी जी को भगवान्से दाहिने रहने का बहुत से प्रमाण हैं।

आनन्द संहिता (वैखानस) में 1- “दक्षिणे प्रियमावाहयेत्, वामे राहिणीम्। पृ 19।” 2- परिषद स्थापन प्रकरण में - “दक्षिणे श्रीः वामे हरिणीम्। पृ 57।” 3- भोग विधि में - “दक्षिणे श्रियं देवीं रुक्माभां। पृ 93।” 4- भोगासन में - “दक्षिणे श्रियं देवीम्। पृ 95।” 5- वीरासन में - “दक्षिणे श्रियं देवीं वामे महीं देवीम्। पृ 96।” 6- प्रथमावरण में - “दक्षिणवामयोः श्रीभूसहितो विष्णुः। पृ 103।” 7- अर्चन में - “दक्षिणे सीतां हेमाभाम्। पृ 143।” 8- विमानार्चन में - “दक्षिणे रुक्माभा रुक्मिणी कृष्णस्य। पृ 146।” 9- “श्री देव्या दक्षिणे श्री काम। पृ 239।” 10-

“दक्षिणे श्रियं वामे हरिणीम् । पृ 240 । ” 11- कौतुक आवाहने “दक्षिणे श्रियं वामे हरिणीम् । पृ 262 ” 12- स्थापने “दक्षिणे देवी भारतीं श्वेताभां । पृ 265 । ” 13- विवाहे “दक्षिणे श्रीदेव्या वामे मही देव्याश्चेति । पृ 275 । ” 14- विवाहे जलप्रदान काले “देवस्य दक्षिणवामयोः देव्यो संस्थाप्य । पृ 276 । ” 15- अर्चना में “दक्षिणे श्रीकमलां वामे मेदिनीम् । पृ 298 । ” 16- “दक्षिणे पवित्रीमिन्दिरां लक्ष्मीमच्युतप्रियाम् । पृ 298 । ” 17- “दक्षिणे देवीम् । पृ 367 । ” 18- “तस्य दक्षिणे देवी श्रियम् । पृ 367 । ” 19- “नृसिंहस्य दक्षिणे देवीं श्रिय वाम पादं समाकुञ्च्य । पृ 370 । ” 20- “सीतारामस्य दक्षिणे । पृ 377 । ” 21- “दक्षिणे रुक्मिणी देवीम् । पृ 381 । ” 22- “श्रीभूमिभ्यां सहितं पार्श्वयोः । पृ 385 । ” 23- “वलभद्रस्य दक्षिणे रेवतीम् । पृ 385 । ” 24- “दक्षिणवामयोः स्वाहास्वधाभ्याम् । पृ 479 । ” 25- “दक्षिणवामयोः श्रीभूमिभ्याम् । पृ 503 । ”

26- आदित्य पुराण अ. 5, श्लो. 6- “लक्ष्मीपुरस्तात्पश्चाच्च दक्षिणोत्तरतश्चया । ”

27- श्रीजगन्नाथपूर्वा प्रत्यक्षे विराजमानः- “भद्रायां वामभागे रथचरणयुतम्वत्सरुद्रेन्द्रवन्द्यम् । ”

28- ब्रह्म संहितायाम्- “दक्षे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्वामे सुमित्रासुतः रामस्य । ”

29- धर्मशास्त्रे- “श्राद्धे यज्ञे विवाहे च भार्या तिष्ठति दक्षिणे । ”

30- वाल्मीकिरामायणे - “रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः समुपाश्रिता । सव्येऽपि च महादेवी व्यवसायस्थाग्रतः । उ. का. 109 । 6 । ”

31- भगवान् जहां तीनों देवियाँ (श्रीदेवी, भू देवी, नीला देवी) के साथ रहते हैं वहाँ श्रीदेवी प्रधान और दाहिने रहती हैं । दो देवियों के साथ में श्रीदेवी दाहिने और भू देवी बायें, जहाँ पर भगवान् के साथ एक ही देवी हैं वह श्रीदेवी हैं और दाहिने ही रहती हैं ।

32- वाल्मीकि रामायण में - “यथा सर्वगतः विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम । । ” श्रीरामजी के समान ही सीता भी सर्वव्यापी का ईश्वरी तत्त्व हैं ।

33- भगवान् जगत्-पिता हैं और लक्ष्मी जगन्माता हैं । “मातरं प्रथमं पूज्या पितरस्तदनन्तरम् । ” “पितुर्शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते । ” पिता की अपेक्षा माता का महत्व बड़ा है । अतः पिता की पूजा से माता की पूजा प्रथम करे ।

भगवान् के वाम, सम्मुख और पृष्ठ भाग से साष्टांग प्रणाम न करे, केवल दाहिने भाग से ही करना चाहिए । “अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमन्दिरं । जपहोमनमस्कारान् कुर्यात्केशवालये । ” शरणागति काल में लक्ष्मी के पुरुषकारयुक्त शरणागति करने का विधान है । इसके बिना शरणागति सफल नहीं होती है । लक्ष्मी भगवान् के दाहिने रहेंगी तभी तो साष्टांग प्रणाम करने के समय भगवान् के दाहिने गिरेंगे तो लक्ष्मी दोनों हाथों से शरणागत को उठाकर भगवान् के चरणों में अर्पण कर कहेगी कि “एनं रक्ष जगन्नाथ बहुजन्मापराधिकनम् । ” जैसे जयन्त के लिए कहीं थीं “वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय । वा. रा. सु. काण्ड 38 । 35 । ”

34- सद्ग्रन्थों के प्रबल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध है कि शेष लक्ष्मण जी जीव कोटि में हैं और लक्ष्मी सीताजी जीवकोटि से उत्कृष्ट विलक्षण तथा ईश्वर कोटि में हैं । इसीलिए लक्ष्मी सीता को प्रधान मानकर भगवान् उनको हृदय में रखते हुए अपने दाहिने रखते हैं और इनसे न्यून जीवकोटि में लक्ष्मण (शेष) को रहने के कारण उनको वाम भाग में रखते हैं । शरीर के दोनों भागों में दायें भाग उत्कृष्ट माना जाता है ।

भगवत्पूजन में दो ही पद्धति निर्दिष्ट है - 1 । पाञ्चरात्र शास्त्र “पाञ्चरात्रस्य शास्त्रस्य वक्ता नारायणः स्वयम् । ” 2 । वैखानस (ब्रह्मा द्वारा चलायी हुई पद्धति) । इन दोनों पद्धतियों में परस्पर सांकर्य दोष नहीं आना चाहिए । पाञ्चरात्रोक्तेन मार्गेण पूज्यमाने प्रतिष्ठिते । वैखानसः पूजिते तु प्रतिष्ठां पुनराचरेत् । । अर्थात् पञ्चरात्र शास्त्र की विधि के अनुसार प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा वैखानस पद्धति से नहीं होनी चाहिए । यदि ऐसा किया गया तो पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है । इसी प्रकार वैखानस विधि से प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा पाञ्चरात्र शास्त्र की विधि से नहीं होनी चाहिए । ऐसा करना ही संकर दोष कहलाता है ।

पाञ्चरात्र विधान उत्तम है और वैखानस मध्यम । पाञ्चरात्र संहिता में “दक्षिणे च महालक्ष्मीस्तस्य पार्श्वे द्वयेऽपि च । ”

भगवान् के दाहिने महालक्ष्मी हैं और दोनों पार्श्व (बगल) में भूदेवी और नीला देवी हैं ।

35- “वामाङ्कस्था भूदेवी तस्य देव स्वरूपिणी । दक्षिणे तस्य श्रीश्चैव सदृशी गुणभूषिता । । ”

- 36-** ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण खण्ड के अ. 6 - “कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया । पुरतो देवता सर्था पार्वती चैव नारद ।”
- 37-** आश्वलायन गृह्यसूत्र में मनुष्यों के लिए भी “आत्मनो दक्षिणे पार्श्वे वधूनामुपवेश्य च ।” विवाह प्रकरण में वधू को दाहिने रखने का विधान है ।
- 38-** प्रतिष्ठा पद्धति में भी “ॐ श्रियै नमः इति दक्षिणे श्रियम्वामे भूमिम्पुरतो नीलाम् ।”
- 39-** धर्मशास्त्रे “सीमन्ते च विवाहे च तथा चातुर्थ्य कर्मणि । मखे दाने व्रते होमे पत्नी दक्षिणतो भवेत् । । सर्वेषु शुभकार्येषु पत्नी दक्षिणतो शुभाः । अभिषेके विप्रपादप्रक्षालने चैव वामतः । ।” सीमान्तसंस्कार, विवाह, चतुर्थी कर्म, यज्ञ-व्रत और होम इन कार्यों में पत्नी पतिदेव से दाहिने रहती है और अभिषेक (आशीर्वाद ग्रहण) में, ब्राह्मणों का पाँव धोने में वाम भाग में ।
- 40-** बृद्धहारीत स्मृति में “चिन्तये दक्षिणे पार्श्वे लक्ष्मी कांचनसन्निभाम् ।” पूजन काल में लक्ष्मी को भगवान से दाहिने रखने का विधान है ।
- 41-** सामान्य शास्त्र, सामान्य धर्म और सामान्य कर्म की अपेक्ष विशेष शास्त्र, धर्म और कर्म बलवान होता है । इस नियमानुसार लक्ष्मी को भगवान् के वाम भाग में रखने का प्रमाण जो कुछ शास्त्रों में आया है वह शास्त्र सामान्य शास्त्र है और उसकी मान्यता नहीं है । विशेष शास्त्रों में अधिक प्रमाण लक्ष्मी को दाहिने रहने ही का है । विशेष शास्त्र की ही मान्यता है ।
- 42-** हारीत संहिता “वरदं पुण्डरीकाक्षं वामाङ्कस्थं श्रियं हरिम् । श्लो. 136 ।
- 43-** ब्रह्म संहिता संस्कार विधि प्रकरण में “एवं सम्पूज्य देवेशं श्रीदेवी दक्षिणे यजेत् । भूदेवी वामतः पूज्या लीला चाग्रे समर्चयेत् । ।”
- 44-** “दक्षे भूमिसुता परस्तु हनुमान्वामे सुमित्रासुतः ।”
- 45-** व्याघ्रपातस्मृति में “कन्या दाने विवाहे च प्रतिष्ठा यज्ञकर्मणि । सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्मृता । ।”
- 46-** “दक्षिणे वसति पत्नी हवने देवतार्चने । ज्ञातकर्मादिकर्माणां कर्मकर्तृश्च दक्षिणे । । श्राद्धे पत्नी च वामांगे पादप्रक्षालने तथा । नान्दी श्राद्धे च सीमे च मधुपर्कं च दक्षिणे । ।” कन्या दान, विवाह, देवप्रतिष्ठा, यज्ञ, होम, देवपूजन, जातकर्म, नान्दीश्राद्ध, सोमपान और मधुपर्क में स्त्री को कर्त्ता से दाहिने और श्राद्ध, पादप्रक्षालन में बायें रहनी चाहिए । यह शास्त्रीय उत्तर सुनकर भक्तिसार जी तथा अन्य श्रीवैष्णव लोग बड़े प्रसन्न हुए ।

## 8 । परगत शरणागति

एक बार श्रीस्वामी जी महाराज वैदरावाद (अरवल गया) की ठाकुरवाड़ी में पधारे हुए थे । वहाँ के श्री वैष्णवों को भगवान् एवं भागवतों में अपार श्रद्धा प्रेम था । श्री गरुडध्वज जी और कमलनयन जी श्रीस्वामी जी महाराज की चरण सेवा कर रहे थे । श्रीमुख से श्रीवैष्णव सदुपदेश हो रहा था । अवसर पाकर श्रीगरुडध्वज जी श्रीस्वामी जी महाराज से प्रेमपूर्वक बोले महाराज ! भगवत्कृपा का लक्षण क्या है ? श्रीस्वामी जी महाराज से उत्तर मिला “जब द्रवहिं दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये । विनय प. 136 । 10 ।” “विनु हरि कृपा मिलहिं नहीं सन्ता । मानस सु. 6 । 2 ।” “सत्संगति संसृति कर अन्ता । मानस उ. 44 । 3 ।” यदि सज्जनों से संगति हो तो भगवान्की कृपा का उदय समझना चाहिए ।

अजामिल दुर्भाग्यवश पापी हुआ था । एक बार उसके द्वार पर कुछ साधु आकर टिक गये थे । उन्हीं साधुओं की संगति से अजामिल की स्त्री ने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा जो अजामिल की मुक्ति का कारण हुआ । वाल्मीकि सन्तों की संगति एवं सदुपदेश से ही महर्षि बन गये । भगवान्की कृपा से ही नारद को साधुओं का सम्पर्क हुआ था । जिससे वे भी भगवद्भक्त बने । “सो जानव सत्संग प्रभाऊ । लोकहुं वेद न आन उपाऊ । मानस बा. 2 । 3 ।”

इसी प्रकार “सत्संगेन हि दैतेया जातुधाना खगा भृगा । भा. 7 । 7 । 54 ।” प्रह्लाद ने दैत्यपुत्रों से कहा है कि सत्संग द्वारा पशुपक्षियों का भी संसारबन्धन छूटता है । ज्ञानी मनुष्यों के लिए तो कहना ही क्या है । भगवान्की कृपा से भागवत मिलते हैं, भागवत की कृपा से आचार्य और आचार्य की कृपा से भगवान्प्राप्त होते हैं अर्थात्संसार से निवृत्ति हो जाती है । यही भगवान्की कृपा का लक्षण और फल है ।



## 9। भगवान्की निर्हेतुक कृपा

श्री कुरेश स्वामी जी का कहा हुआ है - “वंशंघोरनुजिघृक्षुरिहावतीर्णो दिव्यैर्वर्षिथ तथाऽत्र भवद्गुणौघैः। अतिमानुष 30।” भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने जब अवतार लेना चाहा तो अवतार के पूर्व कल्याणादि दिव्य गुणों की वर्षा द्वारा अयोध्या को दिव्य ज्ञानमय बना दिया था जिससे वहाँ के तृण वृक्षादि भी श्रीरामजी के नियोग काल में मुरझा गये थे - “वृक्षा श्वतान्तिमलभन्त भवद्वियोगे। अतिमानुष 30।” वृक्षादि ने सब दिव्यज्ञान की वर्षा के लिए भगवान् को प्रेरित नहीं किया था किन्तु उनकी निर्हेतुकी कृपा हो गयी जिससे सबों में दुःख सुख में दुःखी सुखी होने का ज्ञान हो गया था। “सरिता सर गिरि औ घट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर वाटा। मानस अरण्य 6।2।” “सब तरु फरै राम हित लागी। ऋतु अनऋतु काल गति त्यागी। मानस लंका 4।3।”

शुकदेव जी की छाया पड़ने से सभी वृक्ष ज्ञानी हो गये थे। उन सबों की जड़ता दूर हो गयी थी। इसीलिए जब व्यास शुकदेव को खोजते हुए जंगल में पहुँचे तो - “यत्त्वत्प्रियं तदिहं पुण्यमपुण्यमन्यत्।” ज्ञानमय सभी वृक्षों ने उनको स्पष्ट उत्तर दिया। भगवान्की निर्हेतुकी कृपा द्वारा वृक्षादिकों की अनिच्छा भी शुकदेव संत मिल गये। प्रकृति का स्वभाव अधोगामिनी है। चेतन भगवान्को नहीं चाहता है किन्तु भगवान्अपनी कृपा द्वारा चेतनों को अपनाते हैं। यही उनका स्वभाव है जो कभी छूटता नहीं है।

भगवान्की कृपा नीचे से डोरी द्वारा जल निकालने की भाँति अधोगत चेतनों को ऊपर लाकर उनकी शरण में लगाती है। इसी से कहा है - “हरिर्दयामहेतुकीम्।” भगवत्प्राप्ति के हेतु या साधन अनेक हैं - कर्म ज्ञान भक्ति आदि। कर्म के दो भेद हैं। एक पुण्यजनक शुभ कर्म और दूसरा पाप जनक अशुभ कर्म। पुण्य का फल स्मृतियों में स्वर्ग एवं पाप का फल नरक कहा गया है किन्तु ये सभी भगवान्की इच्छा पर ही निर्भर हैं। पुण्य और पाप का यह भी लक्षण है - “भगवान्का प्रिय पुण्य और अप्रिय पाप है।”

पूतना का पाप भगवान्को विष पिलाना, शिशुपाल का पाप भगवान्को गाली देना था, किन्तु सबके निमित्त भगवान्ही थे, अतः “मनिमित्तं कृतं पापं तद्धर्मय च कल्पते।” इस नियम के अनुकूल उन पापियों को भी मोक्ष मिला। ऐसा क्यों न हो, “तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः .....। ब. सू. 2।3।29।” भगवान्में निर्हेतुकी कृपा करने का गुण ही सार है। यदि सहेतुकी कृपा मानें तो विरोध पड़ेगा क्योंकि “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गी. 2।47।” भगवान्कहते हैं कि कर्म करने का ही मनुष्यों को अधिकार है फल चाहने का नहीं। अर्थात्कर्म का फल देना या नहीं देना, कम देना, अधिक देना, पूर्व संचित कर्मों का फल नहीं भोगना इत्यादि सब मेरी इच्छा पर निर्भर है। इसमें प्राणियों का कोई अधिकार नहीं है। कर्मों का फल अनन्त है।

“यद्वत्सकल्प नियुतानि भवाप्यनाशं, तत्किल्बिषं सृजति जगद्धेतुरिह क्षणार्द्धे।

एवं सदा सफल जन्मसु सापराधम्।।”

अर्द्धक्षण में किया हुआ कर्म का फल व्रत्सा के नियुत संख्या के वर्षों में भी भोगने से नाश होनेवाला नहीं है। पूर्वसंचित कर्मफल के सम्बन्ध में कहना ही क्या है। अतः कर्म करके उसके फल द्वारा भगवत्प्राप्ति होगी ऐसा सोचना अज्ञानता है। इसलिएउनी निर्हेतुकी कृपा की ही आशा रखनी चाहिए। निर्हेतुकी कृपा प्रदान में भी गुण ही कारण है। श्री राम जी ने मार्ग याचनार्थ समुद्र की शरणागति की किन्तु उसमें शरण्य गुण नहीं था, अतः उक्त कार्य नहीं हो सका। श्री राम जी में शरण्य गुण था, अतः जयन्त जैसे अपराधी को भी क्षमा मिली है। भगवती सीता का वचन है - “विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः। बा. रा. सुन्दर 21।20।” आश्रितों के कल्याण में शरणागत वत्सलता गुण कारण है। शमदमादि गुणों द्वारा अपराधियों का अपराध क्षन्तव्य होता है। भगवान्में सभी गुण दया के अधीन हैं। दया कोमलता से होती है। अर्थात्कोमल हृदय वाले व्यक्ति में दया होती है। दया से क्षमा होती है। इसीलिए कहा है - “क्षान्तिस्ते करुणा सखी विजयताम्।” सृष्टि करने में भी भगवान् की स्वतन्त्रता ही प्रधान है, प्रेरक दया है। “अचिदविशेषितां प्रलय सीमनि संसरतः करण कलेवैर्घटयितुं दयमान मनाः।” “तदैच्छत बहुस्याम प्रजामेय।” “यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्यै यदयो यथा कुरुते कार्यते च। परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद्वत्स तद्धेतुरनन्यदेकम्। भा. 6।4।30।” “सर्वकारणकारणम्।” परमात्मा कर्ता कर्मादि सब स्वयं है न कि अन्य कोई। “ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने।” “यस्य नाम महद्यशः।”

“ब्रह्महा पितृहा गोत्रो मातृहाचार्यहाघवान् । श्राद्धः पुल्कसो वापि शुद्धयेरन्यस्य कीर्तनात् । ।”

“तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः । क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः । ।”

कल्याण अर्थात् मुक्ति अन्यान्य किन्हीं साधनों से नहीं होती है । इसीलिए अर्पण शब्द से आत्मसमर्पण (शरणागति) कहा है ।

“श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः । बुद्ध्या वा किं निपुण्या वलेनेन्द्रियराधसा । ।

किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि । किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः । ।

श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः । सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः । । भा. 4 । 31 । 11-13 ।”

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः । अजामिलोऽपि यैनैव मृत्युपाशादमुच्यत । भा. 6 । 3 । 23 ।”

संसार में किसी प्रकार के ऐश्वर्य शक्ति आदि प्राप्त करने में कोई लाभ नहीं हो सकता है यदि प्राणी भगवान् का भक्त नहीं बना हो ।

“यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा । स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः । भा. 10 । 85 । 4 ।”

प्राणियों के लिए सर्वविध कल्याणकर्त्ता नारायण ही हैं । “त्वमकरणः स्वराडखिलकारक शक्तिधरः ..... । भा. 10 । 87 । 28 वेद स्तुति ।”

इसी प्रकार महाभारत युद्ध का प्रेरक वनना तथा उसमें एक पक्ष का सारथी बनना, गीता का उपदेश द्वारा जनकल्याण करना आदि निरहेतुकी कृपा ही है । “लोकवत्तु लीला कैवल्यम् । वसू 2 । 1 । 33 ।” सृष्टि लीला में कोई प्रयोजक नहीं है बल्कि अपनी निरहेतुकी कृपा ही कारण है । “श्रीश्राहेतु कृपा... । श्रीवचनभूषण ।” श्री स्वामी लोकाचार्य का कहना है कि श्री का ईश की अहेतुकी कृपा होती है ।

“हरिं दयामहेतुकीम्... । श्रीवचनभूषण ।”

“हेतु रहित जग जुग उपकारी । तुम तुमार सेवक असुरारी । मानस उ. का. 46 । 3 ।” “कवहुँ कि करि करुना नर देही । देत ईश विनु हेतु सनेही ।

मानस उ. का. 43 । 3 ।” “अस प्रभु दीनवन्धु हरि कारण रहित कृपाल । तुलसीदास सठ ताहि भज छाड़ि कपट जंजाल । मानस वा. का. 211 ।”

“विनु सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाहीं । विनय प. 162 ।” विना सेवा ही भगवान् कृपा करते हैं । “यस्मिन्यतो यर्हिधेन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा । भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् । भा. 7 । 9 । 20 ।”

इस संसार में जो कुछ भी कार्य देखा जाता है उसके जो भी कर्त्ता हैं वे सभी आपकी प्रेरणा पाकर ही किया करते हैं । अतः सहेतुकी कृपा का कोई आधार प्राणी रह ही नहीं जाता जिससे कहा जाय कि भगवान् की सहेतुकी कृपा होती है ।

“नान्यथा तेऽखिल गुरो घटेत करुणात्मनः । यस्य आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् । ।

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः । न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यभिच्छून्यो रति चाशिषः । भा. 7 । 10 । 4-5 ।

जो मनुष्य सेवा के बदले स्वामी से अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहता है वह सेवक नहीं बल्कि लेन-देन करने वाला बनिया है और जो स्वामी सेवा के लिए स्वामी बनता हो वह स्वामी नहीं है । “अहं त्वकामस्त्वदभक्तस्त्वं च स्वान्यनपाश्रयः । नान्यथेहावयोरथो राजसेवकयोरिव । भा. 7 । 10 । 6 ।” सेवक को चाहिए कि निष्कामभाव से अपना कर्त्तव्य समझकर भगवान् की सेवा करे जैसे स्त्री पुत्र अपने पति और पिता की सेवा करते हैं । स्वामी में ऐसा उदार गुण होना चाहिए ।

“दातुं नालं वशंगतः” भक्त को देने योग्य अवशिष्ट कुछ नहीं रहने पर भगवान् भक्त के वश हो जाते हैं । पिता जैसे पुत्र को अपनी सारी सत्ता देकर भी चाहता है कि और कुछ होता तो उसे देते । इस प्रकार भगवान् का सर्वस्व भक्त का है और भक्त सर्वस्व भगवान् का है । भक्तों के उद्धार में भगवान् की निरहेतुकी कृपा की प्रधानता है । इनमें प्रकृति द्वारा सम्पन्न क्रिया को अपना मानना तथा भगवान् की कृपा को अपना कर्म का फल मानने से ऐसा मानना महान भूल है । “सत्संगादभव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान् ।” सत्संग द्वारा संसार से स्नेह रहित होकर मनुष्य नारायण को प्राप्त कर आत्मवान् अर्थात् आत्मस्वरूप ज्ञानी हो जाता है । “सत्संगति संमृति कर अन्ता । मानस उ. 44 । 3 ।” किन्तु “विनु हरि कृपा मिलहि नहिं सन्ता । मानस सु. 6 । 2 ।” इन्द्र ने प्रह्लाद की माता कयाधु को गर्भावस्था में विनष्ट करने की इच्छा से पकड़ा था किन्तु तत्काल ही नारद जी वहाँ आ गये और उससे उसको छुड़ाये - “यदृच्छयाऽऽगतस्त्र देवर्षिर्ददृशे पथि । भा. 7 । 7 । 7 ।” कयाधु ने नारद के समीप में रहकर पवित्र कथा सुनी जिसके प्रभाव से ज्ञानी प्रह्लाद उत्पन्न हुए । इसी से कहा है - “जव द्रवहिं दीनदयाल राघव साधु संगत पाईये । विनय. प. 136 । 10 ।” परीक्षित को संत शुकदेव

मिले थे- “तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः स शिष्याः । प्रायेण तीर्थाभि गमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः । भा. 1 | 19 | 8 ।”  
“तत्राभवद्भगवान्व्यास पुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः । अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतश्च वालैरवधूतवेषः । भा. 1 | 19 | 25 ।”

जैसे माता- पिता पुत्र के जनन पालन में तत्पर रहते हैं किन्तु पुत्र निरपेक्ष रहता है । उसी प्रकार भगवान् सृष्टि पालन एवं कल्याण आदि कार्यों में सदा संलग्न रहते हैं, तब परमात्मा उपाय नहीं वनते । जैसे -“प्रौढ भये तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहीं पाछिल वाता । मानस अरण्य 42 | 4 ।” अवोध बच्चे के ऊपर माता-पिता का सतत ध्यान रहता है और प्रौढ़ों के लिए कभी नहीं ।

“मामेकं शरणं व्रज. । गी. 18 | 66 ।” भगवान्की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर भी यदि चेतन उपाय अपना करता है और मानता है तो उसके लिए भगवान् उपाय नहीं रहते । जैसे हुनमान् का ब्रह्मास्त्र बन्धन अन्य बन्धनों के लगने पर स्वयं छूट गया । रावण के धनुष मूठ सहायक न होकर घातक बन रही थी । यह रहस्य जब रावण ने जाना कि मेरे हाथ में धनुष की मूठ है इसीलिए भगवान्का वाण अभी तक मेरे ऊपर चल रहा है यद्यपि मेरा धनुष भग्न हो गया है । तब उसने उसको फेंका - “वचाल चापं च मुमोच वीरः । वा. रा. युद्ध 59 | 139 ।” तब भगवान्का वाण चलना बन्द हो गया ।

मथुरा की स्त्रियों पर भगवान् की कृपा हुई तो स्वयं गोपवालों को भेजकर उन सबों की सेवा स्वीकार की । इसी प्रकार मालाकार, कुब्जा, दर्जी आदि पर भगवान् की निर्हेतुकी कृपा हुई थी । जनक विदेह के समीप स्वयं नव योगेश्वर आये जिनके उपदेश द्वारा उन्हें मुक्ति मिली थी ।

“सत्वात्सज्जायते ज्ञानम् । गी. 14 | 17 ।” सतोगुण के अधिष्ठाता देव विष्णु हैं । उन्हीं की प्रेरणा से अन्तःकरण में सतोगुण का उद्रेक होता है जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है और चेतन कहता है कि मैं भगवान्का हूँ, अतः शरणागति करता है । यह सब मनुष्य ही कर सकता है अन्य प्राणी नहीं । अतः कहा गया है - “हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हें । साधन धाम देव दुर्लभ तनु मोहि कृपा कर दीन्हें । विनय. प. 102 ।” यही भगवान की कृपा है ।

मूल मन्त्र “ॐ नमो नारायणाय ।” इसमें नमः पद का अर्थ कर्तृत्वाभिमान छोड़ने में है । “ममेति द्वयक्षरं मृत्युर्नममेति च शाश्वतम् ।” अर्थात् अहं (अहंकार) मम (ममकार) में और मेरा' ऐसी बुद्धि रहने से नरक होता है और 'न तो मैं कर्ता हूँ और न अपने निमित्त ही कुछ हूँ' ऐसी भावना से शाश्वत - पद वैकुण्ठ प्राप्त होता है । भाव यह है कि भगवान् ही स्वयं प्रेरक होकर सब कुछ हमसे करवाते हैं । वे ही कुछ निमित्त मानकर या स्वयं निमित्त बनकर अपनाते हैं । “उर प्रेरकं रघुवंशं विभूषण । मानस उ. 112 | 1 ।” “ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया । गी. 18 | 61 ।” “अस विवेकं जव देई विधाता । तब तजि दोष गुणहिं मन राता । मानस बाल 6 | 1 ।” “सो जानई जेहि देहु जनाई । जाने तुमहि तुमहि होई जाई । मानस अयो. 26 | 2 ।”

“तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्भागपूर्भिर्विदधन्मस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् । भा. 10 | 14 | 8 ।”

व्यक्ति अपनी निर्हेतुकी कृपा की कामना क्षण-क्षण करते हुए पूर्व कर्मविपाकों को भोगते हुए आपकी शरणागति करता है वह मुक्त हो जाता है । “येषां स एव भगवान्दययेदन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रित पदो यदि निर्व्यलीकम् । ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये । भा. 2 | 7 | 42 ।” जिसपर भगवान्की कृपा होती है वह अपना सर्वस्व और अपने आपको भगवान्के चरण कमलों में समर्पित कर देता है जिससे वह दुस्तर माया को पार कर जाता है । ऐसा व्यक्ति कुत्ता-श्रृगाल के भक्ष्य शरीर में मैं और मेरा भाव नहीं किया करते हैं ।

“वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।

पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनवर्हिऋभु रङ्ग उत ध्रुवश्च । भा. 2 | 7 | 43 ।

इक्ष्वाकुर्लघुचुक्रुन्दविदेह गाधिरध्वम्बरीषसगरा गयनाहुपाद्याः ।

मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो वलिरमूर्तरयो दिलीपः । भा. 2 | 7 | 44 ।

सोमयुतङ्कशिविदेवलपिप्लाद सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।

येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त पार्थाष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः । भा. 2 | 7 | 45 ।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूण शवरा अपि पापजीवाः । भा. 2 | 7 | 46 । ”

भगवान्की योगमाया को नारद, शंकर, प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनवर्हि, ऋभु, ध्रुव, इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति, मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, वलि, अमूर्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तङ्क, शिवि, देवल, पिप्लाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, अर्जुन, आष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा जानते हैं । इसके अतिरिक्त शिक्षित स्त्री, शूद्र, हूण, भील, पाप के कारण होने वाले पशुपक्षी भी माया का रहस्य जानते हैं ।

जीव जिस समय माता के गर्भ में रहता है उस समय भगवान्के दिए हुए शुद्धज्ञान की अवस्था में - “तत्र लब्धस्मृतिर्देवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् । भा. 3 | 31 | 9 ।” “.....युक्तया कया महदनुग्रहमन्तरेण । भा. 3 | 31 | 15 ।” आपके महान अनुग्रह विना इस बन्धन से छूटने का दूसरा कोई उपाय नहीं है । जीवात्मा को परमात्मा स्वयं ज्ञान देकर इस प्रकार कहवाते हैं । इसी को श्रीस्वामी लोकाचार्य जी ने कहा है कि “स्वयमलंकारयति धारयति । श्रीवचनभूषण सूत्र 59 ।”

जैसे राजा स्वयं पुष्पवाटिका लगवाते हैं और उसके फूलों की माला बनाकर स्वयं चेतनों को दिव्य ज्ञान देकर उन सबों से मुक्ति का उपाय करवा कर उन सबों को मुक्त कर पश्चात्सेवा लेते हैं ।

“यो ब्रह्माणां विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।” परमात्मा स्वेच्छा से ब्रह्मा को उत्पन्न कर संकल्प द्वारा उनको वेद का ज्ञान करा देते हैं । इसमें किसी की प्रेरणा नहीं होती है । इसी प्रकार चेतनों के प्रति भी उनकी कृपा होती है । “अनुग्रहायालवतामनुकम्पयातपोव्यक्त गतिश्चरति ।” अनुकरण करवाने के लिए ही परमात्मा ने नर को वदरिकाश्रम में मन्त्र दिया है और वहीं स्वयं तपस्या भी कर रहे हैं । यह परम्परा आज तक चली आ रही है । इसी को सुदामा जी ने कहा है “पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणः । भा. 10 | 81 | 34 ।” मेघ जैसे स्वयं जल दिया करता है वैसे ही परमात्मा की कृपा होती है । ब्रह्मा की याचना प्रार्थना के बिना ही स्वयं परमात्मा ने उनको शरणागत बनाया था । “स्वचक्रेणांकयित्वा तु ददौ मन्त्रं स्वयं हरिः ।” स्वयं शब्द का यही भाव है स्वेच्छा से उनको जन्म देना, शरणागत बनाना, वेद पढ़ाना आदि हुआ है । इसी से ब्रह्मा ने कहा है कि “ममाप्यखिललोकानां गुरुना रायणो हरिः ।” “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तन लभ्यस्तस्येप विवृणुते तनुं स्वाम् । कठोपनिषद 1 | 2 | 23 । एवं मुण्डकोपनिषद 3 | 2 | 3 ।” प्रवचन, उत्कृष्ट बुद्धि, बहुश्रुत आदि साधनों से परमात्मा नहीं प्राप्त होते हैं । यह परगत शरणागति है ।

“लौकिकं वैदिकं त्यक्त्वा परमं वैदिकं बुधः । अवलम्ब्यानुसन्दध्याद्विष्णोः शेषत्वमात्मनः । ।

द्वयं हि सर्वसुलभमाचरन् ह्यपेक्षते । उपायशून्यतां वीक्ष्य ददाति परमं पदम् । ।”

श्री स्वामी लोकाचार्य जी ने श्रीवचनभूषण में कहा है कि - “विमुखानां चेतनानां वैमुख्यं दूरीकृत्य रुचिमुत्पादयति रुच्युत्पत्तौ उपायो भवति । उपायपरिग्रहकृते भोग्यो भवति उपायगृहीते तु स्वयं भोग्यः प्रजायते । श्रीवचनभूषण सूत्र 47 ।”

“उपायत्वेन चेदेषा दृष्टा स्याज्जनकस्यहि । पुत्रेण लेखनस्वीकारसदृशं वर्तते तदा । श्रीवचनभूषण सूत्र 61 ।” यथा पुत्रपैतृक सम्पत्ति को पिता के द्वारा स्वीकृत पत्र लिखने पर अपना माने । स्वगत शरणागति में - उपाय बुद्धि से शरणागति में यही दोष होगा ।

“स्वयलनिवृत्तिः पारतन्त्र्यं फलम् । स्वप्रयोजन निवृत्तिः शेषत्वफलम् । श्रीवचनभूषण सूत्र 76 ।

उपायस्य शक्तिर्लज्जा यत्नश्च त्याज्याः । उपेयस्य प्रेम स्वोपेक्षाधारणा भावश्चापेक्षिताः । श्रीवचनभूषण सूत्र 91 ।”

उपेय के लिए प्रेम, अपने शरीर का अनादर और शरीर धारण आसक्ति ये तीनों चाहिए ।

“उपायत्वानुसन्धानं निवर्तकं उपेयत्वानुसन्धानं प्रवर्तकम् । श्रीवचनभूषण सूत्र 93 ।” “कृपारुचिं जनयति आचारोभयं जनयति । श्रीवचनभूषण सूत्र 112 ।”

“स्वगत स्वीकारानुपायत्वम् । परगतस्वीकारोपायत्वं च दर्शितम् । ।” “हृदये प्रविश्य स्वविषय आदरं प्रवाहयत् ।” संसार निवृत्ति पूर्विकायाः स्वप्राप्तेः स्वयमुपायत्वम् (भट्टर स्वामी) । स्वयल छोड़ना परतन्त्रता का फल है । स्वप्रयोजन छोड़ना शेष का फल है । स्वगत स्वीकार



मानना अनुपाय हो जाना है अर्थात् निष्फल हो जाता है। परगत शरणागति उपाय होती है अर्थात् सफल होती है। कदर्य ने कहा है - “नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः। येन नीतो दशमेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः। भा. 11।23।28।” हम पर भगवान की दया है जिससे हमारे धनादि का अपहरण हुआ। यही दीनदशा हमको संसार समुद्र से निकालने वाली नौका हुई। “यस्याहमनुगृह्णामि शनैः वित्तं हरायहम्।” भगवान कहते हैं कि जिसको हम अपनाते हैं उसका धनादि अपहृत कर लेते हैं। यह विषय सुनकर सबलोग प्रसन्न हुए और कथा समाप्त हुई।

-० समाप्त ०-

श्रीमते रामानुजाय नमः



तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -  
स्वामी राजेन्द्र सूरिजी  
महाराज की संक्षिप्त जीवनी  
(तृतीय खण्ड)

## राम रहस्य

लेखक  
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य  
सरौती स्थानाधीश

श्री पराङ्कुश ग्रन्थमालायाः एकादशं सरोजम्

द्वितीय संस्करण  
प्रकाशक  
श्रीपराङ्कुश संस्कृति संस्कृति संरक्षा परिषद्  
हुलासगंज (गया)

शरत्पूर्णिमा

संवत् 2043

मुद्रक  
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य प्रेस  
हुलासगंज (गया)

(इस पुस्तक का पुनर्मुद्रण कोई भी करा सकता है)

प्राप्तिस्थान  
श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्  
हुलासगंज (गया)

मूल्य 2 रु मात्र

श्रीमते रामानुजाय नमः

## श्री राम रहस्य

वर्तमान काल में जहाँ दिव्य मन्दिर है, वहाँ पहले मण्डप था। उसी में श्री स्वामी जी महाराज विराजमान थे। आप ऋषि प्रणीत ग्रन्थों से विशेष प्रेम रखते थे और व्यवहार करते थे परन्तु गायन विद्या के कारण तुलसीकृत मानस रामायण भी गाया जाता था और उसका अर्थ भी विलक्षण रूप से भावपूर्ण कहते थे। इस कारण पालीवासी पंडितप्रवर श्री रामलखन शर्मा जी ने यह प्रश्न किया कि “शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर। मानस उत्तर दो 45।” इस दोहे तथा “यह मैंह राम रहस्य अनेका। मानसवाल 110।2।” इन दोनों का अर्थ और भाव क्या है? श्रीमान्के मुखारविन्द से सुनना और जानना चाहता हूँ। ऐसा सुनकर दोनों प्रश्नों को भलीभाँति व्याख्या रूप में समझाया गया था। उसी को यहाँ संक्षेप से लिखा जा रहा है।

1। गोस्वामी तुलसीदास जी कृत मानस रामायण मेंराम रहस्य ऐसा शब्द आया है। जैसे

“रामरहस्य ललित विधि नाना। उत्तर 113।1।”

“औरो रामरहस्य अनेका। वाल 110।2।”

“यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय। उत्तर 116।”

रहस्यशब्द का अर्थ है कि जो परम गोपनीय हो, परम अधिकारी यानी सुपात्र व्यक्ति को किसी समय एकान्त में कहने लायक हो, सर्वथा सबसे कहने योग्य नहीं हो। राम-रहस्य कहने से यह भावार्थ होता है कि वह विषय रामजी के हृदय में गोपनीय है अथवा रामजी सबसे छिपाकर अपने मन में रखे हों जो किसी से नहीं कहते हैं और नहीं कहने लायक है, जैसे- “यह जनि कतहुँ कहेसि सुनु माई। मानस वा 201।4।”, “लछिमनहुँ यह मर्म न जाना। मानसअर 23।3।” ऐसी वस्तु अथवा श्रीरामजी के चरित्र को अनधिकारियों को नहीं कहने योग्य हो- जैसे, “कहिये कतहुँ सठहि हठ सीलहि। उ 127।2।” किन्तु अधिकारी से कहे। “पाई उमा यह गोप्यमयि सज्जन करहिं प्रकाश। उ 69।” “गूढ़ो तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहीं। वा 109।1।” परन्तु उस रहस्य के दो भेद हैं - एक गुप्त और दूसरा प्रत्यक्ष जो कि सर्वजन विदित हैं।

2। राम-रहस्य अनेक हैं जिसमें एक रहस्य माया और भक्ति को खोलकर ज्ञान के साथ विचार करके उत्तरकाण्ड में आया है, जिसमें स्पष्ट कहा है - “यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय। उ 116।” किन्तु अन्य रहस्यों को नहीं कहा है और न जाने कोई ऐसा कहकर गुप्त ही छोड़ा है परन्तु मानस में राम-रहस्य है सो विचारने की बात है। यहाँ पर ज्ञान पुरुष स्वरूप को दैवी माया स्त्री रूपिणी अपनी कला से ज्ञान को ठग लेती है। विकल कर देती है और स्त्री रूपिणी भक्ति से डरती है, कारण कि भक्ति के पक्षपाती अनुकूल सहायक भगवान् रहते हैं। भाव इसका यह है कि हरि-भक्ति को माया नहीं ठग सकती है। इसलिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति उत्तम है यानी ज्ञानी से भक्तवर उत्तम होते हैं। यह रहस्य है, इसको तुरत कोई नहीं जान सकता है जैसे हिरण्यकशिपु नरसिंह रूप से ही मर सकता था। इसलिए भगवान् प्रह्लाद को नरसिंह रूप में ही दर्शन दिये थे वैसे ही रावण को मनुष्य रूप से ही मारना है। इसलिए भगवान् मनु और शतरूपा के सामने मनुष्य रूप से राम-ज्ञानकी होकर दर्शन दिये। “राम वाम दिसि सीता सोई। वाल 147।2।” इसमें यही रहस्य है। देवगण से आकाशवाणी में “तुमहि लागि धरिहों नर वेषा। वाल 186।1।” कहे हैं - “इत्युक्त्वाऽथ स काकुत्थः शार्ङ्ग विष्णुः सनातनम्। श्रीरंगशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुलदैवतम्। प. पु. उ. खण्ड 244।61।”

3। “निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना। वाल 200।1।” खुलदेव के लिए पकवान जो बना और कौसल्या ने बनाया रामजी क्यों खाये? वह तो दूसरे के लिए बना था।

उत्तर- अपना रूप भगवान् जन्मकाल में ही कौशल्या को दिखलाये थे और फिर वही वालरूप में हो गये थे। इसीसे - “वार वार वर



मांगडँ हरषि देहु श्रीरंग । उ॥१४॥ ” ऐसा कहा है । तथापि कौशल्या विष्णु को रामजी से भिन्न जानकर पाक बनायी थी । इसी भेद को दूर करने के लिए रामजी पकवान खा गये और फिर अपना रूप दिखला दिया कि अर्चा रंगनाथ और विष्णु भी मैं ही हूँ यानी मैं विष्णु स्वरूप हूँ ।

4 । “ निगम नेति शिव पार न पावा । ताहि धरै जननी हठ धावा । बाल 202 । 4 । ” जिनके शिव पार नहीं पाते, वेद नेति कहता है, उनको कौशल्या बलात्कार पकड़ लेती है और राजा की गोद में बैठा देती है । राजा की गोद में बैठाने पर व गोद से ही हँसते हुए भाग गये । राजा क्यों नहीं गोद में रख सके ?

उत्तर-कौशल्या भक्ति हैं । इसीसे बलात्कार पकड़ा जाते हैं । राजा ज्ञान हैं, ज्ञान से नहीं पकड़ाते हैं, भाग जाते हैं । उनको राजा नहीं रोक सकते ईश्वर में वही रहस्य है ।

5 । विश्वामित्र के समय “जननी भवन गये पुनि चले नाय पदशीश । बाल 208 । ” माता ने तनिक भी प्रेम नहीं दिखाई जो कि पितु सत्गुण माता और पिता ने - “देह प्राण ते प्रियकछु नहीं । सो मुनि देउँ निमिष एक माहीं । बाल 207 । 2 । ” कहा सो क्यों ?

उत्तर- माता ने जन्मकाल में ऐश्वर्य देखा - “अद्भुत रूप निहारी । बाल दोहा 191 । छंद । ”- वैसे भोजनकाल में भी देखी । इसलिए निर्भीक रही । राजा ने नहीं देखा था । अतः अनभिज्ञ रहे और डरते भी थे कि राक्षस रामजी को मार देगा । इससे नहीं देना । माता ने रामजी को नारायण जाना था इससे चिंता नहीं की ।

6 । माता को ऐश्वर्य दिखाकर - “यह जनि कतहँ कहेसि मुनु माई । वा 201 । 4 । ” किसी से नहीं कहना ऐसा क्यों कहे ?

उत्तर - “रावण मरण मनुज कर जाँचा । वा 48 । 1 । ” ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए । यदि सब कोई जान जाता कि रामजी विष्णु हैं तो यह भी सब कोई कहता कि रावण को विष्णु ने मारा है, किन्तु मनुष्य ने नहीं । इसीसे रामजी से हनुमान जी ने पूछा था कि आप त्रिदेवों में से हैं या नर-नारायण में से हैं ?

तो रामजी कहते हैं - “कोशलेश दशरथ के जाये । किष्क 1 । 1 । ” मैं दशरथ पुत्र मनुष्य हूँ ।

7 । मारीच को विना फरके वाण से मारकर समुद्र पार क्यों किये मारे क्यों नहीं ? उत्तर- लीला कार्य में सहायक होने के लिये, क्योंकि आगे उसे ही मृग बनना है ।

8 । उत्तानपाद ने ध्रुव की तपस्या से जाने पर विना किसी से सम्मति लिए ही राज्य-सिंहासन पर स्वयं विठा दिया और राजा दशरथ गुरु वशिष्ठादि से सम्मति लेकर भी “जो पांचहिं लागै मत नीका । हरषि करहु रघुनाथहि टीका । अयो 4 । 2 । ” ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर - कश्मीर के राजा अश्वपति से कैकेयी के पुत्र को राज्य देने का वचन देकर कैकेयी से विवाह किया है । इससे अपना अधिकार न रहने के कारण पंच बन्धुओं से राज्य दिलाना चाहते हैं । राज्य जेठ रानी के ज्येष्ठ पुत्र को ही होना चाहिये - यही नीति एवं धर्मानुकूल भी है । ऐसा ही सूर्यवंशियों का कुल धर्म था । इसके विपरीत दशरथ जी किये सो महान्दोष है । किन्तु इस दोष को रामजी जानते थे । इसलिए इस दोष का नाम न लेकर अब जो राजा पलट रहे हैं - इसी को रामजी कहते हैं “विमल वंश यह अनुचित एका । बन्धु विहाय वड़ेहि अभिषेका । अयो 9 । 2 । ” इश प्रकरण में यही रहस्य है । बन्धु शब्द का अर्थ यहाँ भरत जी को जानना चाहिए । भाव यह कि जिस भरत को पूर्व में राज्य दे दिया गया है उसको आज तक सूचना भी नहीं दी जाती है । यही अनुचित है यानी भरत को ही राज्य देना उचित है और तभी दशरथ जी की प्रतिज्ञा वचन सत्य होता जो अश्वपति से राज्य देने को कहे थे ।

9 । सीता जी को अग्नि ही में वास क्यों कराया गया ?

उत्तर- अग्निदेव सीता जी के सम्बन्ध में प्रमातामह (परनाना) होते हैं । जैसे ईश्वर से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और उससे धरणी, फिर धरणी की कन्या सीता हैं । यानी सीता की माता धरणी और धरणी के पिता जल मातामह (नाना) हैं और जल के पिता अग्नि हैं सो प्रमातामह अर्थात् नाना के पिता हुए । ऐसे अपना परिवार जानकर विश्वास पूर्वक सीता

को वास कराये हैं - “तुम पावक महँ करहु निवासा । जव लगि करौ निशाचर नाशा । अर. 23 । 1 ।

10 । “जवहि राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी । अरण्य 23 । 2 ।” अग्नि में प्रवेश की ही आज्ञा दी है और अन्य कोई वचन नहीं है । किन्तु इस चौपाई में 'सब कहा' ऐसा शब्द है । इससे प्रतीत होता है कि बहुत कुछ बातचीत की गयी है जो आगे फिर यह वचन है कि “लछिमनहुं यह मर्म न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना । मानसअर 23 । 3 ।” यह गुप्त रहस्य है जो लक्ष्मण जी भी नहीं जान सके हैं किन्तु रामजी और सीता जी परस्पर सम्मति कर लिए हैं, सो वह कि मारीच के आने पर सीता जी ने राम जी से मारीच को मारने को कहा है । तैसे ही राम जी के पीछे चले जाना, मारीच को रामजी के समान बोलना सुनकर सीता जी राम जी के पास लक्ष्मण को कटु वचन कहकर भेजती है । सीता जी को रावण ले जाता है । इन पाँचों बातों को राम-सीता सोचते हैं और लक्ष्मण नहीं जानते हैं- सच्चाई छिपा हुआ रहस्य है ।

11 । इन सब प्रसंगों के पूर्व यह विषय है कि “अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन लागि अति दया । अर. 8 । 3 ।” “निसिचर सकल मुनिन्ह कहं खाये । मुनि रघुनाथ नयन जल छाये । अर. 8 । 4 ।” “निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय प्रण कीन्ह । अर. 9 ।” यह प्रतिज्ञा सुनकर सीता जी ने रामजी से प्रतिज्ञा छोड़ने को कहा है (सो वाल्मीकि रामायण के अरण्य काण्ड सर्ग-9 में स्पष्ट है) और समझाई है किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी सत्य-प्रतिज्ञा रामजी नहीं माने तो स्वयं सोचती है कि एक रावण को समझाकर भगवान् की शरणागति करा दें तो किसी भी राक्षस का नाश न हो सकता है किन्तु यह कार्य हमारे लंका गये बिना नहीं हो सकता है । ऐसा सोचकर सीता रावण को शिक्षा देने के लिए लंका में गयी है और समझाई है । किन्तु रावण नहीं माना तो पश्चात्ताप की है कि मुझे लंका आना व्यर्थ हुआ क्योंकि राक्षसों का नाश होकर ही रहेगा और रामजी की प्रतिज्ञा ही सत्य होगी । नहीं तो सीता के फूँक से ही रावण भस्म हो जा सकता था । परन्तु यह सब कैसे हो? इन्हीं के विचार में राम-जानकी जी ने एकान्त वार्ता की है जो लक्ष्मण जी भी नहीं जानते हैं ।

12 । लोक शिक्षा के लिए भाव होता है कि जव किसी पुरुष के ऊपर विपत्ति आने का समय होता है तो उसका विचार और बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है । जैसे राम जी सेव्य हैं और सीता जी सेविका हैं । इसलिए सीता जी रामजी को मृगा मारने या लाने के लिए कहती है यानी पति को आज्ञा देती है और रामजी भी सीता जी को नहीं समझा कर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही असत्य में सत्य का भास हुआ कि सोने का मृग नहीं होता किन्तु सोना का ही मृग मानकर उसके पीचे चले हैं । इसी को कहा है - “असम्भवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय । महाभारत सभा 76 । 5 ।” सीता जी को दुःख भोगना हुआ तो लक्ष्मण जी में भी अविश्वास हुआ और दुर्वचन कही है - यह आने वाली आपत्ति का पूर्व लक्षण है । लक्ष्मण जी के प्रति कटु वचन के ही फलस्वरूप सीता जी को लंका जाना पड़ा है यह भाव भी बताया गया है । इसी को भागवतापचार शब्द से कहा है । यानी बड़े होकर भी छोटे के प्रति अपराध गरुड़ को हुआ था (महाभारत उद्योग पर्व अध्याय 113 शाण्डिली भागवता की कथा), अथवा सुग्री द्वारा (पद्म पु. पाताल अध्याय 57) सीता जी को । राम जी जानबूझ कर मारीच के पीछे चले हैं जिससे शत्रु को समय मिले और ऐसे ही रावण को समय मिल भी गया, इसी से कहा है कि - “तव रघुपति जानत सब कारण । चले हरषि मुर काज सँवारन । अर. 26 । 3 ।” राक्षसों का नाश करना ही देव-कार्य है । इसीलिए रामजी स्थल को छोड़े हैं । इसी प्रकार लक्ष्मण जी को भी कूटिया छोड़ने में कहा है कि “हरि प्रेरित लक्ष्मण मति डोली । अर. 27 । 3 ।” इसमें भी भगवान् के ही संकल्प हैं वैसे साक्षात् सीताजी अग्नि में प्रवेश कर गई और प्रतिविम्ब सीता लंका जाने ही के लिए है । ये सभी रचनाएँ राक्षसों का नाश कराने के लिए ही बनाई गयी हैं । यह सब रामजी का गुप्त रहस्य ही प्रत्यक्ष हुआ है ।

13 । भक्तराज जटायु के छिन्न-भिन्न शरीर को रामजी ने देखा तो उसको गोद में लेकर जटाओं से देह को पोंछने लगे । समाचार में कहा कि “नाथ दशानन यह गति कीन्हा । सो खल जनक सुता हर लीन्हा । अर. 30 । 1 ।” जटायु के कटे हुए शरीर को देखकर भगवान् अपना नियम भंग करके उसी समय अपना स्वरूप दिए जो नियम विरजा पार का है सो यहाँ ही मिला है -

“गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषण बहु पट पीत अनूपा । ।

श्याम गात विशाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि वारी । अर. 31 । 1 ।”

वैकुण्ठ में रामजी का जो अपना चतुर्भुजी रूप है वही जटायु को दिया और यह पूर्व ही कहा था “तनु तजि तात जाहु मम धामा । अर. 30।5।” इसके अनुसार “मम उर वसहु । अर. 31।छन्द 5।” कहकर अपने हृदय में वसाये और रखकर “अविरल भक्ति माँगी वर गीध गयउ हरि धाम । अर. 32।” इसमें ‘हरि रूपा’ से सारूप्य हुआ । ‘मम उर वसहु’ से सामीप्य, साथ ही हैं सो हुआ । ‘जाहु मम धामा’ से सालोक्य हुआ । धाम में वहाँ पहुँचने पर सायुज्यता होगी । पाने चारो प्रकार की मुक्ति मिली है और राम हरि विष्णु हैं सो भी हुआ । जटायु को मुक्ति देकर राम जी “तिन कर क्रिया यथोचित निजकर कीन्हें राम । अर. 32।”

प्रश्न- श्राद्धादि सब मुक्ति के लिए किया जाता है सो मुक्ति देने पर क्रिया की क्या आवश्यकता है तथा अपने सम्बन्धियों का श्राद्ध किया जाता है तो अन्य पशु-पक्षियों के लिए करना कैसा ?

उत्तर- भगवान का अवतार वेद-मार्ग धर्म की रक्षा के लिए होता है । कहा भी है - “धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे । गी. 4।8।” “वेद प्रणिहितो धर्मः ।” जटायु की दाह-तर्पण, श्राद्धादिक सम्पूर्ण क्रिया वैदिक धर्म की रक्षा के लिए की गयी है । जटायु को दशरथ जी से मित्रता थी इसीसे पिता के तुल्य राम जी ने माना था और कहा है कि “मुनहुँ लखन खगपतिहि मिलन ते मैं पितु मरण न जान्यो । गीतावली अरण्य 13।” ऐ लखन लाल ! जटायुराज के रहने पर हमारे पिता जी के मरने की चिन्ता शोक नहीं जान पड़ता था । कारण कि पिता के प्रतिनिधि जटायुराज वर्तमान थे । परन्तु आज ही हम जटायुराज के मरने से पिता रहित टुअर हुए हैं । ऐसा सम्बन्ध मानकर राम जी ने सब किया है और यह भी है कि जटायु का हरि भक्तों में नाम आया है । इसलिए भक्तों का देह भगवान् अपना मानते हैं तथा “देहो वै स हरि प्रियः ।” भक्त का देह भगवान् को अत्यन्त प्यारा होता है । इसी से सभी क्रिया राम जी ने की है । यही रहस्य है । कृतज्ञता गुण है । द्विज होने से ब्रह्ममेध संस्कार किया है ।

14। “कि तुम तीन देव मह कोउ । नर नारायण की तुम दोउ । किष्क. 1।5।” जब हनुमान ने पूछा कि आप त्रिदेवों में से हैं आप त्रिदेवों में से कोई हैं या नर-नारायण अवतार में से कोई हैं या अखिल कारण व्यूह में से कोई हैं । इन्हीं में से विष्णु नारायण-वासुदेव हैं । इन तीनों नामों से परिचय नहीं देकर दशरथ पुत्र क्यों वताते हैं ?

उत्तर - ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए, रावण को मारने के लिए, “आत्मानं मानुषं मन्ये ... । वा. रा. युद्ध 117।11।” अपने राजकुमार रूप धरा है । इस कारण दशरथ के जाये कहते हैं । यह रहस्य है ।

15। मित्रता में अन्य देवताओं की साक्षी न देकर अग्नि की साक्षी क्यों दिया है ? “पावक साक्षी देई करि जोड़ा प्रीति दृढ़ाई । किष्क 4।” उत्तर - अपना विश्वासी कुटुम्ब सीता के प्रमातामह जानकर तथा पावक शरीर के व्यापक देव हैं । यदि सुग्रीव प्रतिकूल होगा तो शरीर में व्यापक होने से प्रकोप करके लंगड़े लूँहे बना देंगे या मृत्यु ही दे सकते हैं । इसमें यही रहस्य है सो गुह्य है ।

16। “विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाई पूछत अस भयउ । ।  
की तुम्ह स्यामल गौर शरीरा । छत्रिय रूप फिरहु वन वीरा । किष्क. 1।3-4।”

हनुमान ब्राह्मण बनकर राम-लक्ष्मण जी के पास गए और प्रणाम करके पूछा - ऐ वीर! तुम श्याम-गौर दोनों क्षत्रिय रूप में किस लिए वन में फिरते हो । ब्राह्मण बनकर और क्षत्रिय रूप जानते हुए प्रणाम क्यों किया ?

उत्तर - (क) “अप्रमेयो हि तत्तेजो यस्यैषा जनकात्मजा । वा. रा. अर. 37।18।” “जन्म कर्म च मे दिव्यम् । गी. 4।9।” रामजी के अप्राकृत शरीर तथा अप्रमेय तेज को देखकर हनुमान् प्रभावित होकर नत-सिर हो गये हैं अथवा हनुमान का देह कपट का ब्राह्मण था इसलिए कपटी का हृदय दवा रहता है । इसी कारण प्रणाम किया है ।

(ख) ज्ञानाधिक जानकर ब्राह्मण भी क्षत्रिय लोगों को प्रणाम करते थे । जैसे जनक जी के पास शुकदेव जी ब्रह्मविद्या-ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये थे तो जनक को प्रणाम करके ही प्राप्त किये थे ।

(ग) विरक्त तपस्वी के वेश वानप्रस्थ में रामजी थे और हनुमान् को रामजी देवता तथा ईश्वर प्रतीत होते थे, “कि तुम तीन देव मह कोउ” ‘देवता, नर नारायण की तुम दोउ’ से अवतार “कि तुम अखिल भुवनपति” व्यूह प्रतीत होते थे, अतः प्रणाम किया ।

17। “लछिमन वान सरासन आनू। सु. 57। 1।” श्री रामचन्द्र जी ने समुद्र की प्रार्थना स्तुति की किन्तु पीछे धनुष-वाण धारण करके धमकाना भी पड़ा है। इसमें रहस्य यह है कि क्षुद्र देवता के प्रति कुछ भी मनोरथ करके उनकी आराधना करने से कल्याण सिद्ध नहीं होगा निष्फल ही रहेगा। इसलिए एक भगवान की ही किसी मनोरथ सिद्धि के लिए आराधना करनी चाहिए। जैसे ध्रुव को नारद जी ने बताया और सिद्धि मिली। “धर्मार्थकाममोक्षार्थं य इच्छेत्श्रियमात्मनः। एक एव हरिस्तत्र कारणं पादसेवनम्। भा. 4। 8। 41।”

18। “राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी। कि. 4। 3।”

प्रश्न - अन्य स्थलों पर अन्य वन्दरों को नहीं देखा। सुग्रीव की ओर देखकर वस्त्र गिराने का क्या भाव है ?

उत्तर - अपनी मण्डली में सुग्रीव प्रधान थे तथा प्रधान उच्चासन पर बैठे रहे और समीप में हनुमानसमुख में बैठे थे। इनके अंग में भगवान् के नित्य पार्षद होने के कारण एवं अञ्जनि पुत्र होने के कारण भगवद्भक्त के चित्त होने से इनको सुग्रीव अपने आगे बैठाए हैं। इससे सीता जी को अनुमान हुआ कि यह वन्दर प्रधान को हरिजन प्यारे हैं। अतः वन्दर प्रधान भी भगवत्प्रिय होगा ऐसा अनुमान करके और राम जी का नाम इसलिए है कि वन्दर सब भी जान ले कि यह राम जी के प्रेमी हैं, इस विचार से वस्त्र गिराया है। अन्यत्र कहीं वन्दरों को हरिजन नहीं जाना है।

सीता यह भी जानती है कि रामजी अयोध्या से दक्षिण की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं तो फिर भी दक्षिण ही को आवेंगे तो अवश्य इस मण्डली के पास पहुँचेंगे तो यह वस्त्र मिलेगा और हमको दक्षिण जाने में तथा हमारी प्राप्ति के लिए प्रयत्न अवश्य करेंगे।

19। हनुमान जी से भरत ने पूछा कि “अव प्रभु चरित सुनावहु मोहि। उ. 1। 7।” इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् के चरित्र नहीं कहकर “कहे सकल रघुपति गुण गाथा। उ. 1। 8।” यह प्रश्नोत्तर में उलट-फेर क्यों ?

उत्तर - जैसे प्राकृत पुरुष प्राकृत गुण से प्रेरित होकर व्यवहार करता है वैसे भगवान् भी अपने दिव्यगुणों के कारण सब व्यवहार किया करते हैं। जैसे शरण्य-गुण के कारण सुग्रीव, विभीषण को शरण में लेना, उदार गुण से - “जो संपति शिव रावन्हि दीन्ह दिये दस माथ। सो सम्पदा विभीषण ही सकुच दीन्ह रघुनाथ। सु. 49। 10।”

ईश्वरत्व मोक्षप्रदत्व गुण से - “कहहि विभीषण तिन कर नामा। देहि राम तिन कह निज धामा। लं. 44। 1।”

तेज गुण से - “तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सकल असंभव माना। लं. 70। 4।” तैसे - “श्रीरघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरहिं पापान। लं. 3। 10।” यह अघटित घटना है। “गीध देह तजि धरि हरि रूपा। अर. 31। 1।” यह ईश्वरत्व मोक्ष प्रदाता है। धर्मपालकता - “तिनकर क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम। अर. 32।”

शील गुण तथा पतित पावनता से शवरी, कोल, किरात आदि से प्रेम करके उनके पास जाना तथा उनसे बोलना, प्रेम करना हुआ है। अर्थात् चरित्र में गुण ही कारण है। इसलिए गुण ही का वर्णन किया।

20। “अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा की खानी। उ. 2। 5।” प्रश्न - पुरी जड़ को ज्ञान कैसे हुआ कि रामजी आते हैं ?

उत्तर - प्रकृति जड़ है। “गगन समीर अनल जल धरनि। इनकी नाथ सहज जड़ करनी। सु. 58। 2।” भगवान् और भगवद्भक्त के प्रभाव से जड़ भी जड़ता छोड़ती है। जैसे - शुकदेव द्वारा जंगल “तरवोऽभिनेदुः। भा. 1। 2। 2।” अथवा “सरिता सर गिरि अवघट घाटा। पति पहिचान देहि वर वाटा। अर. 6। 2।” पुनः वैसे - “भूतल भावन होत भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अयो. 237। 3।” यह तो जड़ों का काम है किन्तु अयोध्यापुरी तो दिव्य है। अजड़ परम चैतन्य त्रिपाद विभूति से आयी है। इक्ष्वाकु की तपस्या के कारण स्वयं भगवान् और भगवदपुरी आयी है। वहाँ त्रिपाद विभूति का स्थल भी परम चैतन्य है। सोई कहा है कि ‘नित्यमजडम्’ नित्य और अजड़ है। ‘कावेरी विरजा सेयं वैकुण्ठं रंगमन्दिरम्।’ वह रंगमन्दिर अयोध्या में भी रामचन्द्र जी के समय तक वर्तमान है। श्रीरंगशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुलदैवतम्। सप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीवलोचनः। प. पु. उ. खण्ड 244। 61-62।” इसी प्रकार परम दिव्य श्री अयोध्या दिव्य रूप परम चैतन्य है वही इस संसार में प्राकृतभूमि रूप में वर्तमान है और सर्वलोकाधिनायक भगवान् इस लोक में प्राकृत पुरुष के समान “आत्मानं मानुषं मन्ये। वा. रा. युद्ध. 117। 11।” है। भाव यह है कि जब अयोध्याधिनायक ही प्राकृत के समान



हैं तो वह पुरी भी प्राकृत समान रही। किन्तु जब जंगल भगवान् को आते हुए जाना तो उसके आनन्द के मारे जड़ता भूल गयी। दिव्य चैतन्य होकर परम सुहावन रूप बन गयी है। इसमें यही रहस्य है। भगवान् की सेवा के लिए इस रहस्य में विशेषता यह है कि दिव्य है। भगवान् परवासुदेव रूप और अर्चा श्रीरंग रूप तथा वैभव श्री राम रूप - यह तीन स्वरूप एक ही हैं। ऐसा जानना चाहिए।

**21** | “धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। उ. 4। 2।” मिलन काल में वशिष्ठ जी के साथ मिलकर आगे श्री जानकी तक “सीता चरन भरत सिर नावा। उ. 5। 1।” पर्यन्तलौकिक शिष्टाचार को आगे पीछे मिलकर रक्षा किए हैं। किन्तु सब अवधवासियों के हृदय में परिपूर्ण परम प्रेम है। वैसे ही सबको भगवान् से मिलने के लिए अत्यन्त व्यग्रता है। इसलिए सर्वान्तर्यामी होने के कारण जैसे अज्ञात जलपात्रों में एक बार सूर्य का विम्ब हो जाता है या अनेक स्थानों में एक समान सम्बन्ध रहने पर विजली जल जाती है, वैसे भगवान् अवधवासी वाल-वृद्ध सबसे एक समान एक बार मिले हैं, इसी से समदर्शिता की रक्षा की है।

**22** | “छन मह सबहि मिले भगवाना। उ. 5। 4।” जैसे गौ के सम्मुख भोजन की तथा भोजन के सामने क्षुधातुर को किसी कारणवश विलम्ब होने से अत्यन्त असह्य होता है उसी प्रकार अवधवासियों को राम जी के आने में विलम्ब होने से अत्यन्त व्यग्रता बढ़ रही थी। इसलिए अनन्त रूप होकर भगवान् एक ही बार सबसे मिले हैं, सो ऐश्वर्य दिखाये हैं। इसमें यही रहस्य है।

**23** | “प्रेरित ब्रह्म अस्त्र सो धावा। अर. 1। 1।” जयन्त ऐसा अपराधी को रामजी का अमोघ ब्रह्मास्त्र तुल्य वाण क्यों नहीं मार सका? उत्तर - जानकी माता का मातृ-वात्सल्य गुण का तथा राम जी का शरण्य गुण का विकास नहीं होता, ईश्वर तत्व के समान ऐश्वरी भी व्यापिका है। अतः रामवाण के प्रयोग काल से ही सीता जी का मातृरक्षण-पोषण गुण धावा करके जयन्त की रक्षा करते रहा है। “कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति।” पुत्र भले ही कुपुत्र होते हैं किन्तु माता कुमाता नहीं होती है। जयन्त के आने पर सीता जी ने कहा है “वधार्थमपि काकुत्थ कृपया परिपालय। वा. रा. सु. 38। 35।” हे रामजी! यह तो मारने योग्य है ही किन्तु अपनी कृपा द्वारा इसकी आप रक्षा कीजिये। ऐसा कहने से दया गुण का विशेष प्रकाश हुआ है। इसमें यही रहस्य है।

**24** | कौशल्या को राम जी ने अपना रूप दो बार दिखाया। जन्म काल में और भोजन काल में, किन्तु दशरथ जी को एक बार भी क्यों नहीं?

उत्तर - स्त्रियों के लिए सतीत्व धर्म प्रधान है सो कौशल्या में था और पुरुषों के लिए पत्नीव्रत चाहिए सो दशरथ जी में नहीं था याने तीन विवाह किया था। अतः राम जी ने अपना स्वरूप नहीं दिखाया। कौशल्या जब सती होने चली तो भरत जी ने रोका है - “गहि पद भरत मातु सब राखी। अयो 169। 1।”

**25** | “निज उरमाल वसन मनि वालितनय पहिराइ। विदा कीन्ह भगवान तव बहु प्रकार समझाइ। उ 18।” प्रश्न - बहुत प्रकार से क्या समझाया गया है?

उत्तर - (क) “पिता वधे परमारत ओही। राखाराम निहोरा मोही। किष्क 25। 3।” अंगद के हृदय में वाली के मर जाने का और सुग्रीव के मरवाने का संस्कार बना हुआ था। इसलिए भगवान् ने यह विचार किया कि प्राकृत जीव का चित्त सदा ही चंचल रहता है और बुद्धि भी बदलती रहती है तो इसलिए अंगद को किष्कन्धा भेजा जाता है और ऐसा होता है कि किसी भी सम्बन्धी की वस्तु देखकर सम्बन्ध और सम्बन्धी स्मरण हो जाता है। जैसे अंगूठी मिलने पर सीता जी को श्री राम जी का स्मरण हुआ। ऐसा विचार भगवान् करते हैं कि अंगद को किष्कन्धा जाने पर इसका पिता वाली अवश्य स्मरण होगा साथ ही यह भी स्मरण होगा कि पिता को सुग्रीव ने मरवा दिया था। ऐसा स्मरण होने पर कदाचित् परशुराम के समान पिता का वैर लेकर परस्पर चचा और भतीजे में घोर युद्ध हो चलेगा। परिवार में कलह न होने पावे इसलिए भगवान् समझाते हैं कि वीती हुई घटना को लेकर परस्पर वैर नहीं करके दोनों परिवार मिलकर नेम-प्रेम से रहना।

(ख) यह भी भगवान् ने कह सुनाया कि वाली-सुग्रीव के बीच जो कलह हुआ था उसमें वाली ही का अत्याचार था यानी बलवान

होने के कारण वाली ने विशेष अत्याचार किया था। रुमा (सुग्रीव की स्त्री) को ले लिया था, सुग्रीव को घर तथा राज से निकाल दिया था तथा हमेशा मारने की कोशिश करता रहता था। यथा - “ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरौ विहाला।।” “हर लीन्हा सरवस अरु नारी। कि० ५।६।” इत्यादि। सुग्रीव से जो भूल हुई थी वह दुंदुभी के भय वश न कि राज के लोभ के कारण। नीति में यह सर्वदा सिद्ध है कि धोखा में पड़कर अनजाने कोई अपराध भी हो जाय तो वह क्षम्य है। मंत्रियों ने बलात्कार सुग्रीव को राज्य दिया न कि वह स्वयं राज्य को चाहता था। इस प्रकार निर्दोष सुग्रीव को वाली ने अभिमान वश ‘हर लीन्हा सरवस अरु नारी’ सब प्रकार से दुःख दिया था। ऐसा जानो कि सब प्रकार से वाली का ही दोष था न कि सुग्रीव का।

(ग) ऐ भक्तवर अंगद ! तुम यह भी जानो कि मेरे द्वारा वाली के मारे जाने का प्रधान हेतु तो यह है कि वालीकृत अपराध का प्रायश्चित्त तो प्राणदण्ड ही है। इस दण्ड से पीछे नरक में जाना नहीं पड़ता है। यह ऐसा घोर पाप था कि भरत को भी लगता, कारण की यह भूमि इक्ष्वाकु की है। इस कुल में भरत ही राजा हैं और प्रजाकृत पाप राजा को भी लगता है। प्राणदण्ड होने से राजा प्रजा दोनों निष्पाप रहे। ऐसा कहकर भगवान् ने अपने और सुग्रीव दोनों को कलंक से बचाया है और धर्मशास्त्र को सत्य प्रमाणित किया है। इसकी जानकारी से अंगद के हृदय में छोभ नहीं रहेगा।

(घ) अंगद! तेरी माता परम सती है। सतीत्व धर्म का भली भाँति पालन किया है। इसी प्रभाव से हमारे परमत्व को जानती है। उसने वाली को समझाने का प्रयत्न किया था, जैसे - “सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। ते दोउ बन्धु तेज बल सींवा। कि० ६।१४।” तेज तथा बल के सीव शब्द से परमत्व को बताती है, जैसे - “अप्रमेयो हि तत्तेजो यस्यैषा जनकालजा। वा. रा. अर. ३७।१८।” “यच्चन्द्रमसि यचाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। गी. १५।१२।” “बलं बलवतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। गी. ७।१०।११।” तारा ने इस प्रकार समझाकर उसे बचाने का उपाय किया था किन्तु उसने अभिमानवश एक नहीं माना। उसने हमको भी अपमानित किया था। मैंने उसके समीप पर्वत पर वास किया परन्तु उसने मुझे भरत का प्रतिनिधि नहीं मानकर दोनों को अपमानित किया। तो भी हमने उसे मारकर भी राम-धाम को भेजा है। अतः तुम अपने पिता के ताप से भी संतप्त न होना।

(ङ) अंगद! और सुनो। हम जानते हैं कि पिता के स्थान पर पुत्र को राजा होना चाहिए किन्तु यह भी प्रबल नीति है कि विजित राज्य का अधिकारी विजेता ही होता है। इस नियम से यह राज्य हमारा हुआ और सुग्रीव को तुमसे बड़ा जानकर उसे राजा बनाया और तुमको युवराज पद दिया। राजा ‘मुख स्थानीय’ होता है और युवराज ‘हस्त स्थानीय’ राजा तो केवल आज्ञा देता है, कार्यकर्त्ता तो केवल युवराज ही होता है। अतः ऐ अंगद! तुम्हें ही सारा राज्य-कार्य करना है। ऐसा समझ सब प्रकार से प्रजा यानी भालू वन्दरों की रक्षा करना।

(च) अंगद! वाली बलशाली तो था ही। उसके प्रतिद्वंदी का आधा बल भी उसमें चला आता था। इससे वह सबों को जीत लिया करता था। यहाँ तक कि रावण को भी वगल में रख लिया था। ऐसे बहूतों को उसने जीता था। इसी डर से सुग्रीव भी भागे फिरते थे। ऐ अंगद ! सम्भव है कि वाली द्वारा पराजित सभी लोग किष्किन्धा पर आक्रमण कर सकते हैं परन्तु तुम डरना नहीं। यदि ऐसा समय आये तो समाचार देने पर मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूँगा।

(छ) अंगद! मैं जानता हूँ कि तुम यहाँ से जाना नहीं चाहते हो परन्तु यह विचार करो कि जिस समय सभी भालू वन्दर अपने स्वजनों से मिलकर पारिवारिक आनन्द प्राप्त करेंगे उस समय तुम्हारी माता तारा, जिसके तुम एकमात्र आधार हो, की क्या दशा होगी? अतः मेरा वचन मानकर इस बार जाकर उसे धैर्य बंधा कर पुनः लौट आना। ऐसा करने से हमारे लिए भी एक न्याय और रीति होगी।

(ज) अंगद! तुम कहते हो कि ‘नीच टहल गृह के सब करिहउँ। उ. १७।४।’ सो यथार्थ है। परन्तु उत्तम तो यह है कि ‘उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारीतु मध्यमः।’ उत्तम भक्त या पुत्र का काम है कि वह पिता के कार्य को बिना कहे ही करे और मध्यम भक्त या पुत्र का काम है कि वह कहने पर करे। देखो मेरे भाई भरत ने कहा है “आज्ञा सम न सुसाहिव सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा। अयो

300।2।” यानी आज्ञा पालन के समान और कोई दूसरी उत्तम सेवा नहीं है। ऐ अंगद! तुम तो मेरा स्वाभाव जानते ही हो। विभीषण की शरणागति काल में मैंने कह दिया था “दोषो यच्चपि तस्यस्यान्तर्ज्येयं कथञ्चन। वा. रा. यु. 18।3।” शरण में आने पर तो दोषी को भी दोष सहित अपना लेता हूँ। तुम तो परमपवित्र हृदयवाले हो, मैं तुम्हें छोड़ता नहीं हूँ अपितु तुम्हें सिर्फ तारा के आश्वासन के लिए ही भेज रहा हूँ। अन्य भाव मन में नहीं लाना। मेरा ही नाम अच्युत है। मुझे प्राप्त करने पर किसी की भी च्युति नहीं होती है। ऐसा तुम विश्वास रखो। किष्किंधा जाकर माता को धैर्य बँधवाकर फिर आना।

(झ) यह जो कहा कि “भरती वेर नाथ मोहि वाली। गयेउ तुम्हारेहि कोंछे घाली।।” “मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।” “राखहु सरन जानि जन दीना।।” “प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।” उ. 17।1,2,3।” तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारी रक्षा का दायित्व हमारे ऊपर आ गया किन्तु तुम्हारे सम्बन्ध से ही तुम्हारी माता, परिवार तथा राज्य की रक्षा का भी भार हमारे ऊपर आ गया है। जानने वाले जानते हैं कि ‘दशपूर्वान्दशापरान’ यथा ‘कुलकोटि समुधृत्य विष्णुलोके महीयते’ इत्यादि। सभी कहते हैं कि ‘प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई। अयो. 207।4।’ तथा यह भी तुम जानते हो कि विभीषण के नाते रावण को भी भाई ही माना था ‘यथा तव तथा मम’। रावण जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही तुम्हारे नाते मेरा भी। हमारा जानकर तुम उसका दाहादिक संस्कार करो और विभीषण ने किया भी। उसी प्रकार तुम्हारे नाते तुम्हारा सर्वस्व हमारा है। हमारा जानकर तुम किष्किंधा की रक्षा करो यही हमारी सेवा होगी।

(ज) भक्तवर! तुम मेरे स्वभाव से परिचित हो ‘तस्याहं न प्रणम्यामि स च मे न प्रणम्यति। गी. 6।30।’ भक्त हमारी दृष्टि से विलग नहीं रहता है और हम भक्तों से विलग नहीं रहते ‘साधवो हृदयं मह्यमसाधुनां हृदयं त्वहम्’ मैं अपने भक्तों को हृदय में रखता हूँ और भक्तों के हृदय में सदा निवास करता हूँ। ऐसा मत मानो कि मैं विलग कर रहा हूँ। “वने मयूरा गगने च मेघा लक्षान्तरे भानु जले च पद्म, द्विलक्षसोमो कुमुदो जले वा यो यस्य चित्ते न कदापि दूरः।” अंगद ! तुम ऐसा जानो कि प्रेमी अपने मित्र से विलग नहीं रहता। हमें तुम अपना सदा अपने साथ ही जानो और माता को धैर्य देकर आओ। ऐसा समझाकर भगवान् ने अपना वस्त्र और हृदय में रहनेवाली मणियों की माला दिया। इसका भाव यह है कि जैसे वस्त्र सततशरीर का रक्षक है - शीतोष्ण से बचाता है - वैसे ही मैं तुम्हारा रक्षक बना रहूँगा। माला हृदयस्थ वस्तु है। इसका भाव यह है कि मैं हृदय से तुम्हारे साथ हूँ। हृदय के बिना शरीर की जो दशा है, वही दशा तुम्हारे बिना मेरी है।

इस प्रकरण में सब वन्दरों से भगवान् ने कहा “अव गृह जाहु सखा सब.....। उ. 16।” ऐसा पद कहा है और अंगद के प्रति “विदा किये ...। उ. 16।” पद का व्यवहार किया है। इस शब्द से अंगद की अधिक प्रतिष्ठा हुई है। अंगद के शब्द सुनकर भगवान् ने उन्हें हृदय लगा लिया, दोनों नेत्रों में जल भर आया। यह देखकर अंगद को विश्वास हो गया कि भगवान् मुझे अपनाये हुए हैं। “मन अस रहन कहहिं मोहि रामा। उ. 18।2।” ऐसा विश्वास अंगद को था। पर जब जाने की आज्ञा होती है तब कवि का कहना है कि “कुलिसहु चाहि कठोर अति। उ. 19।” इस पर अंगदप्रेम में डूबे नेत्र से प्रार्थना करते हैं तो राम जी भी उन्हें आँसू भरे नेत्रों से उन्हें हृदय से लगाते हैं। इसीलिए “कोमल कुसुमहि चाहि। उ. 19।” कहा गया है। भाव यह है कि जो जिस रूप से भगवान् को देखता है वे उसी रूप से उसे देखते हैं। “ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। गी. 4।11।” भगवान् कठोर नहीं हैं। कठोरता तो दोष है। भगवान् अंगद को भक्तिमती तारा की रक्षा के लिए भेज रहे हैं। तारा ने भगवान् से भक्ति की याचना की है और भगवान् ने उसे ज्ञान भी दिया है। “उपजाज्ञान चरन तव लागी। लिहैसि परम भक्ति वर मांगी। कि. 10।3।” परम भक्ति को ऐसे जानना चाहिए कि कहीं पर दीर्घ की जगह ह्रस्व से भी लिया गया है। जैसे, ‘मातहि पितहि’ ‘परो मा यस्मात्त्वा यस्याः सा परमः’ की जगह पर ‘परम’ शब्द है यानी अविरल भक्ति, अनन्य भक्ति, प्रेम भक्ति आदि सर्वों से उत्कृष्ट भक्ति तारा ने माँगा और वही भक्ति तो गीता 18 के 54 वें श्लोक में कहा है। इसके पहले साधनों को कहकर ‘मद्भक्तिं लभते पराम्।’ वही भगवान् दिये हैं। ज्ञान देने पर ही ज्ञान द्वारा भक्ति माँगी थी। विशेष भाव यह है कि भगवत्प्राप्ति के लिए ‘मातापितरौ रुदतः प्रव्रजति पुत्रः।’ कहा है, किन्तु सुनीति, सुमित्रा, तथा कयाधु जैसी माताओं को त्यागने के लिए नहीं कहा है। वैसा ही व्यास, भरद्वाज, हारीतादिक पिताओं को भी त्यागने नहीं

कहा है। इसलिए भगवान् अंगद को भेज रहे हैं। जैसे शुकदेव जी व्यास जी को छोड़कर भागे थे किन्तु जब भागवत के रस सुने तो पुनः आकर स्वयं पढ़े हैं। इस प्रकार तारा ज्ञानमती होती हुई भी भक्तिमती रही। इसलिए इसकी भक्ति के वश होकर भगवान् अंगद को बुलाये हैं। ऐसा अश्वमेध में पाया जाता है। युवराज होते हुए भी अंगद को भगवान् के साथ रहना होता है। अंगद को भेजने में उपरोक्त यही रहस्य है।

26। “मन्त्रिन सहित यहाँ एक वारा। बैठि रहेऊकछु करत विचारा। कि 4।2।” किस विषय पर विचार कर रहे थे? उत्तर - एक समय सुगीव ने अपने सब मन्त्रियों को बुलाकर पूछा कि हे मन्त्रिगण! आप लोग यह तो विचारिये कि वाली ने हमारी स्त्री समेत सर्वस्व लेकर ग्राम से निकाल दिया जिससे किसी तरह यहाँ प्राण बचा रहा हूँ तो इस काल में हमारा क्या कर्तव्य है? इस पर एक मंत्री बोला कि दैवी बल से ही काम हो सकता है और सब देवताओं में त्रिदेव, सूर्य और राजा इन्द्र हैं - इन्हीं से सहायता लेनी चाहिए। दूसरा बोला कि इन्द्र पापात्मा को कौन नहीं जानता कि ध्रुव की तपस्या भंग करना चाहा था, अहिल्या को धर्मभ्रष्ट किया, सहस्रभगी बना और वह अपना पुत्र वाली के पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष में कब काम करेगा? अतः उसका नहीं करना चाहिए। तीसरे ने कहा कि ब्रह्मा के पास चलो उनसे सहारा मिलेगा। चौथे ने कहा कि वे तो स्वयं अपने की रक्षा न कर सके, मधुकैटभ वेद हर लिया और रुद्र ने शिर काट लिया तो वे दूसरे की रक्षा कैसे कर सकेंगे? पाँचवें ने कहा महादेव जी से सहारा मिलेगा। तब छठे ने कहा कि शिव तो संहार करने वाले हैं। वे अपनी वृत्ति छोड़कर रक्षा कैसे करेंगे? वृकासुर ने उनको खदेर कर भस्म करना चाहा तो विष्णु ने उनकी रक्षा की। जैसे सर्वकल्याण करने वाले एक नारायण को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। भगवान् नारायण सर्व कल्याण गुण के अयन हैं। उनके कल्याण गुणों में एक प्रधान करुणा गुण भी है जिसे दया या कृपा कहते हैं। उसी भगवान् की कृपा से सहेतुकी और निर्हेतुकी कृपा भी होती है। वह सहेतुकी कृपा होना तो जीवों के लिए असाध्य है असम्भव है। किन्तु निर्हेतुकी कृपा का ही ज्ञानी या भक्त लोग सदा आशा करते हैं। इसी की आशा करती रहनी चाहिए क्योंकि ऐसी क्षीणावस्था में दीनबन्धु से ही भलाई हो सकती है। ऐसे ही मंत्री लोग कह रहे थे और इसी प्रकार उधेड़-बुन में हमलोग बैठे थे। उसी काल में आकाश मार्ग से “राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देख दीन्ह पट डारी। कि 4।3।”

27। क। “अतिलालसा सवहि मन माही। नाम ग्राम पूछत सकुचाही।।

जो तिन मह वय वृद्ध सयाने। तिन करि युक्ति राम पहिचाने।। अयो 109।2।” वह कौन सी बुद्धि थी जिसके द्वारा राम को पहचाने?

उत्तर - छोटे अवोध बच्चे सबके प्रेम के पात्र होते हैं और अपराध करने पर भी निर्दोष समझे जाते हैं। उनकी बोली बड़ी मीठी होती है। इसलिए जो चतुर वृद्ध था उसने एक अवोध बच्चे को प्रश्न लिखा दिया राम जी से नाम-ग्राम पूछने के लिए। राम जी सबों के भाव जानकर अपना नाम-ग्राम तथा वनवास के सब समाचार कह सुनाये हैं। वानप्रस्थ और संन्यास दो आश्रम विरक्त का है। इसलिए तीनों आश्रमियों को पूर्व का नाम बदल दिया जाता है तथा ग्राम-त्यागी होते हैं। इसलिए इन दोनों आश्रमियों का नाम-ग्राम नहीं पूछना चाहिए - 'नाम ग्राम पूछत सकुचाही।' और इन आश्रमों के लिए कहीं कहीं अवस्था भी बताई गई है। सो अवस्था राम जानकी की नहीं है और वानप्रस्थ का वय है, अतः पूछना था कि आप कहाँ के हैं कि बिना अवस्था ही के वानप्रस्थ बने हैं। किन्तु जानकारी के लिए पूछने में यह युक्ति किये कि आप कब से वानप्रस्थी हुए हैं? ऐसे ही प्रश्न करने पर इनके हृदय का भाव जानकर पूर्व का अपना हाल कह दिये। तब सबों को ज्ञात हुआ है।

27। ख। “को साही सेवक ही निवाजी। आप समान साज सब साजी। अयो 298।3।” ऐसा कौन राजा है कि जो दया करके अपने सेवक को अपने योग्य बनाकर सदा अपनी सेवा लेता हो? अर्थात् कोई नहीं, अगर हैं तो श्री रामचन्द्र जी ही। जैसे जटायु को अपने समान दिव्य देह बनाकर भेजा। वैसे कहा है - “गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा।। श्याम गात विशाल भुज चारी। अर. 31।1।” 'भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। ब्रसू 4।4।21।' श्रुति कहती है 'मम साध्व्यमागता।' ऐसे अपने समान बनाने वाले हैं तो



एक भगवान्ही हैं।

28। श्रीराम जी के राज्याभिषेक के पूर्व वशिष्ठ जी के आज्ञानुसार राम जी सीता जी के साथ श्रीरंग मन्दिर में संयम- नियम के अनुसार शयन किये। उस समय राज शुभ सूचक सकुन हुआ। “राम सिये तन सकुन जनाये। फरकही मंगल अंग सुहाये। अयो 6।4।” अर्थात् राम जी के दाहिना और सीता जी के वाम अंग फरकने लगे।

प्रश्न - यह सकुन का फल प्रतिकूल क्यों ? न तो अभिषेक हुआ न राजा हुए और उलटा यह कि रात्रि-उपवास किये हुए भोर में भूषण वस्त्र उतारा जाना, कठिन प्रतिज्ञा कि ग्राम में न जाना, अन्न न खाना, भूमि पर शयन करना, वानप्रस्थों का नियम पालन करना कि जिसके कारण दशरथ जी का शरीर परित्याग, वनवास के कारण सीता हरण, लखन लाल को शक्ति लगाना, नाग वन्धनादि कठिन दुःख हुआ, अयोध्या में घोर विपत्ति - यहाँ तक कि 'अपिवृक्षा परिम्लाना पुष्पांकुर कारका। वा रा अयो 59।4।' अर्थात् तलता गुल्मादिक सूख गये और चैतन्यों की तो दशा ही कहना क्या ? यह सब अपसकुन हुआ तो सकुन कैसा?

उत्तर - श्री राम जी ने सुना कि पिता जी ने पंचों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा है कि राम जी को राजा बनाया जाय। ऐसा कहने पर सर्वों ने कहा कि अवश्य कीजिये। जब सर्व सम्मति से यह पास हो गया तब श्री राम जी को यह खटका कि 'विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः। तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम। वा रा अयो 4।25।' ऐसा क्यों ? “रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाय वरू वचन न जाई। अयो 27।2।” अर्थात् प्राण दे देना उचित है किन्तु मिथ्यावादी होना नहीं चाहिए। सो पिता जी भरत को पूर्व में ही राज देने को कहकर अब हमें राजा बनाना चाहते हैं और भरत को धोखा दे रहे हैं। उनको खबर तक न देकर तुरत चुपके से राज देने की तैयारी हो रही है - “राम हृदय अस विस्मय भयउ। अयो 9।2।” यह चिन्ता की बात है और “विमल वंश यह अनुचित एका। अयो 9।4।” “प्रभु सप्रेम पछताई अघाई। हरेहुँ भरत मन की कुटिलाई। अयो 9।4।” यह एक ऐसा घोर अनुचित है जैसे दिव्य देह में एक श्वेत कुष्ठ का चिह्न ही यशस्वी कुल को कलंकित कर देते हैं। श्री राम जी इन सब विषयों से चिन्तित हैं- हमारे प्राण से प्यारे भरत से राजगद्दी छीनी जा रही है। कुलकलंक लगाना चाहता है तथा मैं वन्धन में पड़ना चाहता हूँ। कहा भी है - “नव गयंद रघुवंशमणि राज अलान समान। अयो. 51।” जिस काल में श्री रामचन्द्र जी की राजगद्दी की तैयारी की गयी थी उस समय राजा दशरथ जी की अवस्था साठ हजार वीताकर पच्चीस वर्ष भी पूरे हो चुके थे। आगे उनकी आयु समाप्त हो चुकी थी और यह भी श्री रामचन्द्र जी सोच रहे थे कि अन्ध मुनि के शाप का कोई निमित्त नहीं तो उनका वचन भी मिथ्या होगा तो यह भी महान्धर्म के प्रतिकूल होगा। अतः उनके वचन को भी सत्य करने कराने का दायित्व मेरे ही ऊपर है। कारण कि हम कह चुके हैं कि “धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे। गी. 4।8।” और इधर पिता जी राज्याभिषेक की तैयारी भी कर चुके हैं और गुरुदेव के आज्ञानुसार वाध्य होकर संयम-नियम में भी प्रवृत्त होना पड़ा। तथा इसके प्रतिकूल जो जो विषय उपस्थित है उनको लेकर श्री रामचन्द्र जी चिन्तित होकर उपाय ही ढूँढ़ रहे थे कि किस काल में शुभ सूचक अंग फरके हैं। इसलिए कि सब चिन्ता दूर होकर सब आश्रितों के साथ धवल यश की ध्वजा संसार में फहरायेगी और मेरा ही नाम धर्म है और धर्म अधिष्ठातृदेव भी मैं ही हूँ। 'धर्माधर्म विदुत्तमः। विष्णु सह. 43।' सब कोई कहते हैं कि रामो विग्रहवान् धर्मः। वा. रा. अर. 37।13।” राम सीता जी को निन्द्रा न आने का कारण तथा इन सब द्वंद मिटने का तथा अपना और भक्त जनों का गुणगण कार्य सिद्ध होने का शुभ सकुन हुआ है। “भरत प्रानप्रिय पावही राजू। विधि सब विधि भा सम्मुख आजु। अयो 41।1।” अर्थात् भरत भाई से मिलन होगा। अंग स्फुरण में शुभ सकुन जान-मान कर राम जी को प्रसन्नता होती है कि यह राज वन्धन से मैं मुक्त होऊँगा और भरत लाल का राज होकर और सब कुल कलंकता मिटने की संभावना हो रही है। राम जी “धर्म धुरीन विषय रस रूखे। अयो 41।1।” राज नहीं चाहते हैं। (क) जंगल प्रस्ताव द्वारा भगवान् के सब अंगी- अंगों के गुणों का विकास हुआ है।

(ख) सीता जी के प्रति पत्नी के भाव, संबंध, सतीत्व धर्म तथा स्त्री जातियों को उपदेश “प्रभा रहे कहँ भानु विहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई। अयो 96।3।” से संबंध, अग्नि-परीक्षा से सतीत्व “तृण धरि ओट कहति वैदेही। सुन्दर 8।3।” स्त्रियों को अन्य पुरुषों से नेत्र

मिलाकर नहीं वोल्ना चाहिए। जयन्त की रक्षा से शरण्य गुण और पुरुषकार गुण तथा लंका वनवास से सुग्गी (पक्षी) वचन का पालन। (ग) सुमित्रा-लक्ष्मण के प्रसंग से मातृत्व गुण तथा शेषत्व गुण का परम प्रकाश हुआ है। (घ) जड़ों को प्रेम, अवध का वृक्षादिक सुखना-मुरझाना और जंगल का “सब तरु फलै रामहित लागी। लंका 4।3।” (ङ) पशुओं का प्रेम “रथ हाँके हय राम तव, हेरि हेरि हिहँनाही। अयो. 99।” “देखि दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं। जिमि विनु पंख विहंग अकुलाहीं। अयो 141।4।” “नहीं तृण चरहीं न पियाहिं जल लोचन मोचत वारि। अयो. 142।” (च) निपाद राज का प्रेम। (छ) भरत जी का प्रेम - “भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही। अयो 217।4।” पादुका का प्रभाव सबसे पहले भरत जाने हैं। भरत जी से पहले पादुका पूजने की प्रथा नहीं रही। यह धर्म भरत जी से प्रकाशित हुआ है। यह सबसे बड़ा धर्म है। “भरत महा महिमा जल राशि। मुनि मति तीर ठार अवला सी। अयो. 256।1।” भरत जी के महत्व कहने में वशिष्ठ जी भी सामर्थ्यशाली नहीं हैं जैसे समुद्र तैरने में निर्वल जाति स्त्री। (ज) वनवासियों का प्रेम - “जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे। अयो. 216।1।” “ते सब भये परम पद जोगु। अयो. 216।1।” “कहु सखि मातु-पिता इन्ह कैसे। जिन पठ्ये वन वालक ऐसे। अयो. 110।4।” (झ) सुतीक्ष्ण जी का प्रेम। (ञ) जटायु जी का जानकी जी के लिए प्राण देना और श्री राम जी द्वारा जटायु की मुक्ति। (ट) सब-विधि शवरी की भक्ति और पूजन।

29। “शृंगी ऋषिही वशिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा।। बाल 188।2।” प्रश्न - रघुवंशियों के गुरु-पुरोहित ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ जी होते हुए भी पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए शृंगी ऋषि क्यों बुलाये गये ?

उत्तर - वेद को चार टुकड़े कर के ऋषियों को बाँट दिया गया था और वे ही उस वेद के अधिकारी हुए। कहा भी है श्रीरामायण तथा भागवत में - “शिष्यैः प्रशिष्य तच्छिष्यैः वेदास्ते शाखिनोऽभवत्।।” उन्हीं में से एक आथर्वणिक (अथर्व) वेदाधिकारी शृंगी ऋषि थे जिन्होंने कहा है कि “इष्टि तेहं करिष्यामि पुत्रियां पुत्र कारणात्।।” शृंगी ऋषि अथर्व वेदाधिकारी थे इसलिए पुत्रेष्टि यज्ञ में बुलाये गये थे। वशिष्ठ जी अथर्व वेदाधिकारी नहीं थे इसलिए उनके रहते हुए भी शृंगी ऋषि बुलाये गये।

30। “प्रौढ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहीं पाछिल वाता। अर 42।4।” प्रश्न - वह पीछे की बात क्या है?

उत्तर - (क) जो जीव माता के अहार के अधीन सुख-दुख भोगता रहा है, जैसे माता के वायुकारक भोजन से पुत्र के उदर में दर्द होता है उसी प्रकार से कठिन भोजन से बच्चे को अजीर्ण होता है, सर्द भोजन से सर्दी, गरम से दाह। यह सब गुण-दोष माता के दूध में हो जाता है और बच्चा स्वयं भोजन पर रहता है, तब माता का दूध छोड़ देता है। तब वह बात नहीं रहती है कि माता के भोजन पर बच्चे को सुख या दुःख हो। (ख) अथवा सदा माता बच्चे को गोद में रखती है, दूध पिलाती है, बच्चे के रोग को दूर करने के लिए स्वयं दवा खाती है - ऐसा नहीं होता है। (ग) अथवा बच्चा अज्ञानवश आग, सर्प विच्छू को भी धर लेता है इसलिए माता को चिन्ता रहती है - ऐसी बात नहीं रहती है। (घ) छोटे बच्चों को संग का दोष भी लगता है इससे बचाना पड़ता है और प्रौढ़ों के लिए माता निश्चिन्त रहती है। (ङ) इसी प्रकार बच्चों को सदगुणी बनाने का दायित्व माता पर रहता है और प्रौढ़ावस्था में सब गुण प्राप्त कर लेता है जिससे माता के हृदय में संतोष हो जाता है - अतः यही पाछिल वाता है।

31-क। “जे ज्ञान मान विभक्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी। ते पाय सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि। उ. 12। छंद 3।” प्रश्न - सुरदुर्लभ पद से पतन होना कौन पद है? क्योंकि मुक्ति पाकर गिरना संसार में नहीं होता है।

उत्तर - जैसे कहा है कि “यद गत्वा न निवर्तन्ते। गी. 15।6।” “न तस्य पुनरावर्ति”, “गई सो जहँ नहीं फिरै।।” शवरी के समान ही कैवल्य आत्मानुभावियों को भी संसार से निवृत्ति होने पर भगवान् के परमधाम नहीं जाकर भगवत्प्राप्ति विना भी आत्मानुभवी बनकर कैवल्य स्थान में रहकर नित्य के समान ही रहते हैं। उनका भी पतन नहीं होता है और यह स्थान भी देवताओं को दुर्लभ है। उसी प्रकार देवताओं को मुक्ति भी दुर्लभ है। “साधन धाम विबुध दुर्लभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हों। वि. पत्रिका 102।” यहाँ पर धाम और पद मनुष्य-देह का वाचक है। जब उसे पाकर भी अगर मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई और संसारी ही बने रहे - वही पतन है। तथा यहाँ से नरक भी जाना पतन होता है। जीवन मरन में नरक स्थान दक्षिण अधोभाग में है। वहाँ जाना ही पतन है।

मनुष्य -देह देवता की देह से उत्तम है क्योंकि देवदेह से मोक्ष नहीं मिलता है। मनुष्य देह से ही मोक्ष की प्राप्ति हाती है। अतः मनुष्य-देह देव-देह से उत्तम है। इस देह से मोक्ष का द्वार पाकर मोक्ष का न मिलना ही पतन है। “सुर दुर्लभ सुख करी जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं। उ. 14। 2।” इस प्रकार देवदुर्लभ मनुष्य देह है। “गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।” भारत का ही मनुष्य देह देवदुर्लभ है न कि अन्यत्र कहीं का।

**31-ख।** प्रश्न - यदि रामजी हित चाहते हैं तो मारे क्यों ? “काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करव वत कही सोई। लं. 16। 4।” अये ! अंगद सुनो, हमारा काम होते हुए भी शत्रु रावण का भी जिसमें परम हित हो वही तुम रावण से बातचीत करना। भाव यह है कि हमारा काम होकर ही रहेगा। जैसे लखन लाल कहे कि “जो सत शंकर करै सहाइ। तदपि हतौं रन राम दुहाई। लं. 74। 7।” वैसे “राम विरोध न उविरहहु सरन विष्णु अज ईस। सु. 56।” किन्तु रावण का नाश होना चाहिए कारण कि विभीषण का भाई है इसलिये उसकी भी हम रक्षा ही चाहते हैं। इस प्रकार समझना कि जिसमें लड़ाई न होकर दोनों प्रतिवादियों कुशल से रहें। अथवा हित चाहते हैं तो रिपु अर्थात् शत्रु क्यों कहते हैं ?

उत्तर - यह भगवान्में परमोत्तम गुण है कि शत्रुता होने पर भी कल्याण चाहते हैं। “अरिहुक अनभलकीन्ह न रामा। अयो 182। 3।” गुण का फल जानना चाहिए। रावण का हित के विषय में वचन - “मम जन कहिं तोहि रही मित्ताई। तव हित कारण आयेहुँ भाई। लं. 19। 1।” “अव शुभ कहा सुनहु तुम मोरा। सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा।।” ‘दशन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।’ ‘सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे। लं. 19। 3-4।” “प्रणतपाल रघुवंश मनि त्राहि त्राहि अव मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगे तोहि। लं. 20।”

“सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुआई।।” ‘जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोहि। लं. 26। 1।”

**32।** सुन्दर काण्ड में सब ही सुन्दर है। जामवान यह जो कहे कि “राम काज लागि तव अवतारा। किष्क. 29। 3।” यह देह रामकाज के लिए है- ऐसा ज्ञान सुन्दर है और उसी प्रकार राम सम्बन्धी सभी कर्म सुन्दर है। (क) “रामकाज सब करिहहु तुम वल बुद्धि निधान। सु. 2।” यह आशीष सुन्दर है। सुरसा की परीक्षा में पास होना, ‘हरपि चले हनुमान। सु. 2।’ - सुन्दर भगवत्कैर्कर्य होगा। यह परम प्रसन्नता की बात सुनाना आनन्द है। (ख) “रामकाज करि फिरि मैं आवौं। सीता की सुधि प्रभुहि सुनावौं। सु. 1। 2।” “सत्य कहहुँ मोहि जान दे माई। सु. 1। 3।” यह कैर्कर्य करके तुम्हारे मुख में बैठेंगे अर्थात् विघ्नकारिणी से चतुरता पूर्वक छुटकारा सुन्दर है। (ग) “अस मैं अधम सखा सुनु मोहु पर रघुवीर। किन्ह कृपा सुमरि गुण भरे विलोचन नीर। सु. 7।” दोनों भागवतों के परस्पर मिलने में ही सुन्दर सुख है और हनुमान्के रूप में प्रेम का चित्त तथा नेत्र में जल विकृत है। यह सुन्दर है। (घ) “रामचन्द्र गुण वरनै लागे। सुनतहि सीता के दुख भागे। सु. 12। 3।” रामजी की सुन्दर कथा से सीता जी का दुःख दूर हो गया। “श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। स. 12। 4। यह कथा ही सुन्दर अमृत है। (ङ) “जाना मन क्रम वचन यह कृपा सिन्धु के दास। सु. 13।” सीता जी ने हनुमान्को सुन्दर राम-दास जानकर ही उनपर कृपा की है। (च) “बुड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहु जलजाना। सु. 13। 1।” भाव यह है कि डूवती हुई सीता के हनुमान् ही सुन्दर आधार हुए हैं। अतः भगवान्के भक्त ही संसार से निकालने वाले सुन्दर आधार हैं। (छ) “रघुपति वान कृसानु निसचर निकर पतंग सम। .....जरहि निसाचर जानु। सु. 15।” यह उदाहरण परम सुन्दर है। ऐसा विश्वास ही सुन्दर है। (ज) “आशीष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात गुण ज्ञान निधाना। सु. 16। 1।” “अजर अमर गुणनिधि सुत होहु। सदा करहि रघुनायक छोहु। सु. 16। 2।” हे पुत्र ! तुम शेषत्व गुणनिधि होवो।

“शुभं वा पापं वा विगुण विपुलं वा गुण युतं। विदीनं दीनं वा चपल मति वा निश्चलमति।।

सदैवं तेहं भो मम तव सदा सन्धिरचला। इतिज्ञात्वाभीकं सकल समयं निर्भर सुखी।।” अर्थात् भक्त भगवान्से कहते हैं कि मैं शुभकर्म करने वाला हूँ अथवा पाप कर्म करने वाला हूँ, पुण्यात्मा हूँ या पापात्मा हूँ, चाहे गुणहीन हूँ या बहुत गुण युक्त हूँ, चाहे मैं दीन हूँ या अदीन, चाहे चंचल बुद्धि वाला हूँ या निश्चल बुद्धि वाला हूँ, हे भगवन्! मैं कुछ भी हूँ - हमारा आपके साथ अचल सम्बन्ध है ऐसा

जानकर सदा आपके भरोसे निश्चिन्त होकर सुखी रहता हूँ । (झ) “अव कृतकृत्य भयउँ मैं माता । सु. 16 । 3 ।” ऐसी विलक्षण बुद्धिमत्ता के कारण अपने को धन्य- धन्य माने हैं । हनुमान्ने अपना आत्मलाभ समझा - यह ज्ञान सुन्दर है । (ज) “केतिक वात प्रभु जातु धान की । रिपुहि जीति आनियजानकी । सु. 31 । 2 ।” ऐसी विस्वलता में किसी को साहस धैर्य देना सुन्दर बुद्धिमानी का काम है । यह एक अत्यन्त ही चतुर दूत का काम है । (ट) “सुनु कपि तोहि समान उपकारी । कोउ नहीं सुर नर मुनि तनुधारी । । ‘प्रति उपकार करों का तोरा । सन्मुख होइ न सकै मन मोरा । । ‘ पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता । लोचन नीर पुलकि अति गाता । । सु. 31 । 3 एवं 4 ।” सीता माता के तात्कालिक आशीष से यह भगवान्की सुन्दर कृपा हुई है । यहाँ भगवान्की सुन्दर कृपा हुई - गुण का सुन्दर विकास हुआ है और वानर की देह के समान किसी भी देवता, मुनि, मनुष्य को ऐसी देह नहीं मिली है । अर्थात् इस देह से हनुमान्ने कैकय किया है, वैसा हमारी देह से प्रतिउपकार नहीं होगा । इससे हम सदा तुम्हारे ऋणी रहेंगे । ऐसा वचन कहते हुए भगवान् खड़े हो गये और नेत्र से प्रेमाश्रु झर- झर गिरने लगे । भगवान् की ऐसी दशा देखकर हनुमान्ने आकुल होकर -

(ठ) “चरण पौउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत । सु. 32 ।” त्राहि नाथ ! त्राहि नाथ ! कहकर भगवान्के चरणों पर हनुमान्गिर गये । यह अत्यन्त ही सुन्दर चतुरता है । (ड) “प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा । सु. 32 । 1 ।” भगवान्के चरण कमल पर हनुमान्का मस्तक है और हनुमान्के मस्तक पर भगवान्का हस्तकमल है । यह दशा स्मरण करके महादेव जी मनमग्न हो गये हैं । यह सेव्य-सेवक का भाव सुन्दर है ।

(ढ) “कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा । कर गहि परम निकट वैठावा । सु. 32 । 1 ।” हनुमान्को भगवान्ने वलात्कार उठाकर अंक में लगा लिया और फिर हाथ धर कर समीप में बैठा लिया । ‘राम काज लागि तव अवतारा । किष्क. 29 । 3 ।’ खैकय में ही जन्म का फल वतलाया है । यह उपदेश अत्यन्त ही सुन्दर है । (ण) पहले भगवान्कहे थे कि मैं तुम्हारा ऋणी बना रहूँगा । इसलिए हनुमान ने विचार किया कि भगवान्को ऋणी बनाना अच्छा नहीं है । अतः इनसे कुछ मांग लेना ही अच्छा है अन्यथा भगवान्के मन में सदा संकोच बना रहेगा । ऐसा देखकर हनुमान्ने भगवान्से ऐसा कहा - “नाथ भक्ति अति सब सुख दायिनी । देहु भक्ति मोहि प्रभु अनपायिनी । सु. 33 । 1 ।” भाव यह है कि भगवान्के ऊपर कुछ देने का दायित्व न रह गया । यह सब सुन्दर काण्ड में सुन्दरता है ।

33 । “प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा । सु. 32 । 1 ।” प्रश्न - हनुमान्के लाभ से महादेव जी को प्रसन्नता क्यों ?

उत्तर - अच्छे लोग दूसरे के लाभ को अपना लाभ समझकर प्रसन्न होते हैं । जैसे - “पर दुख दुखसुख सुख देखे पर । उ. 37 । 1 ।” अथवा कोई हनुमान्जी को रुद्रावतार मानते हैं । इससे महादेव जी को अत्यन्त हर्ष हुआ कि एकादश रुद्र में से किसी एक रुद्र पर हस्त कमल पड़ने की कृपा नहीं हुई । केवल हनुमान्के अवतार होने पर ही भगवान्के हस्तकमल पड़ने की कृपा हुई है । इसलिए गौरीश प्रेम में मग्न हुए हैं ।

अथवा श्रीराम जी का कृतज्ञता गुण तथा उदारता गुण यहाँ प्रत्यक्ष रूप से चरितार्थ हुआ है । यह जानकर भी महादेव जी अत्यन्त प्रसन्न हुए कि हमारे स्वामी ऐसे कृतज्ञ और उदार हैं । इन्हीं गुणों के कारण वे भक्त के ऋणी बन जाते हैं । कारण कि “दातुनालं वशंगतः” भक्तों को देने पर कोई वस्तु न देखकर विवश होकर ऋणी बन जाते हैं ।

34 । “वरु अपयश सहतेउ जगमाहीं । नारि हानि विशेष छति नाहीं । लं. 60 । 6 ।” वह कौन अपयश सहने पर तैयार हैं ? विशेष क्षति क्यों नहीं ?

उत्तर - (क) विवाह-काल में पति-पत्नी एक साथ शरीर की छाया के समान रहने की जो प्रतिज्ञा किये थे अगर जानकी को साथ नहीं लाते तो अपयश होता कि रामजी ने विवाह कालिक प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया । भाव यह है कि अगर जानकी साथ नहीं आती लंका की लड़ाई का संयोग नहीं होता ।

(ख) सीता के हरण होने पर भी अगर लंका की लड़ाई नहीं होती तो जानकी प्राणान्त कर देती और लखन लाल की मृत्यु नहीं होती ।



विना स्त्री के रहना उतना हानिकारक नहीं है जितना हानिकारक लखनलाल की मृत्यु है। भाव यह है कि लक्ष्मी के विना भगवान् रहे हैं किन्तु शेष के विना नहीं रहे हैं। 'नारी हानि विशेष छति नहीं।' में अगर जानकी के विना संन्यास-आश्रम ग्रहण कर लेता तो कुछ भी हानि नहीं होती।

**35**। “दीन जानि प्रभु निज पद दीन्हा। वा 208।3।” प्रश्न - ताड़का को मारीच और सुवाहु ऐसे बलवान् पुत्र होने पर तथा स्वयं भी बलवती रहने पर उसे दीन क्यों कहा गया ?

उत्तर - स्त्रियों के लिए विधवावस्था सबसे दीनावस्था होती है और राक्षसी योनि पापमय होने पर भी पाप करना जिससे सदा नरक वास हो वही दीनावस्था है। यही देखकर भगवान् ने मुक्ति दी है।

**36-क**। “अस्थि शैल सरिता नस जारा। रोमावली अष्टदस भारा। लं. 14।4।” यद्यपि भार शब्द तौल परिमाण वाचक है फिर भी प्रसंगवश यहाँ पर संख्या वाचक जानना चाहिए जैसा कि यह पद का टुकड़ा है।

“द्वादश कोटि वृक्षवन लक्ष तीस सुनलीजै। सोरह सत अरू आठ एक तेहि भार गनीजै।” अर्थात् 12,30,01,608 वारह करोड़ तीस लाख एक हजार छः सौ आठ को एक भार कहते हैं।

“चार भार वन पुष्प चार फलफूल विराजै। पड़ वेली भू भार चार सिर कंटक राजै।”

चार भार पुष्प जाति - 49,20,06,432। चार भार फल जाति - 49,20,06,432।

छः भार लता जाति - 73,20,09,648। चार भार काँटा जाति - 49,20,06,432।

### 36-ख। साधनात्मिका भेद-शक्ति (षोडश भक्ति-विधि)

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शंखचक्रांकणं हरेः धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रहः।

अर्चनं च जपो ध्यानं तन्नाम स्मरणं तथा कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पाद सेवनम्।

तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदित भोजनं तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम्।

तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः भक्ति षोडशधा प्रोक्ता भवबन्ध विमुक्तये।

अर्थ - आयुध धारण, तिलक धारण, मंत्र ग्रहण, पूजन-अर्चन, जाप - ध्यान, स्मरण- कीर्तन, श्रवण-वन्दन, चरण-सेवा, चरणामृत लेना, प्रसाद सेवन, वैष्णव-सेवा, व्रत, तुलसी सेवा।

(अर्थात् 1। गुरु से शंख चक्रांकित होना। 2। तिलक धारण। 3। गुरु से मंत्र ग्रहण। 4। पूजा अर्चना। 5। मंत्र जाप। 6। भगवत ध्यान। 7। भगवत नाम स्मरण। 8। लीला कीर्तन। 9। भगवत कथा श्रवण। 10। भगवत वन्दन। 11। भगवत चरण सेवा। 12। चरणामृत ग्रहण। 13। भगवत प्रसाद ग्रहण। 14। वैष्णव सेवा। 15। व्रत करना। 16। तुलसी सेवा।)

### अष्टविध भक्ति :

मद् भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्। स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दम्भवर्जनम्।

मत्कथाश्रवणं प्रीतिः स्वरनेत्रांगेविक्रिया। ममानुसरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति।

अर्थ - भक्तों से प्रेम, पूजन में प्रसन्नता, स्वयं अर्चनम्, भागवताभिमान, कथा श्रवण, अंग विकृत-रोमांच नेत्र में जल बहना, भगवदनुसंधान हीं जीवन जिसका है।

(अर्थात् 1। भक्तों से प्रेम। 2। पूजा में प्रसन्नता। 3। अर्चना। 4। वैष्णवों का सम्मान। 5। कथा श्रवण। 6। रोमांच एवं आँसू बहना। 7। नाम स्मरण। 8। लीलागुण का मनन करते हुए जीवन बिताना।)

### नवविध भक्ति :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। भा 7।5।23। यानी 1। कथा श्रवण। 2। लीला कीर्तन।

3। नाम स्मरण। 4। चरण सेवा। 5। पूजा। 6। स्तुति। 7। कैकर्य। 8। मित्रता या कोई सम्बन्ध रखना। 9। आत्मसमर्पण।

मानस की नवधा भक्ति : अरण्य दो 34।4 से 35।3 तक :

प्रथम भगति संतन कर संगी । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा । 34 । 4 ।

गुरु पदपंकज सेवा तीसरि भगति अमान । चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान । । दो 35 ।

मंत्र जाप मम दृढ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा । ।

छठ दम शील विरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा । 35 । 1 ।

सातवें सम मोहि मय जग देखा । मोते अधिक सन्त पर लेखा । ।

आठवैंयथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहि देखइ पर दोषा । 35 । 2 ।

नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हिय हरष न दीना । 35 । 3 ।

37 । “उर कुछ प्रथम वासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो वही । सु 48 । 3 ।” प्रश्न वह वासना कौन रही ?

उत्तर विभीषण जब अयोध्या से रंगनाथ भगवान्‌को लेकर चले और कावेरी नदी के किनारे पहुँचने पर भगवान्‌वहाँ रह गये तब उस स्थान को रंगपुरी ऐसा नाम पड़ा और भक्तवर विभीषण लंका के राज करते हुए भी प्रेमवश समर्थ समय पर भगवान्‌की पूजा किया करते थे और इस जन्म के पूर्व भी “सो मागेउँ भगवन्त पद कमल अमल अनुराग । मानस वा 177 ।” और मुमुक्षु होने के कारण जैसे कहा है कि “कदाहमैकान्तिक नित्य किंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथ जीवितः । आलवन्दार स्तो . रत्न 46 ।” अर्थात्‌इस संसार से मुक्त होकर नित्य विभूति एवं नित्य मुक्तों की गोष्ठी में पहुँच कर तथा अनेक रूप देह धारण कर वैकुण्ठनाथ पर वासुदेव भगवान्‌ की कव सेवा करेंगे यही वासना उनमें थी । परन्तु जब श्री रामचन्द्र जी मिले तो विभीषण यह जाने कि जिस भगवान्‌की सेवा करने को मैं चाहता था वह भगवान्‌हमको यहाँ ही मिल गये । मनोरथ पूर्ण हो गया और वासना नष्ट हो गयी । वे श्री रामपद प्रेमी बने ।

38 । “भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् । मानस बाल मंगलाचरण 2 ।” श्रद्धा और विश्वास होने पर अपना अन्तःकरण व्यापी ईश्वर को कैसे देख सकते हैं ? क्योंकि व्यापक अर्न्त्यामी ईश्वर का रूप तो है नहीं और रूप ही को ग्रहण करने वाली दृष्टि आँख देख सकती है तो अरूप को नहीं देखेगी यह प्रश्न है ?

उत्तर गुरु के उपदेश से श्रद्धा और विश्वास होने पर ईश्वर में भक्ति होती है । वह भक्ति होने पर भक्त के हृदय में व्यापक ब्रह्म मूर्तिमान्‌और सुन्दर रूपवान्‌बन जाते हैं और वह रूप को भक्त लोग देखते हैं । कहा भी है “अंगुष्ठमात्रं रवितुल्यतेजः सदा जनानां हृदि संनिविष्टः । ।” “वसहु लखन सिय सह रघुनायक । अयो 127 । 4 ।” यह रहस्य है ।

39 । “जब सठ किन्ह राम कर निन्दा । लंका 31 । 1 ।” प्रश्न वह निन्दा वचन कौन है ?

उत्तर निन्दा कहते हैं मिथ्या दोष लगाने को । जैसे रावण ने कहा कि “...वल प्रताप बुधि तेज न ताकें । लं 30 । 4 ।” अर्थात्‌ राम जी में बल, प्रताप, बुद्धि, तेज नहीं है यह झूठ दोष लगाना निन्दा है । जिनके विषय में कहा है कि “जाके बल प्रताप के आगे । ससि मलीन रवि सीतल लागे ।” और कहा है कि “यच्चन्द्रमसि यचाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम् । गी . 15 । 12 ।” अर्थात्‌ चन्द्रमा में, सूर्य में, अग्नि में तेज हमारा है ।

“अगुन अमान विचारि तेहि दीन्ह पिता वनवास । मो दुख अरु जुवती विरह पुनि निसि दिन मम त्रास । ।”

“जिन्ह के बलकर गर्व तेहि ऐसे मनुज अनेक । खाहिं निशाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक । लं 31 ।”

अर्थात्‌दिव्य गुण वाले को गुणहीन कहता है । जिनके चरणकमल के लिए ब्रह्म इन्द्र रुद्र तरसते हैं उनको अमान कहता है और जिनके डर से लोक काँपता है, काल भी डरता है, कहा भी है “जाके डर अति काल डराइ । सो सुर असुर चराचर खाई । सु 21 । 5 ।” उनको रावण अपने डर से डरा हुआ बताता है । यही मिथ्या दोष लगाने को निन्दा कहते हैं ।

40 । “औरो एक गुप्त मत सवहि कहउँ करजोर । संकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर । उ . 45 ।” क्या शिव जी के भजन विना राम भक्ति नहीं मिल सकती है ? यही नियम है ?

उत्तर (क)ऐसी बात नहीं है । कारण कि ध्रुव प्रह्लादि शिवनाम विना ही भक्त हुए हैं तथा राम जी कहे हैं कि “तात भगति मम सब सुखमूला । मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला । अर . 15 । 2 ।” यह सन्तों की प्रसन्नता बताई गई है ।

(ख) “अविरल भक्ति विशुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव । जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद जो पाव । । उ. 84 क ।” इसमें भगवान् की प्रसन्नता से मिलने की बताया गयी है । गरुड़ कहे हैं (ग) “सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम । उ. 84 ख ।” “एवमस्तु कहि रमानिवासा (गुहकुलनायक) । उ. 84 ग ।” इस प्रकार स्वयं भगवान् काकभुसुंडी जी को भक्ति दिये हैं । इसी तरह का लोमश का वचन है (घ) “राम भगति अविरल उर तोरे । वसहि सदा प्रसाद अव मोरे । । उ. 112 ग ।” (ङ) “सो मनि जद्यपि प्रगट जग अहई । राम कृपा विनु नहीं कोई लहई । उ. 119 ग ।” इसमें भगवान् की कृपा से भक्तिमणि मिलने को कहा है । जैसे (च) “भाव सहित जो खोजइ प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी । उ. 119 ग ।” (छ) “सब कर फल हरि भगति सुहाई । सो विनु सन्त न काहूँ पाई । उ. 119 ग ।” इसमें सन्त द्वारा भक्ति द्वारा मिलने को कहा । (ज) “अस विचारि जो कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ विहंगा । उ. 119 ग ।” (झ) “मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं विनहिं प्रयास । जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि विश्वास । उ. 126 ग ।” (ञ) भरत जी से भरद्वाज “राम भगति अव अभिय अगाधू । किन्हेसु सुलभ सुधा सब काहू । अयो. 208 ग ।” इसमें अवधवासियों की स्वाभाविक भक्ति बताया गयी है । (ट) “जोग यज्ञ तप व्रत कीन्हा । प्रभु कह देई भगति वर लीन्हा । अर. 7 ग ।” इसमें साधनों से भक्ति बदली गयी है । (ठ) “अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई । प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई । अर. 9 ग ।” इसमें स्वाभाविक भक्ति है । सुतीक्ष्ण । (ड) “अविरल भक्ति मांगी वर गीध गयेउ हरि धाम । अर. 32 ग ।” भगवान् से भक्ति मांगकर रामधाम को चले गये । (त) “भगति प्रताप तेज बल खानी । आशिष दीन्ह रामप्रिय जानी । गु. 16 ग ।” सीता जी ने हनुमान जी को भक्ति का आशीष दिया । (थ) “नाथ भगति तव मव सुखदायिनी । देहु कृपा करि सो अनपायनी । गु. 33 ग ।” हनुमान् ने भगवान् से अनपायिनी भक्ति मांगी । (द) नारद भगवान् से भक्ति मांगे हैं “राका रजनी भक्ति तव राम नाम सोई सोम । अपर नाम उडगन विमल वसहु भक्त उर व्योम । । एवमस्तु मुनि सन कहेउ..... । अर. 42 ग ।” “एवमस्तु कहि रमानिवासा । अर 11 ग ।”

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि भक्ति का कारण शंकर भजन नहीं है किन्तु शंकर शब्द का अर्थ यों है शम्कल्याण करोति इति शकरः । राम नाम तस्य भजनमतेन विना भक्तिः न भवति । अर्थात् राम नाम के विना भक्ति नहीं मिलती है यही अर्थ युक्तिसंगत होगा ।

गुप्त नाम श्री रामचन्द्र जी का अवतार का है । जैसे कहा है कि (ध) “गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोई । बाल 48 ग ।” सोई श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि शंकर अर्थात् कल्याण करने वाला जो हमारा राम नाम है उसके भजन विना हमारी भक्ति कोई नहीं पा सकता है । यह भी एक गुप्त ही रहस्य है ।

41 । “कहियेन सठहि हँठहि हठ सीलहीं । नहिं मन लाय सुनहिं हरि लीलहीं । । उ. 127 ग ।” प्रश्न इन चारों से क्यों नहीं कहना चाहिए ?

उत्तर जवतक वेद ब्रह्मा तथा देवगण और मुनिगण के हृदय में रहा था तवतक उसका अर्थ उत्तम यथातथ्य बता रहा था और जव दैत्य और राक्षसों के हृदय में आया अर्थात् दैत्य और राक्षस सब वेद पढ़े तो उसका अर्थ विपरीत होकर प्रतिकूल पाषण्ड रूप हो गया । जैसे - “भयउ यथा अहि दूध पिलाये । उ. 105 ग ।” जैसे सर्प को दूध पिलाया हुआ विष हो जाता है वैसे ही रामायण का अर्थ विपरीत हो जायेगा । इसलिए रोका गया है कि अनधिकारियों को नहीं कहना चाहिए । इसलिए कि नास्तिक सब श्री राम जी को प्राकृत पुरुष राजपुत्र मान लेंगे, किन्तु कहा है कि “जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः । गी 4 ग ।” न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसंभवा । । इस प्रकार दोनों विषयों को सुनकर पण्डितवर श्री रामलखन शर्मा जी तथा और सब वैष्णवगण कृतकृत्य हो गये तथा इस प्रसंग से विराम किया गया ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

गोपालपुर निवासी वैद्य माधवाचार्य जी का अधोलिखित चार प्रश्न हैं -

42 । “तेहि अवसर तापस एक आवा । तेज पुंज लघु वयस सुहावा । ।

कवि अलखित गति वेष विरागी । मन कम वचन राम अनुरागी । अयो 109 । 4 । ” इस चौपाई को कुछ लोग क्षेपक मानते हैं और कुछ लोग मूल पाठ जानते हैं । इस प्रकार 'तापस एक आवा' इस अंश के तपस्वी को कोई हनुमान्को बताते हैं, कोई अग्निदेव को कोई तीर्थराज को और कोई वेणीमाधव को बताकर कई प्रकार का मतभेद दिखाते हैं । किन्तु इसका वास्तविक रहस्य यह है -

यह प्रसंग उस समय का है जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी वनगमन के प्रसंग में गंगा और यमुना नदी को पार कर वाल्मीकि आदि महर्षियों से विदा लेकर यमुना के किनारे किनारे जा रहे थे । उसी समय मानसकार तुलसीदास को यह स्मरण हुआ कि जैसे सुपुत्र प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु के लिए वरदान मांगा था कि मेरे पिता का कल्याण हो और भगवान् कहें कि “भवान्वै कुलपावनः । भा. 7 । 10 । 18 । ” अर्थात् हे प्रह्लाद ! तुम्हारा “दश पूर्वान्दशापरान् । ” दस पुरुष नीचे से दस पुरुष आगे तक के लिए सबों का कल्याण होगा । श्रीवैष्णवों के लिए यह कहा गया है “श्रीवैकुण्ठनाथस्य द्वारदेशावलम्बिनः । ” अर्थात् भगवद्भक्तों के पूर्व ज वैकुण्ठ में भगवान् की दिव्यगोष्ठी में पहुँच कर भगवान् की सेवा किया करते हैं । तो भगवान् रामचन्द्र जी जब हमारी जन्मभूमि पर अवतरित हुए हैं तो मैं तो अपने पिता द्वारा इनकी सेवा कराऊँ । वस इसी विचार से तुलसीदास ने अपने पिता का स्मरण किया और वे आ गये जिनका वेष तपस्वी का किशोरावस्था वाला था । इसी वेष में वे भगवान् की सेवा किये थे । चौपाई में लघुवयस शब्द से भगवान् की सरूपता का वर्णन किया गया है । “सदा वयसि कैशोरे । भा. 3 । 28 । 17 । ” भगवान् सदा किशोरावस्था में ही रहते हैं । मुक्त पुरुष भी उसी अवस्था में सदा विराजमान रहकर भगवान् की सेवा किया करते हैं । इसीलिए तुलसीदास भी अपने पिता को भी इसी रूप में अनुसन्धान किए थे और वे उसी रूप में आये भी । कवि ने अपने शब्दों द्वारा उनकी स्तुति प्रार्थना का अनुसन्धान किया है । विरागी शब्द से 'तृणीकृत विरज्यादि' मुक्तलोग ब्रह्मादि लोकों को भी तुच्छ समझते हैं, इसी विषय को बताया गया है । 'राम अनुरागी' शब्द से भगवान् के चिन्तन का अनुसन्धान किया गया है । मुक्त पुरुषों को कभी भी भगवान् से विश्लेष नहीं होता है । इसीलिए सेवा के बाद भी संग से पृथक् नहीं किया गया है । इसी प्रसंग में अपने कुल की प्रशंसा नहीं समझी जाये इसलिए नाम नहीं कहा गया है । यह सब मानसिक भावना है न कि बाह्यवृत्ति व्यवहार, यही गुप्त रहस्य है ।

43 । “मन्त्री विकल विलोकि निषादू । कहि न जाय जस भयउ विषादू । । अयो 141 । 4 ।

तुम पंडित परमारथ ज्ञाता । धरहु धीर लखि विमुख विधाता । ।

विविध कथा कही कही मृदु वानी । रथ बैठारेउ वरवस आनी । अयो 142 । 1 तथा 2 । ”

यह प्रसंग उस समय का है जब सुमन्त जी श्री राम जी को जंगल पहुँचाकर अयोध्या लौटे हैं । निषाद ने सुमन्त जी को श्री राम जी के विरह में व्याकुल देखा है तब वह अनेक प्रकार से अनेक प्रकार की कथायें कहकर उनको समझा बुझाकर सान्त्वना देकर रथ पर बैठाया है । प्रश्न होता है कि निषाद ने कौन कौन सी कथायें कह उनको समझाया था ?

उत्तर - निषाद ने सुमन्त को पण्डित और परमारथ ज्ञाता ये दोनों विशेषण दिया है । परमारथज्ञाता वह स्वयं भी था तभी तो वह ऐसा कहा है- सुमन्त जी ! आप तो यह स्वयं जानते हैं कि इस संसार में जो आता है उसको सुख-दुःख, संयोगादि-वियोगादि जो द्वन्द्व है सहना ही पड़ता है । जैसे अग्नि के समीप उष्णता, जल के समीप शीतलता रहती है किन्तु “सुख हरपहि जड़ दुख विलगाही । दोउ सम धीर धरहि मनमाही । । अयो 149 । 4 । ” अज्ञानी लोग सुख से सुखी होकर हर्षित होते हैं और दुःख में दुःखी होकर रोते हैं । किन्तु धैर्यवान् पुरुष सुख दुःख में न रोते हैं न और न हंसते हैं । आप जानते हैं कि श्री रामचन्द्र जी चौदह वर्ष के बाद लौटेंगे तब आप सुखी होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है । इसी कुल में राजा सगर के साठ हजार पुत्र एक साथ नष्ट हो गये थे तथापि वे धैर्य धारण किये थे । धर्म के लिए हरिश्चन्द्र अपना शरीर तक बेचा था । धर्मार्थ ही मयूरध्वज ने अपने हाथ से अपने लड़के का मस्तक चीरा था । इसी प्रकार धर्मार्थ ही श्री राम जी चौदह वर्ष के लिए जंगल जा रहे हैं पश्चात् लौट कर आवेंगे । आप अवश्य धैर्य धारण करें ।

सुमन्त जी ! आप यह भी जानते हैं कि श्री राम जी के हृदय में अटूट पितृ-भक्ति है । उनका वचन मानना राम जी का धर्म



है। कहा भी है - “अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन। ते भाजन सुख सुयश के वसहिं अमरपति ऐन।।” इसीलिए राम जी का परम कर्तव्य है कि पिता की वनवास आज्ञा को अवश्य मानें। आप यह भी जानते हैं कि श्रवण अपने माता पिता अन्धमुनि को अपनी कन्धा पर ढोया करते थे। परशुराम जी ने पिता की आज्ञा से अपनी माता का मस्तक काट लिया था। किन्तु उन्हें पितृभक्त होने के कारण हत्या नहीं लगी - “धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परीक्षा चारी। अर. 4।4।” इस समय रामजी का धर्म आपका धैर्य दोनों की परीक्षा है। जिसका नाम उच्चारण कर मनुष्य सुख दुःख द्वन्दवाला संसार से पार कर जाता है वही राम जी जंगल में कैसे दुःखी होंगे। अतः आप भगवान्‌का वनवास का घटना को सोचकर दुःखी न होवे। “प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। उ. 71।4।” “सर्वरूप सब रहित उदासी।। सु. 43।2।” “न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसंभवा।।” “जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। गी. 4।9।” “राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना। बा. 115।4। सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई। बा. 116।3।”

ऐसे परब्रह्म राम जी को दुःखी जानकर आप दुःखी क्यों हो होते हैं। यह तो अज्ञ पुरुषों का काम है। इस प्रकार निषादराज ने सुमन्त जी को समझाया था। तभी इनका अज्ञान दूर हुआ और जान सके कि परब्रह्म परमात्मा ही वैभवातार में आते हैं। वे परमानन्द स्वरूप हैं। उनको सुख दुःखादि द्वन्द नहीं सता सकता है। ऐसाज्ञान होने के पश्चात्‌वे सावधान्‌होकर रथ पर बैठे और अयोध्या लौट आये। इन्हीं सब कथा इतिहासों को निषादराज ने उनको सुनाया था - यही गुप्त रहस्य है।

44। “अंगद कहे जाउँ में पारा। जिय संशय कछु फिरती वारा।। कि. 29।1।” जिस समय जामवन्त जी वानरों को समुद्र पार जाने की शक्ति सम्बन्ध में जानकारी कर रहे थे, उसी समय अंगद की यह उक्ति है। “निज निज बल सब काँहू भाखा। पार जाइकर संशय राखा। कि. 28।3।” किसी प्रकार अंगद ने कहा कि मैं पार तो जा सकता हूँ किन्तु पुनः वहाँ से लौटने में संशय है। इस चौपाई में कछु शब्द अनेकार्थक हैं इसलिए भावुक लोगों ने अनेक प्रकार के भाव बना रखा है। किसी का कहना यह है कि रावण और वाली में पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता रहते हुए भी मित्रता हो गयी थी। अतः अंगद यही सोचते हैं कि रावण के प्रेम में कहीं मेरा हृदय न दब जाय। यही संशय है।

तारा और मन्दोदरी में पारस्परिक मित्रता थी। मन्दोदरी कही भी है कि “वाली तनय वालकसम मोरा।।” यह सन्देह का कारण लोग बताते हैं कि अंगद ने सोचा कि तारा के समान मन्दोदरी के प्रेम में कहीं मैं नहीं फँस जाऊँ ? यदि ऐसा हुआ तो भगवान्‌के कार्य में बाधा होगी।

किसी का कहना यह है कि अक्षय कुमार और अंगद को परस्पर वरदान शाप यह था कि यदि अक्षय कुमार समुद्र से उत्तर आवे तो अंगद मार डालेगा और अंगद समुद्र से दक्षिण जावे तो उसको अक्षय कुमार मार डालेगा। इसी बात का संशय अंगद के हृदय में है। हनुमान जी जब अक्षयकुमार को मारे हैं तब अंगद सेना के साथ लंका गये हैं।

किसी का कहना है कि जिस पर्वत पर बैठकर वातचीत हो रही थी उससे सुबेल पर्वत जो लंका का पर्वत है कुछ न्यून है। अतः जाने में तो सुगमता होगी किन्तु आने में कठिनाई होगी यही सन्देह का विषय है।

किसी का यह कहना कि अंगद यह सोचकर सन्देहग्रस्त हो गये कि राक्षस दुष्ट प्रकृति के होते हैं। हो सकता है कि वहाँ उनसबों के साथ युद्ध में बहुत अधिक समय लगेगा तो अवधि के अन्दर आना असंभव है।

कोई कहते हैं कि अंगद जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है किन्तु अंजनी कुमार के विषय में हमें सन्देह है कि श्री रामचन्द्र जी हनुमान्‌जी को अँगूठी देते समय यह कहे हैं कि - “.....जानि काज प्रभु निकट बुलावा।।” “परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।” “वहु प्रकार सीतहि समुझायहु। कहि बल विरह वेत्ति तुम आयहु। कि. 22।5 एवं 6।” ये सभी प्रसंग अंगद जानते हैं। इसीलिए सोचते हैं कि जिनके प्रति श्री रामचन्द्र जी कार्यसिद्धि का सर्वस्व भार सौंपे हैं वे तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं। यही हनुमान्‌के विषय में अंगद का संशय है।

45 | “नर वानर हि संग कहु कैसे । कही कथा संगति भये जैसे । सु 12।6 ।” चौपाई सीता सम्वाद की है । सीता जी हनुमान्से पूछती हैं कि नर (मनुष्य) राम जी तथा वानर (मनुष्य) तू हो । बताओ कि मनुष्य और पशु में परस्पर प्रेम संगति संयोग कैसे हुआ ? तथा 'आदिहु ते सब कथा सुनाई' हनुमान द्वारा रामजी की पूर्णतः कथा सुनाने पर भी सीता जी ने पुनः 'नर वानर ही संग कहु कैसे' प्रश्न क्यों किया ?

उत्तर - यह चौपाई हनुमान्के पूर्ण परिचय तथा परीक्षा में है । यथा प्रश्नोत्तर में हनुमान्ने अपना पूर्ण परिचय तथा रामजी की संगति की कथा सीता जी से कही है । अम्बे ! सद्ग्रन्थों में लिखा है कि भगवान् की निर्हेतुक कृपा के बिना कोई भी अपूर्व वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है । हमारी मां अंजना प्रसंगवस कहा करती थीं कि बेटा ! भगवान्श्रीनिवास के ही प्रभाव से तू हमारे पुत्र रत्न प्राप्त हो, कारण कि तुम्हारे पिता को वंश की सम्भावना नहीं थी । अतएव वेङ्कटेश्वर भगवान् श्रीनिवास ने दो हजार वर्षों तक मुझसे अपनी आराधना करवाई थी । फलतः प्रसाद रूप में मैं तुझे पाया । भगवान्की ही कृपा से तुम्हें बल, बुद्धि तथा विद्या मिली है । सब में व्यापक होते हुए भी सब दोषों में पृथक् सर्वधारक पवनदेव ने तुम्हारा जन्म दिया । इसीलिए संसार में तुम्हें लोग पवनसुत भी कहते हैं । 'पुन्नाम्नो नरको यस्मात्तस्मात्तारयते सुतः' पुत्र का अर्थ है भगवद्भक्ति से पितरों को नरक से उद्धार करना । कयाधु, सुमित्रा, सुनीति वीर माताओं के समान श्रद्धा से भगवद्सेवा के लिए मैंने तुझे जन्म दिया है । अतएव भगवान्की सेवा ही तुम्हारा परम धर्म है । अयि जगज्जननी अम्बे ! भगवान्की ही कृपा का फल है कि मुझे भगवद्भक्तिमती माता मिली तथा जन्म के बाद राम जी मिले । यथा पुत्रवत्सला माता अपने पुत्र को कूप में गिरते हुए देखकर अपना सब कुछ छोड़ अपनी देह रक्षण का चिन्तन नहीं करते हुए कूप में कूद कर पुत्र को बचाती है तथा संसार कूप में कर्मवश पतित जीवों को संसार से उद्धार करने के लिये भगवान्ने दिव्य सूरियों से सेवित परमव्योम त्रिपाद विभूति को छोड़ अवध धाम में अवतार लिया । अवतार लेकर अहिल्या, निषादकोलभील जंगली पामरों को उनके घर जा जा कर अपने दर्शन से पवित्र किये । भगवान् ने शील सौलभ्यादि गुणों के वश हो हमारे जातीय भालु वन्दरों को भी दर्शन से कृतार्थ किया । अतएव दीनबन्धु, पतित-पावन, अशरण-शरण आदि नामों से पुकारे गये । किष्किन्धा में आपके अन्वेषण के लिए सुग्रीव से मैत्री कर तथा उन्हें राजा बना वानरी सेना के बीच में बुलाकर भगवान् राम जी से अनेक प्रकार समझाया तथा अपनी अँगूठी दी । यथा - “परसा सीस सरोरूह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी । । ” “बहु प्रकार सीतहि समुझायहु । कहि बल विरह बेति तुम आयहु । कि. 22।5 एवं 6 ।” संसार में पतित जीवों को भगवान्का संग भगवद्कृपा ही से होता है । भगवान्का लीला रूप तथा अनेक प्रकार का गुण जीवों के कल्याणार्थ होता है ।

पर कल्याण तथा साधु संग संयोग भगवद्कृपा ही से होता है इसके अनेक प्रमाण हैं । 'दिव्यंददामि ते चक्षुः । गी. 11।8 ।' कल्याणार्थ दिव्य ज्ञान जीवों को देता हूँ । “देत ईश विनु हेतु सनेही । उ. 43।3 ।” अकारण ईश्वर जीवों के प्रेमी हैं । “न वेदैर्न दानैश्च न यज्ञैर्न व्रतैस्तथा । प्राप्तुं न शक्यते लोके विना विष्णुप्रसादतः । । ” ईश्वर की कृपा बिना वेदज्ञान, दान, यज्ञव्रत, अनेक उपायों से भी लौकिक-पारलौकिक पदार्थ नहीं पाता है ।

चौपाई में नर शब्द से राम तथा वानर शब्द से हनुमान्का बोध नहीं होता है । सीता जी ने राम जी के परमैश्वर्य गुण को माधुर्य गुण से छिपाया है । तथा 'रावण मरण मनुज कर यांचा । वा. 48।1 ।' ब्रह्मा के वचन सत्य करने के लिए रामजी नर तथा हनुमान् वानर बने । वास्तव में तो राम जी विष्णु तथा हनुमान् नित्य पार्षद हैं । अंगद के वचन से साफ है 'राम मनुज कस से सठ वंगा । लं. 25।3 ।' 'कस रे सठ हनुमान्कपि । लं. 26 ।'

'जिसके बल कर गर्व तोहि ऐसे मनुज अनेक । लं. 31 ।' लंका में रावण अंगद संवाद में रावण द्वारा राम जी को मनुज कहे जाने पर अंगद क्रोधित हुए रावण को अनेक प्रकार डाँट-फटकार किये तथा 'हरिहर निन्दा सुने जो काना । होय पाप गोघात समाना । लं. 31।1 ।' भगवान्की निन्दा को पाप समझे । वहीं 'नर वानर ही संग कहु कैसे' चौपाई में सीता जी नर वानर शब्द प्रसन्नता पूर्वक कहती हैं तथा प्रसन्नचित्त हनुमान्सुनते हैं । ऐसा क्यों ?

यहाँ पर सीता जी तथा हनुमान् का परस्पर वार्तालाप शुद्ध हृदय से है। प्रेम से है। प्रेम का वचन सुखद होता है तथा द्वेष का वचन दुःखद होता है। मनुज तथा नर शब्द समानार्थक होते हुए भी भिन्न हैं। मनु से उत्पन्न तथा जायमान मनुज। नर शब्द का अर्थ न ऋयते इति नर। अर्थात् नित्य, नाशरहित दिव्य। इससे यहाँ पर नर शब्द नित्य का बोधक है। राम जी स्वरूपतः नित्य निरंजन हैं 'नित्य निरंजन सुख सन्दोहा। उ. 71।3।' पूर्वोक्त चार प्रश्नों का उत्तर श्री स्वामी जी के मुखारविन्द से सुनकर श्रीवैष्णव मण्डली तथा पं. माधवाचार्य जी बड़े प्रसन्न हुए।

-० इति ०-

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।  
 गो ब्राह्मणेभ्यः शिवमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।।  
 रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी)

का

महाप्रयाण

(जीवनी का चतुर्थ खण्ड)

लेखक

श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य

सरौती स्थानाधीश

|

प्रकाशक

श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती

पो . रामपुर चौरम (गया)



श्रीमते रामानुजाय नमः

## श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) का महाप्रयाण

त्वय्यम्बुजाक्षाखिल सत्वधाम्नि समाधिनावेशित चेतशैके । त्वदपादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् । ।  
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्र सौहृदाः । भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ।

भा. 10 | 2 | 30-31 |

संसार - सागर से पार करने के लिए भगवद्भक्तों ने भगवान्‌के चरणकमलों को ही नौका अर्थात्‌उपाय भरन्यास का उपदेश माना है । यही भावना से प्रेरित होकर भक्तलोग भगवान्‌की षड्विध शरणागति कर अनन्यभाव से उनके चरणों की सेवा किया करते हैं और दुस्तर संसार-सागर को गोपद के समान अनायास ही लाँघ जाते हैं । साथ ही संसारियों के लिए उस भरन्यास (आत्मनिक्षेप) की उपदेश रूपी नौका को छोड़ जाते हैं । यह लोक-कल्याण की भावना महापुरुषों में सहज ही होती है । उनका उठना, बैठना, बोलना, चलना सब के सब उपदेशात्मक ही होते हैं । उन महापुरुषों का एक-एक अनुकरण बद्ध जीवों के लिए मुक्ति का साधन बन जाता है । श्रीस्वामी जी महाराज उन्हीं महापुरुषों में से एक थे । आपने तीन बार सम्पूर्ण भारत के तीर्थों का पैदल भ्रमण कर अन्त में तरेत स्थान को ही तीर्थराज तथा वहाँ के राघवेन्द्र भगवान्‌को ही उभय विभूतिनायक माना । आपका अन्तिम कालक्षेप यहीं होने लगा । ये सभी कार्य लोकहित के लिए ही थे । स्वामी श्रीरामानुजाचार्य श्री-सम्प्रदाय की रक्षा एवं प्रचार के लिए सर्वत्र घूमे थे । इसी से यह प्रसिद्ध है -

श्रीरंगं करिशैलमज्जनगिरौ शेषाद्रि सिंहाचलम् । श्रीकूर्म पुरुषोत्तमञ्च वदरीनारायणं नैमिषम् । ।

श्रीमद्वारवती प्रयाग मथुराऽऽयोध्या पुष्करम् । शालिग्राम निवासिनो विजयते रामानुजोऽयं मुनिः । ।

श्रीरामानुज स्वामी के पश्चात्‌श्री वरवरमुनि स्वामी ने इसी के रक्षार्थ पृथ्वी को धारण करने वाले अष्टदिग्गजों के समान अष्टगद्दी की स्थापना की थी । इन्हीं अष्टगद्दियों में एक अण्णनगद्दी है । इसका वर्तमान नाम गोवर्धन गद्दी है । इसी के अध्यक्ष श्री स्वामी रंगदेशिकाचार्य जी महाराज ने वृन्दावन में श्रीरंग मन्दिर बनवाये थे । इन्हीं के कृपापात्र शिष्य श्री स्वामी राजेन्द्रसूरि महाराज सम्प्रदाय रक्षक हुए ।

इस सम्प्रदाय का यही नियम है कि भगवान्‌की सन्निधि में जाकर कहा जाता है कि “श्रीमन्नारायण स्वामिन्‌शठकोपं प्रदेहि मे ।” भगवान्‌का चरणकमल श्री शठकोप स्वामी हैं । भगवान्‌से प्रार्थना में उनका चरणकमल माँगा जाता है जो भक्तों का उपजीव्य है । श्री शठकोप स्वामी की सन्निधि में जाने पर “रामानुजं प्रदेहि त्वं शठकोप मुनीश्वर !” यह कहा जाता है, अर्थात्‌हे शठकोप स्वामी आप मुझे श्री रामानुज स्वामी को दीजिये । श्री शठकोप स्वामी का चरणकमल श्री रामानुज स्वामी हैं । जब श्री रामानुज स्वामी की सन्निधि में जाते हैं तो कहते हैं कि “हे रामानुज सौम्यजामातृ वरवरमुनि देहि ।” अर्थात्‌हे रामानुज स्वामी मुझे सौम्यजामातृ वरवरमुनि दीजिए जो श्री रामानुज स्वामी के चरणकमल हैं । श्री वरवरमुनि स्वामी के चरणकमल “मामका देशिकाः स्युः ।” श्री वरवरमुनि के चरणकमल अपने आचार्य माने जाते हैं । इस प्रकार इस सम्प्रदाय के रक्षण हेतु भगवान्‌ से लेकर अपने आचार्य तक के रक्षकों की परम्परा श्रृंखला के ऐसा सम्बद्ध है । रक्षा ही के लिये प्रार्थना भी है । दुस्तर नदी को पार करने के लिए नाव की आवश्यकता होती है । नहीं तो डूबने का भय बना रहता है । डूब कर मरने से अकाल मृत्यु होती है जिसके चलते नरक भी भोगना पड़ता है । शरीर असंस्कृत रह जाता है । साथ के सामान आदि भी दह-वह जाते हैं । शेष जीवन में समाप्त होने वाले काम अधूरे रह जाते हैं । अतः नाव की आवश्यकता नितान्त प्रतीत होती है । इससे आत्म-रक्षा, धन की रक्षा, शरीर-रक्षा तथा कार्य की सिद्धि हो जाती है । इसी प्रकार आचार्यचरण द्वारा भरण-न्यास आत्मनिक्षेप (शरणागति) होने से आत्मकल्याण, भगवत्प्राप्ति, शरीर की सार्थकता,

स्वसम्बन्धियों का कल्याण हो जाता है।

इसलिए कहा हुआ है - “कुलकोटि समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते।” स्वसम्बन्धियों के अतिरिक्त औरों का भी समुद्धार होता है - “यं यं स्पृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। तेन ते तत्प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।।” भगवान्का शरणागत श्रीवैष्णव जिन व्यक्तियों का स्पर्श किया, देखा कि वे सब-के-सब भगवत्लोक प्राप्त कर लेते हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत जितने भी मनुष्य आ गये सबों की रक्षा का भार अपने आचार्य से लेकर शृङ्खलावद्ध भगवान्तक के ऊपर निहित होता है और सबों की रक्षा होती है। इस प्रकार लोक-रक्षण हेतु अवतरित श्री राजेन्द्र सूरि जी महाराज अपने जीवन के कृत्यों को समाप्त कर वैकुण्ठ यात्रा की तैयारी में लग गये थे। उनके नित्य के व्यवहारों से यही प्रतीत होता था कि अब श्री स्वामी जी महाराज को त्रिपाद्विभूति की यात्रा की उत्कण्ठा जग उठी है। उनकी अन्तरात्मा मानो भगवत्प्राप्ति की त्वरा में गा उठती थी -

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसिपरे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे।

महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरेसमासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्। वैकुण्ठ स्तव 1।

महासिन्धोः नीरे विगत कलुषो दिव्य गुणको हरे सद्गात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृत तनुः।

भवेयं संश्लाघ्योऽभरनिकरसम्मानित भवन्। कदाहं संरुद्धो वर गरुड्याने समचरन्। वैकुण्ठ स्तव 2।

द्रक्ष्यामि नूनं सकोपलनासिकं स्मितावलोकारुणञ्जलोचनम्।

मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः। भा 10 | 38 | 9 |।

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्।

रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्षे ममासन्उपसः सुदर्शनाः। भा 10 | 38 | 14 |।

अपि अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्य धास्यन्निज हस्त पङ्कजम्।

दत्त अभयं काल भुजाङ्ग रहंसा प्रोद्धेविजितानां शरणैषिणां णूनाम्। भा 10 | 38 | 16 |।

इन संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास जी के पद्य और नहीं तो दिन में दो-चार बार अवश्य सुनने को मिलते थे।

कवहि दिखाइहों हरि चरण।

समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन। सरदभव सुन्दर तरुणतर अरुण-वारिज-वरन।

लच्छि-लालित-ललित करतल छवि अनुपमधरन। गंग-जनक अनंग-अरिप्रिय कपट-वटु वलि-छरन।

विप्र-तिय-नृग वधिक के दुख-दोष दारुन हरन। सिद्ध-सुर-मुनि-वृन्द-वन्दित सुखद सब कह सरन।

सकृत उर आनत जिनहि जन होत तारन-तरन। कृपासिन्धु सुजान रघुवर प्रणत आरत हरन।

दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन। विनय पत्रिका 218।

यही नहीं जब कभी वैष्णव-मण्डली एकत्र हुई कि श्रीमुख से संसार और शरीर की अनित्यता की चर्चा छिड़ जाती थी। मुक्ति ही जीवमात्र का एक साध्य है और इसके लिए भगवान्ही एकमात्र उपाय हैं। वैष्णव को चाहिए कि वह षड्विध शरणागति को कभी न भूले।

“अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति च विश्वासः गोप्तृत्ववरणं यथा।

आत्मनिक्षेप कार्पण्यमृषड्विधाः शरणागतिः। पाञ्चरात्र-लक्ष्मीतन्त्र 17। 60।”

भगवान्के चरणकमलों में सभी प्रकार की भक्ति (अष्टविध, नवविध तथा षोडशविध जिसकी चर्चा इस पुस्तक के उत्तरार्ध में है) रखे। जिस प्रकार हमारे पूर्वाचार्यों ने भगवान् और भक्तों की सेवा को मुक्ति का साधन बताया है उसे हम सबों को भी नहीं भूलना चाहिए। पापान्तरों (स्मृति-विरुद्ध आचरण) और उपायान्तरों (भगवान्को छोड़कर अन्य उपाय) से बचना चाहिए। तीन पारायणियों (देहाभिमानी, धनाभिमानी और जनाभिमानी) का सहवास नहीं करना चाहिए। पञ्चरात्र आदि पूवाचार्यकृत शास्त्रों का पठन-पाठन और श्रवण-मनन करना चाहिए।

वैष्णव मात्र में उद्धारक वुद्धि रखे। उनके प्रति कोई अपराध नहीं होने दे। उच्चज्ञान प्राप्त करके भी महापुरुषों के सम्मुख अज्ञानी के समान अहंकार-शून्य होकर रहे। वैष्णवों में समता वुद्धि (अपने समान समझना) नहीं रखे। यही सब मुक्ति के

साधन हैं। यही सब उपदेश श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा नित्य हुआ करते थे।

इण व्यवहारों से यह स्पष्ट था कि श्रीस्वामी जी महाराज अब इस नश्वर शरीर को छोड़ना चाहते हैं किन्तु सर्वसाधारण को यह भान नहीं होता था। अब यह लीला निकट भविष्य में समाप्त होने जा रही है। निदान यह बात एक दिन खुल कर ही रही। विक्रम संवत् 1972 का प्रभव संवत्चल रहा था। ऋतुराज वसन्त अपना वैभव, अपना साम्राज्य अपने सेनानी की अध्यक्षता में विस्तार में संलग्न था। सारा संसार मोहनिशा में सो रहा था। आधी रात वीत चुकी थी पर दिव्यदेश के उस महायात्री को नींद कहाँ, वे तो अपनी मुक्ति अपनी ही आँखों देख रहे हों जैसे। चर्मचक्षु बन्द और दिव्यचक्षु खोले हुए कभी उस त्रिपाद्विभूति के मणिमय मण्डप में दिव्य सिंहासनासीन लक्ष्मीनारायण को देख-देख कर आनन्द-विभोर हो रहे थे। कभी उनके दिव्यपार्षदों के साथ उनकी परिचर्या का आनन्द ले रहे थे और फिर इस मायाजाल में बन्धे हम संसारियों की ओर देखकर कुछ कातर से होते हों। दास भी (इस जीवनी का लेखक) वहीं सोया स्वप्नानिल संसार में विचर रहा था। अचानक सम्बोधन का उच्च स्वर “परांकुश !” मेरे कानों से आ लगा। मैं उठ पड़ा और गुरुदेव के चरणों से जा लगा। देखा, उनकी विस्फारित आँखें विस्तृत गगन से मानों कुछ समाधान खोज रही हों। वे मुझे देखकर बोल उठे - “देखो जी, आतिवाहिक आ गये ले जाना चाहते हैं, अन्तर्यामी धमनी मार्ग दिखाते हैं। फिर भी दुनियाँ सुख की नींद सो रही है। अपना समय अपने हाथों ला रही है। कैसा मोह है? वैष्णवों को अनन्य शरण होना चाहिए, देवतान्तर, उपायान्तर और विषयान्तरों से वचना चाहिए। वैष्णव का निवास स्थान ही तीर्थराज है।

“देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनाः स्पर्शनार्चना। शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेच्छया।।”

वल्कि देवता, क्षेत्र और तीर्थ पूजन, दर्शन और स्पर्श के पश्चात्समय पर ही पवित्र (पापमुक्त) करते हैं किन्तु वैष्णव तो दृष्टि पड़ते ही सबको पवित्र कर देते हैं। वे स्वयं तो मुक्त होते ही हैं अपने संसर्ग से दूसरों को भी मुक्त कर देते हैं। जीवन की बात तो छोड़ो मरने के पश्चात्भी वैष्णव को गंगादास, यमुनादास नहीं बनना चाहिए। यह तो अवैष्णवों के लिए है कि गंगा आदि तीर्थों में दाह संस्कार किया जाय तो उनका उद्धार होता है। अतः मेरे शरीर का दाह-संस्कार यहीं कलमवाग (तरेत स्थानीयवाग) के बीच होना चाहिए। हम सब वैष्णवों के लिए तरेत ही तीर्थराज है, राघवेन्द्र ही दिव्य विभूतिनायक हैं, निष्ठा होनी चाहिए।”

यह बात दास को लग गई, इसी की चिन्ता में कुछ सोते-जागते रात वीत गई। भला इस ओछे हृदय में ऐसी गम्भीर बात कवकर पच सकती थी। अनेक स्नेही जनों को कह सुनाया। फिर क्या था, विजली के समान यह बात चारो ओर फैल गयी। दल के दल वैष्णव आने लगे और श्रीचरणों के सामने भावी वियोग व्यथा को व्यक्त करने लगे। श्रीचरणों का वियोग किसी को सह्य नहीं था। उसकी आशंका मात्र से ही वैष्णव मण्डली मानो विह्वल हो उठी थी। सबों का हृदय भर आया था। निदान दूसरे दिन पुनः आधीरात को ही श्रीस्वामी जी ने मुझको जगाकर यह चर्चा छेड़ी। “जड़भरत की बात तुम जानते हो? एक मृगी के बच्चे को उन्होंने दयावश पाल रखा था। किन्तु उसमें उनकी ऐसी आसक्ति हुई कि देह त्यागने पर उनको भी मृग होना पड़ा। यद्यपि ज्ञान-बल से उन्होंने अपने को सम्हाला और पुनः मुक्ति पाये, किन्तु आसक्ति के चपेट में उन्हें भी आना ही पड़ा था। मेरे सामने तो असंख्य वैष्णव नित्य आते हैं, प्रेमवश रोते हैं, भला उनके आकर्षण से मेरा हृदय क्यों न द्रवित होगा। मैंने तो इस स्थान को छोड़ने का निश्चय किया है। तुम ऐसी व्यवस्था करो जिसमें हम बक्सर चल सकें।” श्रीस्वामी जी महाराज का उक्त सुनकर मैंने इसके लिए वावू रामखेलावन शर्मा से संमति ली। उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोका किन्तु श्रीस्वामी जी की पुनः आज्ञा हुई और विवश होकर यात्रा की तैयारी करनी पड़ी।

अहिरौली से एक नाव मंगायी गयी। कल श्रीस्वामी जी महाराज तरेत छोड़ रहे हैं, यह बात बात-की-बात में चारो ओर फैल गयी। फिर तो टिड्डी दल के समान वैष्णव जुटने लगे। यात्रा के समय तरेत में एक मेला लग गई थी। कुछ सामान नाव पर रख लिये गये थे। श्रीस्वामी जी ने भगवान् राघवेन्द्र के सामने बैठ कर प्रार्थना की - “भगवन्! मुझसे आपका मन्दिर नहीं बन सका। आप अपने भक्तों से बनवा लीजियेगा।” फिर वे रामखेलावन शर्मा को सम्बोधित करते हुए बोले - “रामखेलावन! राघवेन्द्र को

तुमको सौंपते हुए जा रहा हूँ ” और स्वयं प्रदक्षिणापूर्वक साष्टांग-प्रणाम कर भगवान् से विदा ले यात्रा कर दिये। पीछे-पीछे सारी वैष्णव-मण्डली एक सूत्र में बँधे हुए के समान मानो अपने आप खिंचती चली जा रही थी। नौवतपुर पहुँच कर जब श्रीस्वामी जी महाराज नाव में बैठे तो उन्होंने सर्वों की ओर दृष्टि डालते हुए कहा - “इस देश के दीन-हीन वैष्णवों ने मेरी बड़ी सेवा की है। आज तक उस व्रत को निभाया है, भगवान् तुम लोगों का मंगल करेंगे। आप सभी लोग अपने-अपने घर चले जाओ। मैं पुनः सर्वों को मंगलानुशासन करता हूँ। यह बात सुनते ही सारा समाज शोक-समुद्र में उतराने लगा। किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। सर्वों की आँखें बरस रही थीं। सभी हाथ जोड़े खड़े थे। नहर के किनारे लगे वृक्ष, लता, गुल्म मानों सभी रो रहे हों। सभी निष्प्रभ, सभी श्रीविहीन से दिखते थे। शोक सन्तप्त समाज का मौन मानो वाचाल हो उठा हो और आँखों की भाषा में पूछ रहा हो - “गुरुदेव यह अन्तिम उदासी क्यों? क्या सचमुच यह संसार मृगतृष्णा है? क्या यहाँ कोई किसी का नहीं है? सभी क्या अपने-अपने गन्तव्य की ओर अकेला बढ़ रहे हैं। क्या संग का झमेला क्षणिक है? श्रीस्वामी जी महाराज विस्मय भरी दृष्टि से नर-समाज की ओर देख रहे थे। एक क्षण रुक कर उन्होंने आज्ञा दी - “नाव शीघ्र बढ़ाओ।” आज्ञा की देर थी। नाविक ने तेजी से नाव आगे बढ़ायी, जनवर्ग भी साथ-साथ खिंचता सा दिखा। श्रीस्वामी जी महाराज पुनः कुछ क्षण के लिये रुके और लोगों को सान्त्वना देकर धैर्य बँधाये। लोक-धर्म की शिक्षा दी, फिर सर्वों को लौटा दिये। साथ में केवल सात व्यक्ति रह गये थे - 1। अहिरौली ग्राम का एक वैष्णव, 2। पं. श्री रामसुन्दर जी, 3। श्री सीताराम जी (आळवार तिरुनगरी निवासी), 4। श्री कमलनयन जी (पुजारी, जिला कानपुर), 5। श्री नन्दकिशोर जी, 6। विद्यार्थी श्री माधव जी (गाजीपुर निवासी), 7। परांकुशाचार्य (लेखक जीवनी)।

उस दिन नौवतपुर से नाव चलकर दीघा घाट से पश्चिम कुछ दूर तक गंगा में आयी। पड़ाव वहीं रहा। किनारे पर वालू की एक उच्च वेदी बनायी गयी। उसी पर आसन लगा। शीत से बचाव के लिए चारो ओर बाँस गाड़ कर ऊपर से चांदनी लगा दी गई। श्रीस्वामी जी महाराज उसी पर विश्राम किये। रसोई बनी, भगवान् को भोग लगा और सभी वैष्णव प्रसाद पाये। किन्तु श्रीस्वामी जी महाराज अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किये। भोजन के उपरान्त जब सभी वैष्णव निश्चिन्त हुए तो सर्वों को सामने कर श्रीस्वामी जी महाराज एक कथा प्रारम्भ किये - “प्राचीन महात्माओं में एक भट्टर स्वामी नाम के महात्मा हो गये हैं। जन्म-काल के कुछ ही दिन पश्चात् उनके पिता का देहान्त हो गया था। घर में अकेली माँ थी। उनके लालन-पालन का सारा भार माँ के ऊपर आ पड़ा। वह बच्चे का मुख देखकर सब दुःख भूल गयी। बड़ा होने पर बच्चे को पढ़ने की व्यवस्था कर दी गयी। बालक होनहार था। सोलह वर्ष की अवस्था होते-न-होते वह पूर्ण विद्वान बन बैठा। उसकी प्रतिभा, तर्ककौशल और प्रतिपादन शक्ति को देखकर सभी अवाक् थे। वह बालक सर्वों का आदर पात्र बन गया था। निदान उसी वर्ष उस बालक की मृत्यु हो गयी। यह दुःखद समाचार जिसने सुना जी भरकर रोया। ईश्वर और भाग्य को कोसा। नगर की सभी नर-नारियाँ रो-पीटकर शान्त हुई और चलीं भट्टर की माँ को धैर्य बँधाने। पर वहाँ तो कुछ दूसरी ही बात थी। वे सभी देखती हैं कि भट्टर की माँ भगवान् के सामने उत्सव मनाने की तैयारी में लगी है। वारी-वारी से चन्दन, फूल, तुलसी, दीप, नैवेद्य, आरती आदि सँवार रही है। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पर उसके पुत्र-शोक का स्मरण कर कुछ लोगों ने समझा यह पगली हो गयी है। बेचारी अपने एकलौते पुत्र के लुट जाने से अपने को सँहाल न सकी। शोक में विक्षिप्त होकर यह सब कर रही है। अब इसके लिए संसार में रह ही क्या गया है। किन्तु इस पगली को सँहालना तो होगा ही। यह विचार कर एक अवला धैर्य बाँधकर भट्टर की माँ के सामने गयी और पूछ बैठी, “भट्टर की माँ, तू यह क्या कर रही है? आज यह सारा दिव्यदेश तुम्हारे पुत्र-शोक में निमग्न है। आवाल-वृद्ध तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं। तुम्हारे शोक का तो कहना ही क्या है। किन्तु संसार का यह अबाध नियम है। इसे टाला नहीं जा सकता। अतः धैर्य धारण करो, अपने को सँहालो और पुत्र की अन्त्येष्टि क्रिया की व्यवस्था करो।” माँ का हृदय भर



आया। वह बोली, “वहनों में पगली नहीं हुई हूँ आज मेरे लिए शोक का दिन नहीं है वल्कि आनन्द का दिन है। देखो लोक-व्यवहार को। जब किसी का पुत्र विवाह के लिए तुच्छ लौकिक रीति से आत्मान्तर से सम्बन्ध के लिए यात्रा करता है तब उसको पालकी पर बैठते ही उसकी माँ मंगलाचार करती है। आरती उतारती है और उसके मंगल की कामना करती है। देवताओं की अर्चा-पूजा करती है, उत्सव मनाती है। हमारा पुत्र भट्टर ने तो आज दिव्यविमान पर चढ़ कर त्रिपाद्विभूति की यात्रा की है। आज बहुत दिनों के बाद उभय-विभूति नायक परब्रह्म परमात्मा से उसकी आत्मा का चिर मिलन होगा। दिव्य पार्षद उसकी आगवानी करेंगे। ब्रह्मादि देवता उसकी आरती उतारेंगे, महालक्ष्मी गोद में लेकर प्यार से लालन करेंगी। अंत में महालक्ष्मी-नायक के अंक में जा विराजेगा। आज उसके दुःखों का जन्म-मरण का सदा के लिए अंत हो जायेगा। चिरसुख की प्राप्ति होगी। इससे बढ़कर माता के लिए और कौन सा दिन हो सकता है। आज मुझसे भाग्यशालिनी कौन होगी। इसीलिए मैं उत्सव मना रही हूँ। भगवान की पूजा कर रही हूँ। क्योंकि उनकी कृपा के बिना यह सम्भव नहीं है। तुम लोगों को भी मंगलाचार करना चाहिए। उस दिव्यात्मा के लिए शोक करना ही पागलपन है। नारकियों की माता, माता नहीं और नारकी पुत्र, पुत्र नहीं है। पुत्र वही है जो मोक्ष प्राप्त कर मानव-जीवन को सार्थक बनाता है और माता भी उसी की धन्य है।” मदालसा जैसी भट्टर की माँ का उपदेश सुनकर सभी मुग्ध हो गये।

हम सभी वैष्णवों को इस कथा से शिक्षा लेनी चाहिए। यह ध्रुव है, सत्य है कि जन्म और मरण साथ-ही-साथ चलते हैं। मृत्यु इस संसार का अटल नियम है। इस अपरिहार्य नियम के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भय नहीं खाना चाहिए। भला मृत्यु से अमर आत्मा में कमी ही क्या आ सकती है। वह तो पुराने वस्त्र की भाँति पुरानी देह को छोड़कर नवीन वस्त्र धारण करने जैसा नवीन देह धारण करती है। हाँ, पापी लोग अवश्य अपने दुष्कर्मों का स्मरण कर नरक के भय से मृत्यु से डरते हैं। ठीक इसके विरुद्ध पुण्यात्मा भक्त-वैष्णव तो खुशी-खुशी मृत्यु की आगवानी करते हैं। कहा है - “पाप कारित्वान्मृत्योरुद्धिजते जनाः। कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युप्रियातिथिभिः।” उसे तो अपनी मुक्ति अपनी आँखों दिखती है और दिखता है भगवान् का सान्निध्य। इसीलिए मृत्यु को वह भगवान् का अनुग्रह मानता है। आत्मविभोर होकर कह उठता है - “तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षते शरीरतः।” भगवान् से मिलने में उतनी ही देर है जवतक शरीर से छुटकारा नहीं मिल जाता है। इसलिए तुम लोगों को शरीर की नश्वरता को ध्यान में रखकर न तो हमारे लिए और न अपने लिए ही शोक करना चाहिए। साथ ही मूल मन्त्र के अन्त की चतुर्थी विभक्ति पर ध्यान रखना चाहिए। द्वयमन्त्र का उत्तरार्द्ध का सतत चिन्तन करना चाहिए। यही नहीं चरम मन्त्र का अन्तिम पद “माशुच” का अर्थ सहित अनुसन्धान कर अनासक्त भाव से निष्काम कर्म करते रहना चाहिए। अपना सबकुछ भगवान् पर छोड़ स्वयं निश्चिन्त रहना चाहिए। तभी जीव मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार उपदेश करते-करते रात अधिक व्यतीत हो गयी। हम सबों को सोने की आज़ा मिली। दूसरे दिन बड़े भोरे ही स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर यात्रा हुई। नाव को उत्तर किनारे से पश्चिम की ओर बढ़ाने की आज़ा मिली। चलकर जब नाव कामवन (जहाँ महादेव जी ने काम को भस्म किया था) के सामने पहुँची तो वहाँ जितने भी आस-पास में स्थान थे वहाँ सभी सन्त-महात्माओं के लिए भोजन की सामग्री दी गयी। फिर नाव आगे चलकर नृसिंह क्षेत्र (वर्तमान हल्दीछपरा) में पहुँची। वहीं नाव रुकी, भगवान् की सेवा हुई। भोग लगा और वैष्णव प्रसाद-सेवन किये। किन्तु श्रीस्वामी जी महाराज स्वयं एक रुपया भर वेल (भगवत्प्रसाद) ग्रहण किए। पुनः वहाँ से चलकर नाव सन्ध्या समय गंगा-सरयू के संगम पर जाकर रुकी। रात वहीं विताने की बात ठहरी। वैष्णवों के भोजन की व्यवस्था हुई। भगवान का आराधन हुआ, भोग लगा और सभी वैष्णव भोजन किए। पर श्रीस्वामी जी महाराज तीर्थ-मात्र ग्रहण किए। इस रात में भी विविध प्रकार का उपदेश और मन्त्रराज का अनुसन्धान चलता रहा। कुछ शयन के पश्चात् रात बीत गयी और ब्राह्ममुहूर्त प्रारम्भ हुआ तब श्रीस्वामी जी महाराज जगे। साथ ही जगकर सबों ने सुना

कि मधुर और सुरीले स्वर में श्री स्वामी जी महाराज गा रहे हैं।

वज्रध्वजाङ्कुशमुधाकलशातपत्रपङ्केरुहांकपरिकर्मपरीतमन्तः।

आपादपङ्कजविश्रुङ्खलदीप्रमौलेःश्रीरङ्गिणश्चरणयोर्युगंआश्रयामः।अतिमानुषस्त्व।

धीरे-धीरे स्वर मन्द पड़ने लगा। गान वन्द हुआ और द्वयमन्त्र का उच्चारण प्रारम्भ हुआ। पूर्वार्द्ध का उच्चारण ठीक-ठीक हो सका। उत्तरार्द्ध के दीर्घ णकार और यकार के उच्चारण होते न होते कपालभेदन (वस्त्ररन्ध्र से आत्मा निकलने) का शब्द गूँज उठा। मुख खुला रह गया, आँखों की पलक चढ़ गयी। श्वास की गति रुक गयी। इन क्रियाओं में यह वताना कठिन है कि कौन पहले हुई, संभव है सभी साथ ही हुई हों। अव जान पड़ा श्रीस्वामी जी महाराज इस संसार में नहीं रहे। इस नश्वर शरीर को छोड़कर त्रिपाद्विभूति की महायात्रा कर चुके। सभी लोग रोने लगे, सभी अधीर हो गये। करुणा की नदी उमड़ पड़ी। कोई किसी को धैर्य बंधाने वाला नहीं रह गया। सचमुच वि. सं. 1972 (प्रभव संवत्) के वैशाख कृष्ण षष्ठी सोमवार को ब्राह्ममुहूर्त में जब कि चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर थे और भगवान् भास्कर मीन राशि पर थे, अपनी ज्ञान-किरणों से मगध को आलोकित करने वाला वह भास्कर सदा के लिए अस्त हो गया था। अव हमलोगों के हृदय को कौन आलोकित करेगा, इसकी चिन्ता व्यग्र कर रही थी। इसी प्रकार कुछ रोते-पीटते पश्चात् भगवान् की कृपा से कुछ धैर्य हुआ। अव सर्वों के सामने प्रश्न था श्रीस्वामी जी महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया की।

केशवार्पितसर्वाङ्गशशिभंगमंगलाद्वयम्। न वृथा दाहयेद्विद्वान्ब्रह्ममेधविधिंविना।।

महर्षिहारीत के इस वचनानुसार ब्रह्ममेध संस्कारपूर्वक दाह संस्कार किया गया। भगवान् रामचन्द्र ने भी जटायु के शरीर का यही संस्कार किया था। यद्यपि श्रीस्वामी जी महाराज मुक्त थे। उनके लिए यह आवश्यक नहीं था फिर भी लोक-संग्रह की भावना से महापुरुष लोग कर्म करते आये हैं, अतः किया गया। सिद्ध महात्माओं के शरीर का दाह-संस्कार हो या न हो उनके लिए श्राद्ध किया जावे, किन्तु मुक्ति तो अवश्य मिलती ही है। कहा भी है -

“रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मसाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभते च मुक्तिः।

वैष्णव किसी भी स्थान पर, किसी भी अवस्था में देह त्यागे उसे मुक्ति अनायास मिलती है। क्योंकि भक्तों के लिए सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य और सारूप्य ये चारो प्रकार की मुक्तियाँ हस्तगत रहती हैं। फिर भी श्रीस्वामी जी महाराज का दाह-संस्कार, नारायण वली श्राद्ध, आचार्य सम्मेलन आदि जो कुछ भी किया कराया गया वे सभी लोक-संग्रह की भावना से। अव श्रीस्वामी जी महाराज इस संसार में नहीं रहे, किन्तु आज भी उनके वताये मार्ग असंख्य जीवों के उद्धार के लिए पर्याप्त हैं।

- इति -

अब्दे श्रीप्रभवाविधे दिनमणी मीने गते माधवे मासेऽशुक्लदले सुधांशुदिवसे षष्ठ्यां तिथाविन्द्रभे।

श्रीरंगार्यपदाश्रितो गुणनिधिः राजेन्द्रसूरिः महान्ध्यायन्स्वार्य पदाम्बुजञ्च युगलं प्रायात्पदवैष्णवम्।।

प्रभव संवत्सर के मीन राशि पर जब सूर्य थे, तब वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में, षष्ठी तिथि चन्द्रवार में, ज्येष्ठा नक्षत्र एवं ब्राह्ममुहूर्त में श्रीरंगदेशिकाचार्य जी महाराज के चरण-कमलों के अनुसन्धान करते हुए सर्वगुण सम्पन्न श्रीस्वामी राजेन्द्रसूरि जी महाराज ने त्रिपाद्विभूति विष्णुधाम की यात्रा की और श्रीलक्ष्मीनारायण के चरणकमलों में जा पहुँचे। \*\*